वीरकाव्य

सम्पादक

उदयनारायण तिवारी

एम० ए०, डी० लिट्०, साहित्यरत्न

(अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय)

ग्रन्थ-संख्या—१३३

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २००५ वि०
मूल्य ६)

मुद्रक
पं० मणिशंकर मालवीय
अभ्युदय प्रेस, इलाहाबाद

दो शब्द

हिन्दी-साहित्य मे वीरकाव्य की परम्परा जिन कवियो से आरम्भ हुई उनकी कविताओ का कोई ऐसा संग्रह-ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नही हुआ था जिसमे कविता के साथ-साथ आलोचनात्मक एवं विवेचनात्मक-दृष्टि से प्रकाश डाला गया हो। कलकत्ता-विश्वविद्यालय की ओर से वर्षों पूर्व स्वर्गीय लाला सीताराम जी बी० ए० के सम्पादकत्व मे "बार्डिक सेलेक्शन" नामक संकलन अवश्य प्रकाशित हुआ था; किन्तु उस मे प्राय. ऐसी सामग्री का अभाव था जो वीरकाव्य के रसिको के साथ-साथ उच्च कक्षा के विद्यार्थियो के भी काम की हो। आज से आठ वर्ष पूर्व हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने 'वीर काव्य-संग्रह' नाम का एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका सम्पादन पं० भगीरथ प्रसाद जी दीक्षित के साथ मैंने किया था, किन्तु उसकी अपेक्षा इस संग्रह मे बहुत-सी नई सामग्री समाविष्ट की गई है। गत पिछले आठ वर्षों मे वीररस के कवियो के सम्बन्ध मे जो अनुसंधान हुए है, उनकी पूर्ण समीक्षा इस सग्रह मे की गई है, विशेषकर, चन्दबरदाई तथा नरपतिनाल्ह के सम्बन्ध की सभी नई खोजे इसमे आ गई हैं।

वीर-काव्य के विकास मे आरम्भ से ही चारणो का विशेष हाथ रहा है, अतएव प्रस्तुत-संग्रह मे चारणो तथा उनके काव्य के सम्बन्ध मे एक निबंध जोड़ दिया गया है। भारतीय-वीर-काव्य की यह विशेषता है कि इसके प्रणयन मे ऐतिहासिक तथ्यों का ही आश्रय लिया गया है और एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि वीर-काव्य की पृष्ठ-भूमि मे ऐतिहा-

सिक सामग्रियों पर ही कवि-कल्पना का आवरण चढ़ाया गया है। मैंने ऐसी सामग्रियों पर प्रामाणिक इतिहास के तथ्यों से सामञ्जस्य स्थापित करने की भर सक चेष्टा की है। वीर-काव्य के कई ग्रन्थों मे ऐसी घटनाओं का भी उल्लेख मिलता है जिनकी ओर आधुनिक इतिहास लेखकों का ध्यान नही गया है। वस्तुत: इस सम्बन्ध मे कोई विवेचना न प्रस्तुत कर, मैंने उस ओर इतिहास के अन्वेषकों का ध्यान भर आकर्षित कर दिया है।

आज इस रूप मे इस संग्रह को प्रकाशित होते देखकर जहाँ मुझे प्रसन्नता हो रही है, वहीं अपनी कनिष्ठ कन्या आयुष्मती कलावती [अवस्था १२ वर्ष] के निधन की दुःखद स्मृति से हृदय मे असीम वेदना भी हो रही है। इस संग्रह के सम्पादन के आरम्भ मे वह पूर्ण स्वस्थ थी, किन्तु दो ही दिनो की बीमारी मे उसके सर्वथा वियोग ने मुझे महीनो के लिए बेचैन कर दिया और घर के शोकपूर्ण कोलाहल मे उतने दिनो तक इस संग्रह का सम्पादन कार्य स्थगित रहा। आज तो उसकी स्मृति मात्र ही शेष है, "तं कुतो लब्भा"।

इस अवसर पर मै अपने उन शुभैषियो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना नही भूल सकता, जिन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति से इस संग्रह को इस रूप में सम्पादित करने की प्रेरणा दी। वस्तुतः सर्वप्रथम मुझे वीर-काव्य के अध्यन मे प्रवृत्त करने का श्रेय पूज्य पं० दयाशंकर जी दुबे एम० ए० को है। उन्ही की प्रेरणा से सम्मेलन से प्रकाशित होने वाले 'वीर-काव्य-संग्रह' का सम्पादन-कार्य मैंने आरम्भ किया था। सम्मेलन वाले संग्रह को देखकर माननीय राजर्षि पुरुषोत्तम दास जी टंडन तथा पूज्यवर डाक्टर पं० अमरनाथ जी झा ने अनेक सुझाव दिए थे, जिनका पूरा

उपयोग मैने इस नवीन संग्रह मे किया है। आदरणीय पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी एम० ए० ने तो पुरातन-संग्रह की अनेक त्रुटियो को आर विशेष रूप से मेरा ध्यान आकृष्ट करके इस संग्रह को अधिकाधिक उपयोगी बनाने मे क्रियात्मक सहायता प्रदान की। इतना होने पर भी, यदि प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष, डा० धीरेन्द्र वर्मा जी के बारम्बार स्नेहपूर्ण तकाजे न होते रहते तो इतना शीघ्र, यह संग्रह प्रकाशित न हो पाता। वस्तुत मै इन गुरुजनो की सहज कृपा के लिए अत्यन्त कृतज्ञ तथा आभारी हूँ। उदयपुर के साहित्यरत्न श्री पुरुषोत्तम मेनारिया तथा राव मोहनसिह जी ने 'रेवातटसमयो' के पाठ तथा अर्थ मे मेरी जो सहायता की है, उसके लिए इनदोनो सज्जनो का मैं कृतज्ञ हूँ।

इस संग्रह की पाण्डुलिपि तैयार करने तथा प्रूफ आदि सशोधन मे मेरे प्रिय विद्यार्थी श्री पारसनाथ तिवारी एम० ए०, श्री जयचन्दराय एम० ए० तथा श्री कुन्दनलाल वर्मा बी० ए० ने विशेष रूप से मेरी सहायता की है। श्री कृष्णचन्द्र वर्मा बी० ए० ने परिशिष्ट बनाकर इस संग्रह के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया है। अपने उन छात्रों को मै हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

अलोपी बाग,
दारागंज, प्रयाग
गांधी-जयन्ती, १९४८

उदयनारायण तिवारी

—

मानो थककर अपने को पूर्णता तक पहुँचा अनुभव करने लगता है और आगे बढ़ना छोड़ देता है। वह पुराने का भाष्य, व्याख्या, टीका और टिप्पणी करना ही अपना काम समझ लेता और कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटने लगता है। आठवीं शती का काश्मीरी दार्शनिक जयन्त भट्ट* पुकार कर कहता है—'कुतो वा नूतनवस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः'—हममें नई वस्तु कल्पना करने की शक्ति कहाँ है? भारतीय-कला इस युग में अपने चरम सौन्दर्य पर पहुँचती है, पर उसमें गुप्त युगवाली जान और ओजस्विता नही रहती। वैदिक से गुप्त-युग तक भारत मे अनेक संघराज्य या गणराज्य थे, मध्यकाल में किसी गण-राज्य का नाम भी नहीं सुना जाता। जनता अपने राजनैतिक कर्तव्य की उपेक्षा करने लगती है। पहले ग्रामों, श्रेणियों और निगमो की सभायें तथा जनपदों की परिषदे कानून बनातीं और स्मृतियां केवल उनकी व्याख्या करती थीं; अब प्राचीन स्मृतियां जीवित मनुष्यों के ठहरावो का स्थान ले लेती हैं। दूर और नई जगह ब्याह-शादी करने से लोगों को झिझक मालूम होने लगती है और समाज में अब तक दर्जों का जो तरल भेद था, वह अब पथराकर ठोस जाँति-पाँति बन जाता है। शिल्प और व्यापार की समृद्धि से जुटनेवालीपूंजी मन्दिरों की ललितकला पर ढेर की ढेर संचित होने लगती है।·········१३वीं-१४वी शताब्दि में हेमाद्रि नीलकण्ठ और कमलाकर भट्ट धर्मिष्ठ हिन्दू की बरस भर की चर्या के लिए करीब दो सहस्र व्रतों, पूजाओं आदि का विधान करते है। ऐसी मन स्थितिवाली जाति संसार के संघर्ष में कैसे खड़ी रह सकती है?"

ऊपर सातवीं तथा आठवीं शताब्दि के धार्मिक, राजनैतिक

---

*इतिहास प्रवेश भाग १ पृ० २३४

तथा सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन संक्षेप में कराया गया है। निश्चित् है कि जिस जाति की मनःस्थिति जैसी होगी उसीके अनुरूप वह साहित्य का सृजन भी करेगी, क्योंकि साहित्य वास्तव मे जातीय-जीवन का सच्चा दर्पण है। हिन्दी मे इस काल की जो कविता उपलब्ध हुई है, वह सिद्धो की है। इन सिद्धो मे 'सरहा' का समय ७५० ई०, महाराज धर्मपाल के समकालोन लूइपा का समय ७६६-८०६ ई० तथा कराहपा का काल ८०६-८४६ ई० है।❀ सिद्ध लोग सहजिया सम्प्रदाय के अनुयायी थे। मन्त्रयान तथा वज्रयान को भाँति सहजयान भी महायान बौद्ध धर्म की ही एक शाखा थी।

सिद्ध कवि रहस्यवादो थे और इनकी कविता की भाषा सन्ध्या बतलाई गई है। नाथपन्थ के प्रसिद्ध गोरखनाथ भी सिद्धों मे से ही एक थे। आगे चलकर इन सिद्धो को विचारधारा हिन्दी के सन्त कवियो की वाणियो मे विलीन हो गई। इस समय भी सन्तो को वाणियो का अध्ययन करके सिद्धो के विचार का अन्वेपण किया जा सकता है।

सिद्धों की संख्या चौरासी बतलाई जाती है। इसमें से अधिकांश का सम्बन्ध बिहार प्रान्त तथा नालन्दा-विश्वविद्यालय से था। इस कारण इनकी कविता की भापा का बिहारी तथा बॅगला भाषा से घनिष्ट सम्पर्क है।

इन सिद्धो के अतिरिक्त ८०० ई० से १४०० ई० के बीच कई जैन पंडितो तथा अन्य कवियो को रचनाये देशी-भापा में उपलब्ध है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास कारो ने सं० १०५० से

❀ओरियंटल कान्फ्रेन्स बड़ौदा (सन् १९३३) की हिंदी शाखा के सभापति श्री राहुल सांकृत्यायन का भाषण।

१४०० तक के साहित्य के काल को वीर-गाथा काल के नाम से सम्बोधित किया है। किन्तु इस समय की तथाकथित रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है। 'पृथ्वीराजरासो', 'खुमानरासो' आदि अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं हैं। अतएव उनकी भाषा भी भाषा के क्रमिक-विकास के अध्ययन की दृष्टि से सर्वथा अनुपयोगी है। हाँ, इस काल के अध्ययन के लिए जैन पंडितों द्वारा उपस्थित की हुई सामग्री अत्यन्त बहुमूल्य है। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने दो लेखों, 'वीरगाथा-काल का जैन भाषा-साहित्य, [नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक ३, सं० १९९८] तथा 'वीरगाथा-काल की रचनाओं पर विचार' [नागरी प्रचारिणी पत्रिका अंक ३-४, सं० १९९९] में इस काल के साहित्य एवं भाषा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अपने प्रथम लेख में नाहटा जी ने सोलह कवियों की रचनाओं पर विचार किया है। जिनमें प्रथम धनपाल का समय सं० १०८१ के लगभग तथा पन्द्रहवें सारमूर्ति का समय सं० १३९० के लगभग है। श्री नाहटा जी ने जिन वल्लभ सूरि [सं० ११६७ के लगभग] की रचना का निम्नलिखित उदाहरण दिया है:—

कि कप्पतरु रे अयाण चिंतहि मन भित्तरि।
कि चिन्तामणि कामधेनु आराहहि बहु परि॥
चित्रावेलिहि काजु किसउ, देसंतरु लंघइ।
रमणि रासि कारणह किसउ, सायर उल्लंघइ॥
चउदह पूरब सार जगे लद्धु एहु नवकारु।
सयल काज महियलि सरहि दत्तरि तरि संसारु॥

ऊपर के पद का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार होगा:—

किं कल्पतरु रे अयान ! चिंतहि मन भीतरि।
किं चिंतामणि कामधेनु, आराधहि बहु परि॥

चिन्नावेलिहि काज कौन, देसांतर लांघइ।
रमणि रासकारणे, कौन सागर ऊल्लांघइ ॥
चौदह पूरब सार जग, लब्ध एह नवकार।
सकल काज मध्यहिं सरहिं, दुस्तर तरि संसार ॥

श्री नाहटा जी ने प्राचीन गुर्जरकाव्य-संग्रह से विजयसेन सूरि (सं० १२८८ के लगभग) का निम्नलिखित पद उद्धृत किया है:—

परमेसर तित्थेसरह, पय पंकय पणमेवि।
भणिसु रासु रेवंतगिरे, अंबिक देवी सुमरेवि ॥
गामागर पुर वण गहण, सरिसरवरि सुपएसु।
देवभूमि दिसि पच्छिमह, मणहरु सोरठ देसु ॥

अब सं० १३६० के लगभग के सारमूर्त्ति कवि की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिये:—

सुरतरू रिसह जिणंद पाय अनुसर सुअ देवो।
सुगुरुराय जिणचंद सूरि गुरुचरण नमेवी ॥
अमिय सरिसु जिण पद्मसूरि पभवणहरासू।
सवणंजलि तुम्हि पियउ भविय लहु सिद्धिहि तासू ॥

ऊपर के पद का हिन्दी-रूपान्तर इस प्रकार होगा :—

सुरतरु ऋषभ जिनेन्द्र पाय अनुसर शुकदेवो।
सुगुरुराय जिनचन्द्र सूरि गुरु-चरण नमामि ॥
अमिय सरिस जिन पद्मसूरि प्रमणइ यह रासू।
श्रवणांजलि तुम पियहु, भविय लेहु सिद्धिहि तासू ॥

महापंडित राहुलसांकृत्यायन ने भी अपने 'हिन्दी काव्य-रा' नामक संग्रह में इस काल के कवियों की रचना पर

अच्छा प्रकाश डाला है। 'काव्य-धारा के अधिकांश कवि जैन धर्मावलंबी हैं। इस पुस्तक की अधिकांश सामग्री श्री राहुल जी ने श्री मुनिजिन विजय जी द्वारा संग्रहीत बम्बई के 'विद्या-भवन' के संग्रहालय मे सुरक्षित हस्तलिखित पुस्तकों से ली है। नीचे स्वयंभू (सं० ८०० के लगभग की कविता से वीर-रस के उदाहरण दिये जाते हैं। उद्धृत-अंश मेघवाहन तथा हनुमान के युद्ध के सम्बन्ध मे है।

भिडिअइ बे' वि सेण्णइ आउ जुज्झु घोर !
कुंडल - कडय - मउड - णिवडंत कणय-डोरु।
हण-हण-हणङ्कारु महारउद्द।
छण छण छणंतु गुण-पिंछ-सद्द।
कर - कर - करंतु कोयंड - पवरु
थर - थर - थरंतु णाराय - णियरु।
खण-खण-खणन्तु तिक्खग्ग खग्गु।
हिल-हिल-हिलन्तु हय-चंच लग्गु।
गुल-गुल-गुलंत गयवर विसालु।
'हणु-हणु-भणंतु णर-बर-बिसालु।

ऊपर के पद का रूपान्तर नीचे दिया जाता है:—

भिडिया दोऊ सेन आव युद्ध घोर।
कुंडल-कटक-मुकुट निपततं कणक-डोर।
हन हन - हनंकार महा-रउद्र।
छन छन छनंत गुण-पिच्छ-शब्द।
कर कर करंत कोदंड प्रवर।
थर - थर - थरंत नाराच निकर।
खन-खन-खनंत तीक्ष्णाग्र खड्ग।
हिल-हिल हिलंत हय-चंचलाग्र।

गुल-गुल-गुलंत गजवर-विशाल ।
हन हन भनंत नरवर विशाल ।

अब स्वयंभूकृत 'सुग्रीव और मेघवाहन' के युद्ध का भी एक दृश्य देखें:—

किक्किंध-णराहिउ धरिउ, जाव ।
घण-वाहणु भा मण्डलहं ताव ।
अब्भिट्ट परोप्परु जुज्झ घोरु ।
सरि सोत्त स-उत्तरे पहर थोरु ।
छिज्जंत महग्गय गरुअ गत्तु ।
णिवडंत समुद्धुय-धवल-छत्तु ।
लोट्टंत महारह - हय-रहंगु ।
घुम्मंत - पडंत - महा तुरंगु ।
तुट्टंत कवड तुट्टंत खग्गु ।
णच्चंत कवंधउ असि करग्गु ।

अब ऊपर के पद का हिन्दी रूपान्तर देखें:—

किष्किंध-नराधिप धरेउ याव ।
घन वाहण भा मंडलहँ ताव ।
आ भिडेउ परस्पर युद्ध घोर ।
शर स्रोत स्व-उत्तरे प्रहर थोर ।
छिछंत महागज गरुअ - गात्र ।
निपतंत समुद्धत - धवल - छत्र ।
लोटंत महारथ हय रथांग ।
घूमन्त पडंत महा तुरंग ।
टूटंत कवच टूटंत खड्ग ।
नाचंत कवंधउ असि - कराग्र ।

जिनमें भारतीयता कूट-कूट कर भरी थी, किन्तु इनके विपरीत सदैव से भारत में एक ऐसा विशेष दल वर्त्तमान रहा जो भारतीय-संस्कृति, वेष-भूषा तथा भाषा का शत्रु था। वस्तुतः तुर्क शब्द इसी दल का पर्यायवाची है। इस देश में रहते हुए भी इस दल ने अपने को भारतीय राष्ट्र से पृथक ही रक्खा। औरंगज़ेब इस दल का प्रमुख प्रतिनिधि था। इसी कारण भूषण ने अपने काव्य में उसकी निन्दा की।

हिन्दी का आधुनिक-युग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रारंभ होता है। भारतेन्दु वीर-रस के कवि नहीं थे; किन्तु उनके नाटकों में वीर-रस की कतिपय कवितायें मिलती हैं। अपनी एक कविता में उन्होंने भारतवासियों को युद्ध के लिए आमंत्रित किया है। पद इस प्रकार है:—

चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रन-रंग जमाओ ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बाना सजि-सजि रनकंकन बाँधौ ॥
जो आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृहकलहिं आपनी कुल - मरजाद विचारैं ॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मंझारी ॥

ऊपर की कविता में हरिश्चन्द्र जी ने भारत की प्राचीन संस्कृति तथा वीरता का स्मरण दिलाकर वीरों को युद्ध के लिए आमंत्रित किया है, किन्तु राधाकृष्णदास जी ने अपने महाराणा-प्रताप नाटक मे भारतीय-संस्कृति तथा वीरता के प्रतीक महाराणा प्रताप की प्रशस्ति लिखी है:—

चलि शत्रुन के दल भेदि निसान उड़ावैं ।
फिर चित्रकूट पर आर्य ध्वजा फहरावैं ॥
आनन्द सो सब मिलि नाचैं कूदैं गावैं ।
स्वाधीन दिवस सब सुख सो सदा बितावैं ॥
निर्द्वन्द होहु चित चाव बढ़ाइ हुलासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ १ ॥
अपनी-अपनी करतूति सबै दिखराओ ।
लरि लरि अरि सैनहि उततैं तुरत भगाओ ॥
जड़ सों भारत तें इनके नाम मिटाओ ।
फिर आर्य सुयस की नदी पवित्र बहाओ ॥
करि कै अब विजय मिटाओ जन परिहासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ २ ॥

भारत में ब्रिटिश-सत्ता की स्थापना के पश्चात् जनता में राष्ट्रीयता की एक लहर दौड़ गई। यह पहला अवसर था जब कि भारतीय जनता अपनी प्रान्तीयता भूलकर एकता का अनुभव करने लगी। इस नव-जागरण के भी अनेक कारण हैं, जिनमे रूस-जापान का युद्ध, भारतीय-कांग्रेस के कार्य, बंग-भंग आन्दोलन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सन् १६२१ मे कांग्रेस में गाँधी जी के आगमन ने तो भारतीय-राष्ट्र को जागृत करने में सबसे बड़ा कार्य किया। इसका प्रभाव हिन्दी-कवियों पर भी पूर्ण रूप से पड़ा जिसके परिणामस्वरूप लाला भगवान् दीन, श्री मैथिलीशरण गुप्त, पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं० माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, पं० अनूप शर्मा, श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' तथा पं० श्याम नारायण पाण्डेय आदि ने अपनी कविताओं तथा काव्य-ग्रन्थों में वीर-काव्य का सजीव चित्र उपस्थित किया।

भारतीय दासता की कड़ियाँ अब टूट चुकीं हैं और स्व-तंत्रता प्राप्ति के साथ साथ युवकों में उत्साह की तरंगे उद्वेलित हो रही हैं। वस्तुतः किसी देश में वीर-काव्य की रचना तभी होती है जब देश स्वतंत्र होता है। आशा है भविष्य के कवि ऐसी रचनाओं से युवकों में उत्साह और जोश भरकर भार-तीय राष्ट्र को सबल बनाने में सहायक होंगे।

चारण तथा चारण काव्य

चारण जाति का अस्तित्व भारतवर्ष में प्रचीन काल से रहा है। अपने पवित्र आदर्श के कारण भी चारणों को समाज में सदैव सम्मान तथा आदर प्राप्त रहा है। उनका प्रधान ध्येय लोक कल्याणार्थ क्षत्रिय जाति में साहस तथा वीरता का संचार कर उन्हें सद्धर्म एवं सन्मार्ग पर चलाना था। स्वर्गीय ठाकुर किशोर सिंह जी, स्टेट हिस्टोरियन' पटि-याला राज्य के अनुसार 'चारयन्तीति चारणाः' अर्थात् जो देश का संचालन कार्य, नेतृत्व करे एवं देश-भक्ति को प्रोत्साहन दे वही चारण हैं।

चारणों की उत्पत्ति तथा उनकी प्रसिद्धि के सम्बन्ध में विशेष प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नही है, फिर भी विद्वानों ने इस ओर पर्याप्त प्रयास किया है। नीचे इन्ही विद्वानों की खोजो का सारंश दिया जाता है।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी बी० ए० संवत् १९६७ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, पृ० २२९-२३१ मे इस सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखते हैं:—

ब्राह्मणों के पीछे राजपूतों की कीर्ति बखानने वाले भाट और चारण हुए, जैसा कि एक छन्द में कहा है:—

"ब्रह्माण के मुख की कविता कछु भाट लई कछु चारण लीन्हीं"। यह जानना आवश्यक है कि चारणों की प्रधानता कब से हुई ? कोई शिलालेख या ताम्रपत्र संस्कृत में, या पुराना, अब तक, नही मिला है जिसमें चारणों या भाटों को भूमिदान का उल्लेख हो।

'सुभाषित हारावली' नामक एक सुभाषित श्लोको का संग्रह हरि कवि का किया हुआ है [पीटर्सन, दूसरी रिपोर्ट, पृ० ५७-६४]। उसमे मुरारी कवि के नाम से यह श्लोक दिया हुआ है:—

चर्चाभिश्चारणानां क्षिति रमण ! परां प्राप्य संमोदलीलां,
मा कीर्तेः सौ विदल्ला नवगणय कवि प्रात (?) वाणी विलासान्।
गीतं ख्यातं न नाम्ना किमपि रघुपतेरद्य यावत्प्रसादा—
द्वाल्मीकेरेव धात्रीं धवलयति यशो मुद्रया रामभद्रः।

ऊपर के श्लोक के द्वितीय चरण में "कवि प्रात [?] वाणी विलासन्" पाठ अशुद्ध है। वस्तुतः शुद्ध पाठ होगा "कविप्रोत वाणीविलासान्" या "कवीन् प्राप्त वाणी विलासान्"। इस श्लोक का भाव इस प्रकार है :—

कोई राजा चारणों की कविता से प्रसन्न होकर संस्कृत कवियों का अनादर करने लगा। उसे कवि सम्बोधित करके कहता है कि हे महीपाल ! चारणों की चर्चाओं से बड़ा आनन्द पाकर कवियो की रचनाओं का अनादर मत कीजिए, क्योंकि वे कीर्तिरूपी नायिका के रखवारे या लाकर [राजाओं से] उसे मिलाने वाले है। देखिए, रामचन्द्र का एक गीति या ख्यात नाम को भी नही है, वाल्मीकि ही की कृपा से आज तक रामभद्र अपने यश की छाप से पृथ्वी को अलंकृत कर रहे हैं। भाव यह है कि चारणों के [देश भाषा के] गीत और ख्यात

अस्थायी हैं, कवियों के [संस्कृत] वाणी-विलास सदा रहते हैं। राम का एक भी गीत या ख्यात नहीं मिलता। संसार में उनका जो यश है, वह वाल्मीकि की कृपा ही का फल है।

इस श्लोक में चारण, गीत और ख्यात विशेष सांकेतिक या पारिभाषिक अर्थ मे लिए गए हैं। चारण का अर्थ देवयोनि का [सिद्ध, गंधर्व आदि का सा] यश गायक नहीं हो सकता क्योंकि उनका कवियों से मुकाबिला कैसा ? "गीत" और "ख्यात" साधारण गान या यश के काव्य नहीं हो सकते, पारिभाषिक गीतों और ख्यातो से ही अभिप्राय है। चारणों द्वारा रचित काव्य दो ही तरह के होते हैं—कवितावद्ध "गीत" और और गद्यबद्ध "ख्यात"। राजपूताना में अब तक इसी अर्थ मे "गीत" और "ख्यात" पदों का व्यवहार है, जैसे "मोटा राजा उदय सिह रा गीत", "राठौडां री ख्यात"। गीत और ख्यात पदों को गीति और ख्याति [आख्याति] संज्ञा शब्दों का अपभ्रंश मानने की कोई जरूरत नहीं। ये कर्मवाच्य भूतकालिक धातुज विशेषण हैं जिनके आगे विशेष्य लुप्त हैं, जैसे चारणैः गीतं [यशः], चारणैः [ख्यातं] वृत्तम्। मारवाड़ी में इसी अर्थ में "कह्योड़ो" [कहा हुआ] भी आता है, जैसे "बाप जी गणेशपुरी जी रो कह्योड़ो [पद, गीत या दूहो]।

मुरारी कवि प्रसिद्ध अनर्घ राघव नाटक का कर्ता है। उसका पिता भट्ट श्री वर्धमान, माता तंतुमती, गोत्र मौद्गल्य और उपनाम वाल्मीकि था। उसका समय आठवीं या नवीं शताब्दि ईस्वी है। यदि यह श्लोक मुरारी का ही है तो उस समय भी चारणों के गीत और ख्यात प्रचलित थे और उनकी संस्कृत के कवियों से प्रतिद्वंदिता होने लग गई थी। इस श्लोक को मुरारी कृत मानने में सन्देह करने के दो ही कारण हो

सकते हैं, एक तो इतने प्राचीन काल में चारणों के गीत और ख्यातों का प्रचलित होना और दूसरे यह कि सुभाषितावलियों मे श्लोकों के साथ जो कवियो के नाम दिए होते हैं वे कही कही प्रामाणिक नही होते।

बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के उपसभापति महा-महोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के सम्बन्ध मे राजपूताने की तीन यात्रायें की। वे गुजरात भी गये और सन् १६०६ के पश्चात् उन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के समक्ष चार विवरण उपस्थित किये। इसके अतिरिक्त आपने अपने कार्य के सम्बन्ध में एक सामान्य विवरण भी तैयार किया। जो बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की ओर से ही सन् १६१३ मे प्रकाशित हुआ था। इस विवरण के प्रथम परिशिष्ट में चारणों के सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध है उसका सारांश यहाँ दिया जाता है :—

चारण अपनी उत्पत्ति सिद्धों एवं रामायण और महाभारत के चारणों से बतलाते है किंतु इसमे सत्य का अंश कम ही प्रतीत होता है। वस्तुत. १५ वी शताब्दी के अंतिम भाग मे राजपूतो के सम्बन्ध के कारण ही इनकी प्रसिद्धि हुई। एक दंत-कथा के अनुसार चारणो की उत्पत्ति आज से ६०० वर्ष पूर्व सिंध में देवियो के द्वारा हुई। भाटों के अनुसार 'कुल' या 'कुला' शब्द का अर्थ चारण है। अपने 'कुलकुल मण्डन' नामक ग्रन्थ में व्रजलाल कवि ने चारणो का स्थान सोरठ या सौराष्ट्र बतलाया है।

जोधपुर के कविराजा मुरारीदान अपनी पुस्तक 'संक्षिप्त चारण ख्याति' मे चारणो की चर्चा करते हुए लिखते हैं :—

प्राचीन काल मे चारण जाति भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तो मे निवास करती थी। मध्यकाल के कुछ पहले से अब

तक वह अधिकतर राजपूताना, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ और कच्छ मे निवास करती आ रही है। चारणों का आदि पुरुष 'जकत' बतलाया जाता है। 'जकत' के वंशज आदि चारण कहलाते है। जकत के चार पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्रो के नाम क्रमशः नदू, नरह, चोरर और तुम्बेत तथा पुत्री का नाम गौरी था। गौरी बाद मे देवी रूप मे प्रख्यात हुई। उससे चारणों के २८ कुलो की उत्पत्ति हुई। गौरी तथा चोरर ने एक बार अपनी कला से गिरनार के राजा को प्रसन्न किया। इसके परिणामस्वरूप राजा ने चारणो को समाज में उच्च-स्थान प्रदान किया। चारणो के अन्य कुलों की उत्पत्ति ब्राह्मणो तथा राजपूतो से हुई। राजपूताने मे एक ब्राह्मण तथा एक राजपूत को चारण बनाने की कथा प्रसिद्ध है। अब तक चारणों के १२० कुलों का पता चला है जिनमे आधे मारवाड़ तथा शेप कच्छ और कठियावाड़ में रहते हैं। कच्छ के चारण कछेला कहलाते है। उन्होंने राजाओं का यशोगान करना छोंड़कर अब व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया है।

सौराष्ट्र मे चारणो की उत्पत्ति का ठीक ठीक पता नहीं चलता। किंतु इतना तो निश्चित् है कि 'अन्हिलपत्तन' के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिह के राजत्वकाल मे चारण वर्त्तमान थे। जयसिह का समय १२ वो शताब्दी है। उस समय चारण कुम्हारो से उनकी पुत्रियों के विवाह के अवसर पर दान लिया करते थे। उनकी माँगें इतनी अधिक होती थी कि कुम्हारो ने अपनी पुत्रियों का विवाह ही करना बन्द कर दिया। इसकी सूचना जब राजा को मिली तो उन्होने यह आज्ञा निकाल दी कि चारण केवल राजपूतों से ही दान ले सकते हैं। राजस्थानी साहित्य मे चारणों की चर्चा सर्व प्रथम अचलदास किच्छी की कहानी में आई है। इस कहानी मे

'जिमां' नामक चारणी मुख्य पात्री है। 'ढोला' और 'मारवणी' की कहानी में भी चारणों की चर्चा है।

मंडोवर राज्य के संस्थापक चुंडा के समय से ही राजस्थान में चारणों का प्रभाव बढ़ा। चुंडा के बाल्यकाल में उसका सबसे बड़ा सहायक 'अला' चारण था। 'अला' की कविता के कुछ छन्द राजस्थान में इस समय भी उपलब्ध हैं; किंतु चारणों द्वारा लिखित सर्व प्रथम ग्रन्थ १५ वां शताब्दि का 'जोधायन' है। यह जोधपुर के संस्थापक महाराजा जोधा के सम्बन्ध मे है। १६ वीं शताब्दी से लेकर अद्यावधि राजस्थान के धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन मे चारणों का एक महत्व पूर्ण स्थान हैं। तब से अब तक चारणों ने अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया है।

चारण शाक्त होते हैं। भगवती उनकी कुल देवी है। आपस में वे 'जय माता जी की' कहकर नमस्कार करते हैं। भगवती ने एक अवतार चारण कुल मे भी लिया था जिसे चारण उन्हें 'बुआ जी' या 'बाई जी' भी कहते है। इनकी कुलदेवी करणी देवी है और इनका प्रसिद्ध मंदिर बीकानेर से एक स्टेशन इधर देशणोक [देशनोक] ग्राम मे है। करणी जी की चारण तथा राजपूत दोनो अत्यन्त श्रद्धा से पूजा करते हैं।

चारणों के अतिरिक्त ढाढ़ी, ढूलि, मोतीसर ब्राह्मणों तथा भाटों ने भी राजस्थान की बोलियो में काव्य-रचना की। संक्षेप में इनका परिचय नीचे दिया जाता है।

ढाढ़ी

चारण प्रायः अलंकारिक भाषा में काव्य-रचना करते हैं किन्तु ढाढ़ी साधारण, बोलचाल की भाषा मे काव्य-रचना के लिए प्रसिद्ध है। मारवाड़ के प्रसिद्ध राठौर राव

वीरम के पराक्रमों के वर्णन में बहादुर ढाढ़ी ने 'वीरमायण' नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी। वीरम चुडा के पिता थे। 'आल्हखंड' की भाँति 'वीरमायण' भी एक जनप्रिय काव्य है। ढाढी प्राय: रबाब या सारंगी पर लोकगीतें गाते है।

चारणों के अभ्युत्थान के कारण मारवाड़ के उच्चवर्ण के लोगो में ढाढ़ियों का प्रभाव कम हो गया किन्तु निम्नश्रेणी की जनता अभी तक इनकी कविता का आदर करती है। ढाढ़ियो की कविता के संग्रह से राजस्थान के इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ सकता है किन्तु दुःख की बात है कि इस प्रकार के संग्रह की ओर लोगो ने बहुत कम अभिरुचि दिखलाई है। दोआब के भाटों तथा डफालियो की भाँति ही उच्चवर्ण से तिरस्कृत अनेक ढाढ़ियों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया है किन्तु अभी भी इनके घर भैरव तथा योगमाया की पूजा होती है।

ढुलि

ढुलियों द्वारा लिखित साहित्य भी सर्व साधारण जनता की वस्तु है क्योकि उसमें सरलता कूट-कूट कर भरी रहती है। राजस्थान के कई स्थानों में ढुलियों की उपाधि राणा है। जयपुर अलवर आदि स्थानो में इनकी संख्या अधिक है। ढुलि अपना सम्बन्ध चारणों से स्थापित करते हैं किन्तु चारण इसे स्वीकार नही करते।

ढुलियो के सब से बड़े सहायक उदावत राजपूत हैं। ये सारंगी तथा ढोलक बजाकर नाचते गाते है इस कार्य मे इनको स्त्रियाँ भी सहायता करती है। ढुलियो द्वारा रचित प्रकाशित तथा अप्रकाशित साहित्य इन्ही के पास सुरक्षित है। "लाखा फुलानी" के दोहों का रचयिता ढुलि जाति का ही था।

'कुल-कुलमंडन' के अनुसार ढुलि प्राचीन मागधो के ही वंशज है।

सेवक

ये मगों के वंशज हैं जो समय समय पर भारत में आकर बस गये। ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण हैं तथा जैनों और बीकानेर के अधीनस्थ मन्दिरों में पुजारी का काम करते है। इनमें शिक्षा का पर्याप्त प्रचार है तथा संस्कृत के पठन-पाठन की परम्परा भी है। ओसवालों से इनका अधिक सम्पर्क है। राजस्थान में सेवक लोग भी कविता करते हैं किन्तु ढाढ़ियों तथा ढुलियो की भाँति केवल लोक-गीतों तक ही अपने को सीमित नहीं रखते। "रघुनाथ-रूपक" के रचयिता कविवर मनसाराम मंच्छ सेवक जाति के ही थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि वृन्द भी सेवक जाति के ही रत्न थे।

मोतीसर

ये चारणों का वंशवृक्ष रखते हैं, उनकी प्रशंसा में कवितायें लिखते हैं तथा उन्हीं से दान भी लेते हैं। सत्रहवीं शताब्दि के मध्यभाग में मारवाड़ के महाराजा गजसिंह ने उदयपुर के भीम सिसौदिया को मार डाला। भीम के पक्षपाती चतुरा नामक मोतीसर ने इस सम्बन्ध में एक कविता लिखी जिसका आशय यह था कि भीम सिसौदिया भैंसे की तरह मारा गया। मध्ययुग मे राजपूतों को भैंसे का शिकार अत्यधिक प्रिय था। मस्त भैंसे को मैदान मे छोड़ दिया जाता था और उसे आठ दश घुड़सवार चारो ओर से घेर लेते थे। जब वह उन पर आक्रमण करता था तो वे उसे भाले से मारते थे। मोतीसर का तात्पर्य यह था कि गजसिंह ने अन्याय से भीम सिंह का वध किया। गज सिंह चतुरा से इतने अप्रसन्न हुए कि उन्होंने

चतुरा की जागीर जब्त कर ली तथा चारणों को भी उसे दान देने के लिए मना कर दिया। विपत्ति में चतुरा गजसिह के दरबार में पहुँचा। महाराज ने जब उसे मारने के लिए तलवार उठाई तब चतुरा ने निम्नलिखित पद कहा:—

तु तोलें तलवार,
सिर शोहा गजसींह दे,
हुए तुरकाने हार
हिंदुश्राने उच्छव हुए।

अर्थात् हे गजसिंह! आप ने किसके सिर के लिए तलवार उठाई? क्योंकि उसे देखते ही तुर्क तो भाग गये और हिन्दुओं के घर महोत्सव होने लगा। इस पद को सुनकर गजसिह ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने चतुरा को केवल प्राणदान ही नहीं दिया बल्कि उसकी सम्पत्ति भी उसे वापस दे दी।

ब्राह्मण

राजपूताने मे ब्राह्मण संस्कृत तथा स्थानीय दोनों भाषाओं मे कविता करते थे। संस्कृत पर तो उनका एकच्छत्र अधिकार था किंतु देशी भाषाओं के क्षेत्र में उनके कई प्रतिद्वन्दी थे। यही कारण है कि राजपूताने में यह बात सर्वसाधारण में प्रचलित हो गई थी कि वास्तव में कविता तो केवल 'ब्राह्मण के मुख से ही निकली, उसी को कुछ चारणों ने और कुछ भाटों ने प्राप्त किया।' यहाँके ब्राह्मणो ने संस्कृत में कई वीर-काव्यो की रचना की। 'अजितोदय' तथा 'अभयोदय' काव्यों की रचना जगजीवन ने की थी। इसी प्रकार बूँदी मे 'शत्रुशालय-चरित्र, की रचना भी संस्कृत मे हुई थी। 'नाथ-पुराण' की रचना चिमनीराम जी ब्राह्मण ने की थी। यह राठौरों का इतिहास है। जोधपुर के राजा मानसिह ने इसके लिए चिमनीराम जी को

जागीर भी दी थी, जो अब तक उनके वंशजों के अधिकार में है। जयपुर के प्रसिद्ध कवि पद्माकर भट्ट भी ब्राह्मण ही थे।

भाट

अत्यंत प्राचीन काल से राजस्थान में भाटों का प्रभाव है। चारणों का प्रभाव क्षेत्र वस्तुतः कच्छ है, किंतु इसके बाहर जोधपुर, बीकानेर तथा शखावाटी आदि में भाटों का पर्याप्त प्रभाव है। मालवा तथा ब्रिटिश-भारत में चारणों का अभाव सा है, किंतु भाट सर्वत्र पाये जाते हैं। चारण केवल राजपूतों के ही दान-पात्र हैं किंतु भाट सब जातियों से दान लेते हैं। इनमें से अधिकांश ने तो इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया है, किंतु इस धर्म परिवर्तन के कारण उनके व्यवसाय में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है। पूर्व में भाटों के अतिरिक्त ब्रह्मभट्ट भी हैं जो वस्तुत. ब्राह्मण ही हैं। इनके तथा ब्राह्मणों के संस्कार में कुछ भेद नहीं है और संस्कृत के पठन-पाठन की परम्परा भी इनके घरों में है।

राजस्थान का सबसे प्राचीन भाट कवि चोचू था, जिसका समय १२ वीं शताब्दि विक्रमाब्द बतलाया जाता है। उसने 'बगरावत-बन्धुओं' का गुणगान किया था। राजस्थान के गूजरों के गाँवों में भोप लोग 'बगरावत-बन्धुओं के सम्बन्ध में प्रशंसात्मक गीतें गाते हैं।

चोचू के वंश में ही 'पृथ्वीराज रासो' का प्रणेता चंद बरदाई हुआ था। राजपूताने में हस्तलिखिति पुस्तकों की खोज करते समय इसी वंश के नानूराम नामक भाट ने चंद बरदाई की एक विस्तृत वंशावली पं० हरप्रसाद शास्त्री को दी थी।

चारणों और भाटों का पारस्पारिक कलह भी बहुत पुराना है। ऐसे ही एक झगड़े का उल्लेख पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

बी० ए० ने 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका', भाग १, सम्वत् १६६७, पृष्ठ १२७-१३४ मे 'वारहट लेक्खा का परवाना' शीर्षक मे किया है। इस परवाने पर माघ शुक्ल ५ संवत् १६४२ की मिति है और पंचोली पन्नालाल के हस्ताक्षर हैं। इस परवाने से ज्ञात होता है कि चारणों और भाटो का झगड़ा अकबर के दरबार तक भी पहुँचा था। राजपूताने के मौखिक-साहित्य में इस सम्बन्ध मे प्रचुर-सामग्री उपलब्ध है।

चारणों को दान

कवियों को जीविका का स्रोत उनकी रचनायें थी। ढाढ़ी, ढुलि आदि तो गाना गाकर कुछ माँग लेते थे। राजस्थान के लोग समय समय पर चारणों, बंदीजनों तथा भाटो को दान भी देते थे। प्राचीन-काल में राजपूताने में याचक लोग बहुत दान माँगते थे। कहा जाता है कि राजस्थान में नवजात शिशु को मार डालने का एक यह भी कारण था कि लोग याचकों द्वारा बहुत सताये जाते थे। राजपूत सदैव इस बात से डरते थे कि कन्या के विवाह के अवसर पर जब वे याचकों को संतुष्ट न कर सकेंगे तो वे उनकी अप्रशंसा में पद-रचना कर डालेंगे। इसी कारण वे लड़कियों को जन्म लेते ही मार डालते थे। इस प्रथा के निवारण के लिए कर्नल वाल्टर ने राजस्थान मे 'हितकारी सभा' की स्थापना की थी, जिसके द्वारा भिन्न-भिन्न वर्ग के याचकों के दान का अनुपात भी निश्चित् कर दिया गया था। इसका परिणाम भी अच्छा ही हुआ।

राजस्थान मे कवियो को सदैव दान मिलता रहा। जोधपुर राज्य मे चारणो को ३८० गाँव दान में मिले जिसका उपभोग अभी तक उनके वंशज कर रहे है। इसकी आय भी लगभग ३ लाख रुपये है। राजस्थान के प्रत्येक राज्य की ओर से दान

मे गॉव मिले हैं। मंगल तथा शुभ अवसरो पर धनी लोग चारणों को 'त्याग' देते हैं। ब्राह्मणों को जो दान दिया जाता है उसे 'दक्षिणा' कहते हैं किंतु चारणो के दान को 'त्याग' कहते है। 'त्याग' के समय किसी एक चारण को प्रधान बना दिया जाता है। 'त्याग' मे प्राप्त धन को वह कभी-कभी अन्य चारणों मे भी बॉट देता है। बूँदी के रावराजा दशहरा के अवसर पर एक सहस्र का 'त्याग' बूँदी के बाहर के चारणों को देते है।

कविता की अभिवृद्धि के लिए चारणों को 'लाख-पसाव' देने की पद्धति भी है। 'लाख-पसाव' का अर्थ है एक लक्ष का दान। इस एक लक्ष से केवल नक़द रुपयों से ही तात्पर्य नही है। इसके अंतर्गत हाथी, घोड़े, ऊँट, गहने, सवारी गॉव, अनाज आदि वस्तुओं का भी समावेश होता है। कुल दान तीन हज़ार से सत्तर हज़ार के बीच होता है, किन्तु उसे 'लाख-पसाव' ही कहा जाता है। म० म० कविराजा-मुरारीदान को जोधपुर राज्य की ओर से तीन 'लाख-पसाव' मिले थे। इसी प्रकार मुरारीदान के पितामह बाँकीदान को जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने दो 'लाख-पसाव' दिया था।

ब्राह्मणो की ही भॉति चारणों के लिए दान लेना कोई लज्जा की बात नहीं है, किंतु कतिपय समृद्ध चारण व्यक्ति-विशेष का दान ही स्वीकार करते है। कभी-कभी महाराजा, राजा तथा ठाकुर लोग अपने चारणों को पर्याप्त दान देकर उन्हे अयाचक बना देते हैं। अयाचक हो जाने के पश्चात् चारण किसी से विवाह अथवा श्राद्ध के अवसरो पर किसी प्रकार का दान स्वीकार नहीं कर सकता। वह न तो 'त्याग' मे ही अपना भाग ले सकता है और न 'लाख-पसाव' को ही स्वीकार कर सकता है। राजा महाराजा तथा सरदार लोग अपने चारणो

को अयाचक बनाने मे अपना गौरव मानते हैं। म० म० मुरारी-दान को जोधपुर के महाराजा ने अयाचक बना दिया था। उन्हे जब उदयपुर के राणा की ओर से 'लाख-पसाव' स्वीकार करने का निमंत्रण मिला तो अत्यंत नम्रता के साथ उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया।

प्राचीन-काल मे अयाचक चारण को अपने दाता के दुर्ग के सिंहद्वार के ऊपर बैठकर उसका गुणगान करना पड़ता था। द्वार को राजस्थानी मे 'पोल' कहते है। इसी कारण इन चारणो को राजस्थानी में 'पोलपात' कहते है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रतोली-पात्र' से हुई है। चारणों का एक उच्चवर्ग 'बारट' या 'बारहट' भी है जो वस्तुतः 'द्वारहठ' शब्द से निकला है। राजपूतों के विवाह के अवसर पर ये हठ-पूर्वक दान लेते थे। इसीलिए ये 'बारहट' कहलाये। 'भाँड़ियावास के आसिया चारण बुधदान ने 'त्याग' कम करने या बन्द करने वालो से असन्तुष्ट होकर एक कविता भी लिखी है जो यहाँ उद्धृत की जाती है :—

जासी त्याग जकरां घर सूँ जातां खाग न लागैं जेज।
धाररो तोल न बाँधो धणियाँ त्याग तणी कहि बाँधो तोल ?
जासी त्याग जकां का घर सूं जाती धरती करै जुहार।
दीजै दोस किसूं सिरदारां जमीं जाणरां अंक जरूर।

अर्थात् जिनके घर से 'त्याग' जायेगा उनके यहाँ से तलवार [खाग—खग्ग—खड्ग] जाते देर न लगेगी। स्वामियो! 'त्याग' का हिसाब तो बाँधते हो, जमीन का हिसाब नहीं बाँधते ? जिनके घर से 'त्याग' जायेगा उन्हें आती हुई पृथ्वी भी सलाम करती है। सरदारो ! दोष किसे दे ? यह लक्षण तो अवश्य भूमि छिन जाने के हैं।

'राजस्थान की भाषा'

राजस्थानी, राजस्थान और मालवा-प्रान्त की भाषा है। इसके पूर्व मे बुन्देली और व्रजभाषा, पूर्वोत्तर मे व्रज और बाँगड़, उत्तर में पञ्जाबी, पश्चिमोत्तर में लॅहदा, पश्चिम मे सिंधी, दक्षिण पश्चिम मे गुजराती और दक्षिण में मराठी भाषा बोली जाती है। राजस्थानी के अंतर्गत मुख्यरूप से निम्नलिखित पाँच बोलियों का समावेश है:—

[१] मारवाड़ी :—इसका क्षेत्र सब से अधिक विस्तृत और इसका साहित्य सर्वाधिक सम्पन्न है। यह पश्चिमी राजस्थान [जोधपुर, मेवार, जेसलमेर, बीकानेर, शेखावाटी आदि] की बोली है।

[२] ढूँढ़ाड़ी:—इसका क्षेत्र पूर्वी-राजस्थान [जयपुर, कोटा, कामा, झालावाड़, किशनगढ़ आदि] है। इसमें भी अच्छा साहित्य वर्त्तमान है।

[३] मेवाती:—यह मेव प्रान्त अर्थात् अलवर आदि स्थानों मे बोली जाती है। इसमें साहित्य नही के बराबर है।

[४] मालवी:—यह मालवा-प्रान्त [इंदौर, भूपाल, नेमाड़ तथा ग्वालियर राज्य के अधिकांश भाग] की बोली है। इसमें साहित्यिक-रचना बहुत कम हुई है।

[५] भीली:—यह राजस्थानी-भाषा का वह रूप है जिसे भील आदि पहाड़ी जातियाँ बोलती है। इस पर गुजराती का अत्यधिक प्रभाव है। इसमे साहित्य नहीं के बराबर है।

राजस्थानी की उत्पत्ति एवं विकास

उत्पत्ति की दृष्टि से राजस्थानी का सम्बन्ध गुजराती से है। इसकी आधारभूता-भाषा भारतीय-आर्य-परिवार की वह भाषा है जो मालवा और गुजरात मे प्रचलित थी। इस पर

मध्यदेश की शौरसेनी का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा और ५०० ई० के पश्चात् गुर्जरों की भाषा से भी यह प्रभावित हुई। गुर्जरों की मातृभाषा कदाचित् दर्द थी। ये पश्चिमोत्तर प्रान्त से आकर राजस्थान तथा गुजरात में बस गये और वहाँ शासन करने लगे। पश्चिमी-राजस्थानी अथवा मारवाड़ी, गुजराती की बहन हैं किन्तु पूर्वी-राजस्थान की बोलियाँ पश्चिमी से बहुत कुछ मिलती जुलती है। उत्पत्ति के विचार से पूर्वी-राजस्थानी (मेवाती, जयपुरी, हडोती) का पश्चिमी-हिन्दी अथवा पश्चिमी राजस्थानी से कितना सम्बन्ध है, यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि पश्चिमी-राजस्थानी और गुजराती की उत्पत्ति एक ही भाषा से हुई है। एल० पी० टैसीटरी ने उस आधारभूता भाषा का नाम 'प्राचीन-पश्चिमी-राजस्थानी' दिया है। इस 'प्राचीन पश्चिमी-राजस्थानी' में जैन-कवियों की रचनाएँ उपलब्ध हैं। डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी के अनुसार गुजराती १५ वीं या १६ वीं शताब्दि में 'प्राचीन-पश्चिमी-राजस्थानी' से पृथक होकर अपने अस्तित्व में आई होगी। गुजरात का प्रसिद्ध कवि नरसी मेहता का समय १५ वीं शताब्दि है, लेकिन जनप्रिय होने के कारण उसकी भाषा में परिवर्त्तन भी होता रहा है। प्राकृतयुग में भी शौरसेनी-प्राकृत तथा शौरसेनी-अपभ्रंश का राजस्थान तथा गुजरात की बोलियों पर पर्याप्त प्रभाव रहा। राजस्थान के कवि डिंगल तथा पिंगल पर समान रूप से अधिकार रखते थे। आजकल भी राजस्थान में साहित्यिक-भाषा के रूप में हिन्दी की ही प्रतिष्ठापना हुई है। किन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि राजस्थानी-बोलियों में साहित्य-रचना होती ही नहीं। मारवाड़ी का साहित्य तो पुराना है किन्तु राजस्थान की अन्य बोलियों में भी चारण-काव्य का अभाव नहीं। आधुनिक युग

में उदयपुर के 'प्राचीन-शोध-संस्थान' तथा बीकानेर के 'श्री सादूल-रिसर्च-इंस्टीटयूट की ओर से प्राचीन-राजस्थानी-साहित्य के संशोधन तथा सम्पादन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। इस ओर स्वर्गीय श्री सूर्य्यकरण पारीक, श्री नरोत्तम स्वामी, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री दशरथ शर्मा, श्री मोतीलाल मेनारिया, श्री रावमोहन सिह आदि का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

राजस्थानी साहित्य

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से समस्त राजस्थानी-साहित्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है (१) डिंगल (२) साधारण राजस्थानी। यहाँ पहले डिगल पर विचार करने के पश्चात् साधारण राजस्थानी के सम्बन्ध मे कुछ लिखा जायगा।

डिंगल

राजस्थानी भाषा का डिंगल नाम कैसे पड़ा, इस विषय मे भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। इस सम्बन्ध में अनेक कल्पनाये भी की गई हैं जिनकी आलोचना आवश्यक है।

[१] डा० एल० पी० टेसीटरी का कथन है कि डिंगल शब्द का वास्तविक अर्थ अनियमित अथवा गॅवारू है। ब्रजभाषा [पिंगल] परिष्कृत और साहित्य-शास्त्र के नियमों का अनुसरण करती थी, परन्तु डिंगल इस विषय मे अनियमित थी। अतएव उसका यह नाम पड़ा।

आलोचना

डिंगल वस्तुतः शिक्षित चारणों की भाषा थी। यह व्याकरण के नियमों से भी मुक्त न थी। छन्द, रस, अलङ्कार, ध्वनि आदि का इसमें उतना ही ध्यान रक्खा जाता

था जितना कि व्रजभाषा में। डिंगल राज-दरबार की भाषा थी। अतएव उसे गँवारू तथा अनियमित कहना समीचीन नही प्रतीत होता।

[२] म० म० पं० हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार आरम्भ मे इस भाषा का नाम 'डगळ' था, परन्तु बाद मे पिंगल के साथ तुक मिलाने के लिए उसको 'डिंगल' कर दिया गया। अपने मत की पुष्टि के लिए शास्त्री जी ने चौदहवीं शताब्दि के एक प्राचीन-पद का अंश भी उद्धृत किया है जो उन्हे कविराजा मुरारीदान से प्राप्त हुआ था। यह पद इस प्रकार है:—

> "दीसे जङ्गल डगळ जेथ जल बगल चाटे।
> अनहुँता गल दिये गला हुँतागल काटे॥

आलोचना

इस पद का अर्थ शास्त्री जी ने नहीं दिया है। केवल इतना ही कहकर छोड़ दिया है कि इससे स्पष्ट है कि 'जंगलदेश' अर्थात् मरुदेश की भाषा डिंगल कहलाती थी। इस पद मे भाषा की कहीं चर्चा भी नहीं है। बड़े आश्चर्य का विषय है कि शास्त्रीजी ने न जाने किस आधार पर यह निर्णय दे डाला है। रचना-शैली की दृष्टि से यह पद सोलहवीं शताब्दि का प्रतीत होता है। किंतु यदि इसे चौदहवीं शताब्दि का मान भी लें तो सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि आरम्भ में डिंगल का नाम 'डगळ' क्यों पड़ा? फिर राजस्थानी मे 'डगळ' मिट्टी के ढ़ेले अथवा अनगढ़ पत्थर को कहते हैं। अतएव यदि डिंगल अपरिमार्जित भाषा थी तो किस परिमार्जित भाषा की तुलना में उसे यह संज्ञा दी गई। व्रजभाषा तो यह हो नही सकती, क्योंकि चौदहवीं शताब्दि में

वह उतनी प्रौढ़ न थी। इस सम्बन्ध मे एक और भी बात विचारणीय है। वस्तुत. कोई भी चारण अपने द्वारा प्रयुक्त साहित्यिक-भाषा को 'डगळ' नहीं कह सकता, क्योंकि यह उसकी अनुदारता होगी।

[३] श्रीयुत गजराज ओझा के अनुसार 'ड' अक्षर डिंगल मे बहुत प्रयुक्त होता है। यहाँ तक कि वह डिंगल की एक विशेषता कहा जा सकता है। 'ड' अक्षर की इस प्रधानता को दृष्टि मे रखकर ही पिंगल के साम्य पर इस भाषा का नाम डिंगल रक्खा गया। जैसे बिहारी लकार-प्रधान भाषा है उसी प्रकार डिंगल डकार-प्रधान भाषा है।

आलोचना

यह मत भी निराधार है। डिंगल की दो चार कविताओं मे 'ड' वर्ण की प्रचुरता देखकर उसे इसकी विशेषता बतलाना और उसी के आधार पर इसका डिंगल नाम पड़ने की क्लिष्ट-कल्पना करना हेत्वाभास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस सम्बन्ध में इस बात को भी न भूलना चाहिए कि अभी तक अक्षर की विशेषता पर भाषा का नाम कभी नही पड़ा।

[४] श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी के अनुसार डिंगल शब्द डिम्+गल से बना है। डिम का अर्थ है डमरू और गल का अर्थ है गला। डमरू की ध्वनि वीरों के लिए उत्साहवर्द्धक होती है और यह वीररस के देवता महादेव का बाजा है। अतः डिमगल या डिंगल का लाक्षणिक अर्थ हुआ डमरू की ध्वनि की भाँति उत्साहवर्द्धक गले से निकली हुई कविता। डिंगल भाषा मे ऐसी कविता की प्रधानता है, अतएव वह डिंगल नाम से प्रसिद्ध है।

आलोचना

वास्तव में यह मत भी निराधार ही है, क्योंकि न तो महादेव वीररस के देवता हैं और न डमरू की ध्वनि उत्साह-वर्द्धक मानी गई है।

[५] राजस्थान में प्रसिद्धमत यह भी है कि डिंगल का मूल डिभ् और गल शब्द है। डिभ् का अर्थ है, बालक और गल का अर्थ है, गला। इस प्रकार डिभ्गल का अर्थ हुआ बालक की भाषा। जैसे प्राकृत, बाल-भाषा कहलाती थी उसी प्रकार राजस्थान की यह काव्य-भाषा भी डिभ्गल या डिंगल कहलाई।

आलोचना

यह मत भी निराधार ही है क्योंकि कल्पना के अतिरिक्त उसमें किसी प्रकार का ऐतिहासिक तथ्य नहीं है।

[६] पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अनुसार डिंगल शब्द पिंगल के साम्य पर अवश्य बना है किंतु इस शब्द का कोई विशेष अर्थ नहीं है। 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' भाग ३ अंक १, पृष्ट ६८ में आप लिखते हैं:—

"मेरे मत में डिंगल केवल अनुकरण शब्द है, काफिया न मिलेगा तो बोझों तो मरेगा' की कहावत के अनुसार पिंगल से भेद दिखलाने के लिए बना लिया गया है। जैसे वासवदत्ता के विषय में [अधिकृत्य] बनायी गई कहानी वासवदत्ता कहलाती है वैसे ही लक्षण-शास्त्र और लक्ष्य-रचना के अभेदोपचार से हिन्दी-कविता [ब्रजभाषा] पिंगल कहलायी। उससे भेद करने के लिए श्रुतिकटु टवर्ग बहुल भाषा की कविता के लिए डिंगल एक यदृच्छा शब्द है, डित्थ [व्यक्तिवाचक नाम

जिसका प्रयोग न्याय आदि शास्त्रो में पाया जाता है] आदि की तरह इसका कोई अर्थ नही है। निश्चित् अर्थ के वाचक किसी शब्द से, उससे भेद दिखलाने के लिए, उसी की छाया पर दूसरा अनर्थक शब्द बनने और उसके दूसरे अर्थ के वाचक हो जाने के कई उदाहरण मिलते है।"

श्री गुलेरी जी ने आगे इस प्रकार के कतिपय उदाहरण भी दिए हैं, जैसे कर्म [प्रधानकर्म] की छाया पर कल्म [अप्रधान कर्म] और कॅवर [कुमार, जिसका पिता जीवित हो] की छाया पर भॅवर [जिसका दादा जीवित हो]।

[७] श्री मोतीलाल जी मेनारिया के अनुसार आरम्भ मे डिंगल चारण तथा भाॅटो की भाषा थी। अपने आश्रयदाताओं के यश का ये लोग बहुत बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करते थे। धन के लोभ से कायर को शूर, कुरूप को सुन्दर, मूर्ख को पंडित तथा कृपण को दानी कह देना इनके लिए साधारण बात थी। इनकी कविता अतिशयोक्ति पूर्ण हुआ करती थी। वे डींग हाॅका करते थे। अतएव जो भाषा डींग हाॅकने के काम में लाई जाती थी, उसका श्रोताओं ने डींगल (डींग से युक्त) नाम रख दिया। राजस्थान के वृद्ध चारण तथा भाॅट आज भी इसे डिंगल न कहकर 'डींगल' ही बोलते हैं।

श्री मेनारिया जी के तर्क मे एक बड़ी त्रुटि यह है कि न तो उन्होंने 'डींग' शब्द की व्युत्पत्ति ही दी है और न यही स्पष्ट किया है कि राजस्थान मे कब से इस शब्द का प्रयोग अपने इस आधुनिक अर्थ मे होता है।

ऊपर डिंगल के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है। उसमे एक ही तथ्य स्पष्ट हो पाया है और वह यह है कि पिंगल के साद्दश्य पर ही 'डिंगल' शब्द की रचना हुई है। इसका प्रयोग

साहित्य के क्षेत्र में चारण तथा भाट ही किया करते थे और इसमें वीर भावनाओं का ही चित्रण होता था। शब्दों के साधारण रूपो की अपेक्षा द्वित्त वर्ण वाले रूपों का ही डिंगल के कविगण विशेष प्रयोग करते थे। आरम्भ मे साधारण राजस्थानी और डिंगल मे कोई अंतर न था पर बाद में साहित्य में व्यवहृत होने के कारण डिंगल मे एक प्रकार की स्थिरता आ गई। कवि लोग जान बूझ कर द्वित्त वर्ण वाले शब्दों का प्रयोग करने लगे और साधारण शब्दों का भी तोड़ना मोरोड़ना प्रारंभ कर दिया। बोलचाल की राजस्थानी मे ऐसे शब्दो का प्रयोग नहीं होता था। यही कारण था कि डिंगल जनता के लिए धीरे धीरे कम बोधगम्य होती गई और अंत में उसका समझना भी कठिन हो गया।

डिंगल-रचनाओं मे गीत महत्त्वपूर्ण हैं। इन गीतों में राजाओ एवं अन्य वीरों के वीर कार्यों तथा गुणों का उल्लेख हुआ है। इनसे साधारण छोटी-मोटी और महत्वपूर्ण सभी प्रकार की ऐतिहासिक बातों एवं घटनाओं पर बड़ा प्रकाश पड़ सकता है। ये गीत हजारो की संख्या मे उपलब्ध है। आवश्यकता है इनको उचित रूप से संग्रहीत, सम्पादित और प्रकाशित करने की। राजाओ के दरबारो मे रहने वाले चारण भाटों ने अपने आश्रयदाताओ की प्रशंसा में या उनके नाम पर बहुत से ग्रन्थो की इस काल मे रचना की। राजा लोग भी कभी-कभी काव्य-रचना करते थे। डिंगल की रचनाओं में सब से अधिक महत्वपूर्ण बीकानेर के सुप्रसिद्ध राठौर महाराज पृथ्वीराज की 'बेलि क्रिसन रुकमिणी री' और मिश्रण चारण सूर्यमल्ल रचित 'वंश-भास्कर' हैं। 'बेलि' साहित्यिक डिंगल का सर्वोत्तम उदाहरण है। इस काव्य की राजस्थानी में कई

टीकायें हुई'। यही नहीं, राजस्थानी में यह एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी संस्कृत मे भी टीका लिखी गई है। 'वंश-भास्कर' कृत्रिम डिंगल का उत्तम उदाहरण है। अन्य डिंगल रचनाओं मे 'वचनिका राठौर रतनसिंहजीरी' विशेष प्रसिद्ध है।

साधारण राजस्थानी

साधारण राजस्थानी के अंतर्गत बोलचाल के राजस्थानी की रचनाओं, जैन लेखकों की रचनाओं तथा ब्रजमिश्रित पिंगल की रचनाओं का समावेश है।

प्राचीन और मध्ययुग की राजस्थानी-भाषा की अधिकांश रचनायें जैन लेखकों की कृतियाँ हैं। राजस्थानी-साहित्य-निर्माण का श्रेय अधिकांश मे इन्हीं लेखकों को देना चाहिए। यद्यपि इनकी भाषा पर अपभ्रंश का पूर्ण प्रभाव है, फिर भी तत्कालीन भाषा के अध्ययन के लिए इनकी कृतियों में प्रचुर मात्रा मे सामग्री उपलब्ध है। पिंगल रचनाओं और लौकिक कविता की भाषा, जनता में प्रचलित होने के कारण धीरे-धीरे आधुनिक होती गई है; डिंगल-कविता की भाषा, आगे चलकर स्थिर हो गई। परन्तु जैन रचनायें इन दोषों से बहुत कुछ मुक्त हैं। इसमे भाषा का तत्कालीन रूप बहुत कुछ सुरक्षित है। यह साहित्य बहुत विस्तृत है, किंतु अभी तक अप्रकाशित है।

डिंगल का संक्षिप्त व्याकरण

[१] उच्चारण—

(क) डिंगल की वर्णमाला में ङ०, ऋ, ॠ, लृ, ॡ अक्षर नहीं हैं और एक ही अक्षर 'व' का उच्चारण दो तरह से होता है। उच्चारण का अंतर दिखलाने के लिए 'व' और 'व़' कर दिया

जाता है। अर्थात् एक 'व' तो वैसा ही रहने दिया जाता है और दूसरे के नीचे बिंदी लगा दी जाती है। ऐसा न करने से अनेक स्थलों पर अर्थ का अनर्थ हो जाने की सम्भावना रहती है, क्योंकि दोनो के अर्थ मे बहुधा भिन्नता होती है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि 'व के नीचे बिदी न लगाने से शब्द का क्या अर्थ होता है, और बिंदी लगाने देने से, उच्चारण के अनुसार, उसका अर्थ किस प्रकार बदल जाता है :—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
वचियो	वच गया	व़चियो	छोटा सा बच्चा
वास	गंध	व़ास	निवास स्थान
वात	हवा	व़ात	कहानी

(ख) डिंगल में 'ल' का उच्चारण कहीं हिन्दी 'ल' की भाँति और कहीं वैदिक 'ळ' की भाँति मूर्द्धन्य होता है। आधुनिक राजस्थानी तथा मराठी में इस 'ळ' का उच्चारण अभी भी होता है। आजकल बहुत से विद्वानों में 'ळ' के स्थान पर 'ल' लिखने की प्रवृत्ति देखी जाती है, पर यह ठीक नहीं है। यह 'ळ' जब किसी शब्द के बीच मे आता है तब उसके स्थान पर ल' लिख देने से उसके अर्थ में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। पर बहुत से ळकारान्त शब्द ऐसे हैं जिनको लकारान्त कर देने से उनका अर्थ बदल जाता है। नीचे कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं:—

शब्द	अर्थ	शब्द	अर्थ
चंचळ	घोड़ा	चंचल	चपल
पोळ	दरवाजा	पोल	खोखलापन
कुळ	वंश	कुल	सब, तमाम

काळ	मृत्यु	काल	कल, दूसरा दिन
गोळ	गुड़	गोल	वृत्ताकार

(ग) डिंगल की वर्णमाला में तालव्य 'श' और मूर्द्धन्य 'ष' नहीं है। 'ष' का प्रयोग 'ख' के रूप मे होता है। लिखने में तालव्य 'श' के स्थान पर भी दन्त्य 'स' लिखा जाता है; पर बोलते समय जहाँ जिस शकार अथवा सकार की आवश्यकता होती है, वहाँ वही बोला जाता है, जैसे:—

> देखे अकबर दूर, घेरौ दै दुसमण घणां ।
> सांगाहर रण सूर, पैर न खिसै प्रताप सी ॥

यह दोहा लिखने मे उपरोक्त ढंग से लिखा जायगा पर पढ़ते समय इसमें आए हुए सकारो का उच्चारण निम्नलिखित ढंग से होगा.—

> देखे अकबर दूर, घेरौ दै दुशमण घाणां ।
> सांगाहर रणशूर, पैर न खिसै प्रताप सी ॥

(घ) डिंगल में बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनका उच्चारण करते समय किसी अक्षर विशेष पर बल देना पड़ता है। बल देकर न पढ़ने से उस शब्द का अर्थ कुछ और होता हैं और बल देकर पढ़ने से कुछ और हो जाता है। उदाहरण के लिए 'राड़' शब्द को लीजिए। इनमे 'रा' पर बल देकर न पढ़ने से इसका अर्थ 'लड़ाई' हो जाता है और बल देकर पढ़ने से 'पैतृक प्रभाव' हो जाता है। इस तरह के थोड़े से और शब्द यहाँ दिये जाते है

मोड़	(१) घुमाव	(२) आम्र मंजरी; सेहरा
नाथ	(१) स्वामी	(२) नथ-बंधन
नाड़ो	(१) इजारबद	(२) छोटा जलाशय

नार (१) स्त्री (२) सिंह

[२] कारक, विभक्तिः—

डिंगल में विभक्तियों की दशा बड़ी विचित्र और गड़बड़ है। कुछ विभक्तियाँ तो ऐसी हैं जो दो-दो, तीन-तीन कारकों में लगती हैं और कुछ एक ही कारक में। इसके अतिरिक्त कुछ विभक्तियाँ ऐसी भी हैं जो डिंगल के प्राचीन-ग्रन्थों में देखने में आती हैं, पर अर्वाचीन-काल में उनका स्थान दूसरी विभक्तियों ने ले लिया है। डिंगल की मुख्य विभक्तियाँ नीचे दी जाती हैं:—

कारक	विभक्ति	उदाहरण
कर्त्ता	इ, उ	ढोलइ, करहउ
कर्म	उ	संदेसड़उ, कळेजउ
करण	इ, इइ, ए (बहु०)	मुखि, हाथे
संप्रदान	ए, नूँ, आँ	घरे, राजानूँ, अहाँ,
अपादान	हूँ, हूँत, हुँता हुँतों, हुँती;	गला हुँता, खुसी हूँत
सम्बन्ध	ह, हाँ (बहुबचन)	हलाह, भवाँह, करहाँ
अधिकरण	इ, ए (बहुबचन)	गिरि, मगि, निसाणे

टिप्पणी

'उ' विभक्ति कर्त्ता तथा कर्म दोनों कारकों के पुलिंग शब्द के एक वचन में लगती है। डिंगल में स्त्रीलिंग-शब्द, कर्त्ता तथा कर्म कारकों में प्रायः इकारान्त तथा आकारान्त होते हैं। कर्त्ता कारक पुलिंग के बहुवचन में बहुधा 'आ' और कर्म के बहुवचन में बहुधा दोनों लिंगों में 'आँ' या 'याँ' होता है। ऊपर की विभक्तियों के अतिरिक्त डिंगल में निम्नलिखित परसर्गों का भी प्रयोग होता है:—

कर्म—नइ, प्रति, रहइ ।

करण—करि, नइ, पाहि, साथि. सिउँ,सूँ ।

सम्प्रदान—कन्ह, नै, प्रति ।

अपादान—कन्हइ, तउ, थउ, थकउ, थकि, पासइ, लगि ।

सम्बन्ध—केरउ, तणउ, चा, ची, चो, नउ, रउ, रहइ ।

अधिकरण—कन्हइ, ताँइ, पासइ, माँझऊ, मझारी माँझि, माँ, माहि ।

[३] डिंगल के भिन्न भिन्न सर्वनामों के रूप नीचे दिये जाते हैं:—

[क] पुरुषवाचक सर्वनाम—

हूँ=मैं

कर्त्ता — हूँ, मइँ, म्हे ।

कर्म — हूं, मूं, मूझ, अम्ह ।

सम्बन्ध—मूझ, माहरो, अम्हीणो, म्हारउ, मो, मूं ।

अधिकरण—अम्हाँ ।

तूं=तू

कर्त्ता—तुम्ह, तुम्हाँ, तूं ।

कर्म—तुम्ह, तुम्हाँ।

करण—तुम्हाँ, सूँ ।

अधिकरण—तूझ, ताहरो, तुम्हीणो

व्युत्पत्ति—डिंगल 'हूँ' की उत्पत्ति अप० 'हउँ,' सं० अहम् से हुई है। इसी प्रकार 'मइँ' की उत्पत्ति अप० 'मइँ,' प्रा० [करण कारक] 'मए' सं० मया से हुई है। इस 'मइँ' का रूप हिन्दी तथा पंजाबी में "मैं" पुरानी भोजपुरी मे "मे" गुजराती तथा मैथिली में "मे" प्राचीन कोसली में 'मइँ,' सिन्धी तथा उड़िया मे 'मुं,' प्राचीन मराठी में 'म्यां' तथा आधुनिक मराठी मे 'मी' मिलता। है

तू की उत्पत्ति सं० तू [जैसा कि तु+अम्] तथा त्वं से हुई स० 'युष्मे' प्रा० 'तुम्हे' से ही 'तुम्ह,' 'तुम्हा' की उत्पत्ति हुई है।

[ख] निश्चयवाचक सर्वनाम:—

यह

कर्त्ता—एह, ए, आ

कर्म—एह, ए, आ

करण—एणइ, इणइ, इणि, एणि

सम्प्रदान—एहॅ, इहॅ, अहो

अपादान—एह, ए

सम्बन्ध—एह, ए

अधिकरण—एहिं, एणइ, इणइ, इणि, एणि

व्युत्पत्ति—संस्कृत का षष्टी एक वचन 'एतस्य,' प्र० 'एअस', अप० 'एअह' ही वस्तुत: 'एह,' 'ए' का आधार है। इसीप्रकार प्राकृत का एताणं एआणं हो अन्य रूपों का आधार है। पूरब के अवहट्ट में इसका "ई" तथा "ओ" रूप मिलता है। उदाहरण स्वरूप विद्यापति ठाकुर की कीर्तिलता के निम्नलिखित पद में ये सर्वनाम उपलब्ध हैं:—

बालचन्द विज्जावइइ भासा,
दुहुँ नहि लग्गइ दुज्जण हासा।
ओ परमेसर-हर सिर सोहइ,
ई निच्चइ नाअर-मण मोहइ।

[ग] सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम—

जो

कारक	एकवचन	बहुवचन
कर्त्ता	जो, जु, जा	जे, जेअ

कर्म	,,	जेहु
करण	जेणइ, जिणइ, जेणिइ, जिणि	जेहि
सम्प्रदान	जा, जिहि, जउ जू जेणि, जिणी, जे, जिअँ, जियं	
अपादान	जास, जस, जह, जिह	जे
सम्बन्ध	,, ,, ,, ,,	,,
अधिकरण	जहिँ, जिहि, जेणइ, जिणइँ, जेणि, जिणि	

सो

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	सोइ, सोय, सु, सा	ते
कर्म	,, ,, ,, ,,	तेह
करण	तिणइ	तेहि, तेइ
संप्रदान	ता, तहँ, तउ, तू तेह, तिह, तेहँ, ते, तिअँ, तियँ	
अपादान	तास, तस, तसु, तह, तेह, ते	,,
संबन्ध	,, ,, ,, ,, ,,	,,
अधिकरण	तहि, ताहिं, तेणइ, तिणइ, तेणि, तिणि	

व्युत्पत्ति—भोजपुरी, मैथिली, मगही, बँगला तथा उड़िया में इसका रूप "जे" मिलता है। असमिया मे यह "जि" [उच्चारण ज़ि] हो जाता है। इन पूरबी बोलियों के इस सर्वनाम की व्युत्पत्ति निम्नलिखित है :—

यकः/ मा० प्रा० यके/जए/जइ/जे।

टर्नर ने अपनी 'नेपाली डिक्शनरी' [पृ० ६२२] में 'सो' की व्यत्युत्ति सं० सो [स-उ] से निकाली है। जो=स+एव। इस प्रकार 'जो' कि व्युत्पत्ति होगी 'य—एव'। "सोइ" सर्वनाम

का प्रयोग तुलसी तथा सूर ने किया है। वस्तुतः यह शौरसेनी का रूप है।

[घ] प्रश्नवाचक तथा अनिश्चयवाचक सर्वनाम

कौन, कोई

कारक	एक वचन	बहुवचन
कर्त्ता	कावण, कउँण, कण, कुण	केइ, केवि
कर्म	को, कोई, कोइ, कोवि, कोय, कॉइँ	केह
करण	कउणइँ, कुणइँ, किणइँ, कणि	कुणि
सम्प्रदान	क, किहँ	केहि, केइ
अपादान	कह, किण, केह, कहि	केह, केह, कियँ
सम्बन्ध	कुणह	” ”
अधिकरण	कुणइँ, कहिं, काहइँ, किण	” ”

व्युत्पत्ति—इस सर्वनाम का आधार "कः पुनः" है। उत्पत्ति का क्रम निम्नलिखित है :—

क. पुन ˃ कपुण ˃ कउण ˃ कउँण। इसी आधार से अन्य रूपों की उत्पत्ति हुई है।

[ङ०] सार्वनामिक विशेषण :—

एतउ, एतलउ = इतना। जेतउ, जेतलउ = जितना। तेतउ, तेतलउ = तितना। केतउ, केतलउ = कितना। एवड़उ, इसउ, अइसउ, एहड़उ = ऐसा। जेवड़उ, जिसउ जेहड़उ = जैसा। तेवड़उ तिसउ, तेहडउ = तैसा। केवड़उ, किसउ, केहड़उ = कैसा। अपणउ = अपना। सो = समान। सगळउ = सब। किउँ कुछ। के = कई। कॉइ = क्या, कुछ।

व्युत्पत्ति—इन शब्दों की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे डा० चटर्जी ने अपनी पुस्तक बंगलाभाषा की उत्पत्ति तथा विकास [ओरिजिन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ बैंगाली लैंग्वेज पृष्ठ ६०१] में पूर्णप्रकाश डाला है—वस्तुतः इन शब्दों के आधार पालि के

"एत्ताक", "कित्ताक" आदि शब्द है। इन्ही से प्राकृत के 'एत्तिअ', "केत्तिअ", "जेत्तिअ" शब्द निकले हैं।

[क्रिया] डिगल मे क्रिया के रूप कही अपभ्रंश, कही पश्चिमी-हिन्दी और कहो 'गुजराती के रूप से मिलते है। नीचे ये रूप दिए जाते हैं :—

वर्तमान काल

[क] हिन्दी मे वर्तमान-कालिक-क्रिया के साथ जिस अर्थ में 'है' का प्रयोग होता है उसी अर्थ मे डिंगल मे बहुधा 'छइ' काम आता है। इसके रूप तीनों पुरुषो मे इस प्रकार होते हैं:—

पुरुष	एकबचन	बहुबचन
उत्तमपुरुष	छूं	छां
मध्यमपुरुष	अछइ,छइ	छउ
अन्यपुरुष	अछइ, छइ	छइ, अछइ

[ख] सामान्य भूत

डिंगल में मूलक्रिया के पीछे 'हउ'; 'यउ' तथा 'इउ' लगा कर सामान्य भूतकाल के रूप बनाये जाते हैं, यथा-कीहउ [कहा] उडिउ (उड़ा) आदि।

कहीं कहीं 'इअउ' तथा 'इउ' प्रत्यय का प्रयोग भी मिलता है, जैसे—पूजियउ, (पूजा), दठिउ (देखा) आदि।

[ग] भविष्यत्काल—

भविष्यत्काल के रूप डिंगल में दो तरह से बनाये जाते हैं—(१) मूलक्रिया के अंत में 'सी' 'स्यूं' तथा 'स्यॉ' लगाकर (२) 'ला' 'ली' तथा 'लां' लगाकर, जैसे—रहसी (रहेगा), रहस्यूं (रहूँगा), मिलस्याँ (मिलेगे), बूडला (डूब जायेगा), बूडली (डूब जायेगी) इत्यादि।

पूर्वकालिक क्रिया—

डिंगल में क्रिया के अंत में 'एवि', 'एविय', 'इ','ई', 'अ', 'य', 'नइ', 'करि' आदि प्रत्यय लगाकर पूर्वकालिक क्रिया के रूप बनाये जाते हैं, जैसे—पणमेवि, पणमेविय, लइ, पालिय, वहिय, करनिइ, दौड़करि आदि।

अव्यय :—

पुणि = फिर। तई = तब। जई = जब, यदि। वळे, वळी = फिर। किरि = मानो। अने, ने = और। किम, कैम = कैसे। हाँ = यहाँ। परि = ज्यों, समान। जाणे, जाणि = मानो। तिणि = इसलिए। केड़इ = पीछे। बाँसे = पीछे। कारणि = लिए। तदि = तब। इ = ही। साम्ह = सामने। तिमि = तैसे। नहु = नहीं। म = मत। कुत्र = कहाँ। किसू = कैसे। केथि = कहाँ। ऐथि = यहाँ। पिण = भी। तोइ = तोभी। तळे = नीचे।

शब्द-समूह

आधुनिक आर्य-भाषाओं के शब्द-समूह के अध्ययन के लिए उन्हें चार भागों में प्रायः विभक्त किया जाता है। ये विभाग हैं—तत्सम, अर्द्ध-तत्सम, तद्भव और देशी। इनके अतिरिक्त अन्य भाषा से उधार लिए हुए शब्दों का भी अध्ययन आवश्यक होता है। तत्सम में 'तत्' शब्द से संस्कृत से तात्पर्य है। इसप्रकार जो शब्द आधुनिक आर्य-भाषाओं में संस्कृत से सीधे आते हैं उन्हें तत्सम कहते हैं। ऐसे शब्दों का अनुपात भी आधुनिक भाषाओं में भिन्न-भिन्न है। आधुनिक बंगला में अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा ऐसे शब्दों का प्राचुर्य्य है। हिन्दी, राजस्थानी आदि उत्तरी-भारत की भाषाओं एवं बोलियों में अपेक्षा कृत तत्सम शब्द कम हैं। फिर भी डिंगल में अनेक

तत्सम शब्दो का प्रयोग किया गया है। जैसे, मंगल, आरम्भ, चित्र, समुद्र, कवि, सन्धि, ज्ञान, राग, सन्ध्या, प्राची, अम्बर, तथा अरुण आदि।

अर्द्ध-तत्सम शब्दों के अन्तर्गत उन शब्दों की गणना होती है जिनमे किंचित ध्वन्यात्मक-परिवर्तन हो जाता है। जैसे 'कृष्ण' से 'क्रिशन' राजस्थानो मे यह 'क्रिसन' हो जाता है। इसप्रकार के बहुत अर्द्ध-तत्सम शब्द भी राजस्थानी मे है। जैसे—'परमेश्वर', 'कीर्ति', 'सरस्वतो' तथा 'शैशव' के लिए 'परमेसर', 'कीरति', 'सरसती' तथा 'सैसव' आदि। तद्भव शब्द वे है जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश से होते हुए आधुनिक भाषाओं मे आए है। डिंगल के कतिपय ऐसे शब्द नीचे दिये जाते है:—

धन्न (प्रा० धण्ण), सिसहर (सं० शशधर), खिण (अप० खण), संदेसड़ा (प्रा० संदेशडउ), नेड़ो (प्रा० णिअड़), निद (प्रा० णिसद), सल्ल (सं० शल्य), अपछर (सं० अप्सरा), ओलंबा (सं० उपालम्भ), मुसाण (अप० मसाण), वयण (अप० बअण), मोरत (सं० मुहूर्त्त), केवाण (स० कृपाण), सीह (सं० सिंह), मयमंत (मदमत्त), सादूलो (सं० शार्दूल), समाथ (समर्थ), रुहर (सं० रुधिर), मछर (मत्सर), पारख (सं० परीक्षा), कोयन्नल (सं० कोपानल), पिसण (पिशुन), अखोण (सं० अक्षौहिणी), कुण (अप० कउण), किमाड़ (अप० किवाँड़), काज (अप० कज्ज)।

देशीशब्दो के अन्तर्गत कोषकारो ने उन शब्दों को रक्खा है जिनकी व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकती, यद्यपि भाषा-शास्त्र अब इतनी उन्नति कर गया है कि किसी शब्द की व्युत्पत्ति देना कठिन नहीं है। प्रत्येक प्रान्त में ऐसे प्रान्तीय-शब्द

उपलब्ध हैं, जिनकी व्युत्पत्ति असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। नीचे डिंगल में प्रयुक्त कतिपय ऐसे प्रान्तीय-शब्द दिये जाते हैं:—

भाठो=पत्थर। गंडक=कुत्ता। नाड़ो=छोटा जलाशय। ढोलो=पति। डोभू=बर्र। करद=तलवार। फिट=धिक्कार। रूक=खंग। डाको=चोर। दाटक=हृष्ट-पुष्ट। बेह=मंगल कलश। पाधर=समथल। बुवो=चला। थह=गुफा। ढिगलो=ढेर। मादू=मनुष्य। डाच=मुख। छरा=पञ्जा। थावर=शनिवार। पलीत=मैला, नाच। खॉखळ=ऑंधो। कॉंकड़=जंगल। कॉंकळ=युद्ध। नाणो=रुपया। चाड़=बुराई। बैंडा=पागल। लंकाल=सिंह। साँवठो=मजबूत।

डिंगल में अरबी, फारसी, तुर्की आदि के शब्द भी लिए गये हैं किन्तु इनमें कहीं-कहीं अत्यधिक ध्वन्यात्मक परिवर्तन हुआ है, किन्तु कहीं-कहीं साधारण भी। नीचे ऐसे कतिपय शब्दों की सूची दी जाती है:—

ढोल (अ० दुहुल), कमाण (फा० कमान), बिड़ाणा (फा० बेगाना), मखमल (अ०), नफो (अ० नफा), लानत (फा०), मुतलब (अ० मतलब), मुसकल (अ० मुश्किल), आद (फा० याद), गरज (फा० गरज़), नुक़साण (अ० नुकसान), आखर (फा० आख़िर), हुन्नर (फा० हुनर), गुन्हो (फा० गुनाह), जरदो (फा० ज़र्द), आसक (अ० आशिक़), मोजात (अ० मुहताज), पतसाह (फा० पादशाह), काफर (अ० काफिर), कोम (अ० क़ौम) हाजर (अ० हाज़िर), काबू (तु०) बगतर (फा० बख्तर) कागल (अ० कागज़), मुलक (अ० मुल्क), अरज (अ० अर्ज़) महल (अ०), इनाम (अ०), कुसामद (फा० खुशामद), फसाद (अ०)

डिंगल का साहित्य

डिगल में लिखित-साहित्य प्रचुर-मात्रा में उपलब्ध है। इसके रचयिता चारण हैं, अतएव इसे चारण-काव्य भी कह सकते हैं। इसमें वीर, भक्ति, श्रृंगार, नीति आदि सभी प्रकार के काव्य-ग्रंथ प्राप्य हैं। पौराणिक-कथाओ के आधार पर भी कई छोटे प्रबन्ध-काव्यों की रचना हुई है, जैसे साँयाझूला कृत "नागदमण", लौगीदान कृत "ओखाहरण" [ऊषाहरण] तथा बारहठ मुरारिदास कृत "विजैव्याव" जिसमे रुक्मणी-हरण का सरसें वर्णन है। कई चारण-कवियों ने तो ऐतिहासिक इतिवृत्तों, या शूरवीर क्षत्रिय राजाओं तथा लोकवीरों की जीवन-गाथाओं पर भी प्रबन्ध-काव्यों की रचना की है, जैसे सूजा बीठू कृत "राव जैत सी रो छंद" कविराजा करनी दान कृत "सूरज प्रकाश", जिसमें जोधपुर के महाराजा अभयसिंह जी की युद्धवीरता का वर्णन है; वीर-भाण रतनू कृत "राज रूपक" महाकवि सूर्यमल कृत "वंश-भास्कर" सोन्याण निवासी ठाकुर केसरी सिंह बारहठ कृत "प्रताप चरित", "दुर्गादास (राठौड़) चरित्र", "राजसिंह चरित्र" तथा पाबूदान आशिया कृत "पाबू चरित्र"। इन काव्य-ग्रन्थों मे वीररस की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

डिगल के कवियों मे 'महाराज "प्रिथीराज" [पृथ्वीराज] आढ़ा दुरसा जी, बाँकी दास तथा कविराजा सूर्यमल की बहुत प्रसिद्धि है। अतएव इनके सम्बन्ध में नीचे संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

पृथ्वीराज

आप का जन्म वि० सं० १६०६ में हुआ था। सम्राट अकबर के प्रसिद्ध सेनापति महाराजा रायसिंह इनके बड़े

भाई थे। आप बड़े ही वीर स्वदेशाभिमानी एवं स्पष्टभाषी पुरुष थे। सम्राट अकबर के आप प्रीति-पात्र थे। और इसी कारण आप दिल्ली और आगरे में ही प्रायः रहा करते थे। आपकी सर्वोत्कृष्ट कृति 'वेलिक्रिसन रुकमणी री' है किन्तु आप ने फुटकर कवितायें भी लिखी है। नीचे इनकी वीररस की कविता के उदाहरण दिये जाते है।

धर बाँकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणाँ नरिंदाँ घेरियो, रहै गिरंदाँ राण।

शब्दार्थ—धर=धरा। पाधरा—अनुकूल। माण=मान घणां=अनेक। गिरेंदाँ=पहाड़ो मे। बाँकी=विकट।

अर्थ—जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है और दिन अनुकूल हैं; जो वीर अपने को नही छोड़ता, वह महाराणा (प्रताप) अनेक राजाओ से घिरा हुआ पहाड़ों मे निवास करता है।

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणै साँप ।।२।।

शब्दार्थ—एहड़ा=ऐसे। जेहड़ा=जैसा। ओझकै=चौंक पड़ता है। जण=जन्म दे।

अर्थ—हे माता! ऐसे पुत्रों को जन्म दे जैसा राणाप्रताप है, जिसको अकबर सिरहाने का साँप समझकर सोता हुआ चौंक पड़ता है।

अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजल।
मेवाड़ो तिण माँह, पोयण फूल प्रताप सी ॥३॥

शब्दार्थ—समद=समुद्र। सूरापण=शौर्य, वीरता। तिण माँह=उसमें। पोयण=कमल।

अर्थ—अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीरता रूपी जल भरा हुआ है। परन्तु मेवाड़ का राणाप्रताप उसमें कमल के

फूल के समान है। अर्थात् जिस तरह कमल पर जल का कोई प्रभाव नही पड़ता उसी तरह प्रताप पर भी अकबर की वीरता का कोई प्रभाव नही पड़ा है।

दुरसा जी

आप का जन्म वि० सं० १५६२ मे हुआ था। आप आढा गोत्र के चारण थे। युवावस्था मे अकबर से आपकी भेंट हुई। वह आपकी प्रतिभा और वीरता से बहुत प्रसन्न हुआ। तबसे आप बादशाह के साथ ही रहने लगे। अकबर ने कई बार इनसे प्रसन्न होकर इन्हे पुरस्कार भी दिया था। राजस्थान मे इनकी कविता की बड़ी ख्याति है। कोई ऐसा पुरुष न होगा जिन्हें इनके दो चार पद याद न हो। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है :—

अकबर गरब न आँण, हींदू सह चाकर हुआ।
दीठो कोई दीवाण करतो लटका कठहड़ै ॥१॥

शब्दार्थ—गरब न आँण=गर्व मत कर। सह=सब। दीवाण=महाराणा। दीठो=देखा है।

अर्थ:—हे अकबर! सब हिन्दू तेरे चाकर हो गये, इस बात का अभिमान मतकर। क्या कभी किसी ने महाराणा (प्रताप) को शाही कठघरे के पास झुक-झुककर सलाम करते देखा है?

अकबर कीना आद, हींदू नृप हाजर हुवा।
मेदपाट मरजाद, पग लागो न प्रताप सी ॥२॥

शब्दार्थ—कीना आद=याद किया। मेदपाट=मेवाड़

अर्थ—अकबर ने याद किया तो सब हिंदू राजा हाजिर हो

गये। लेकिन मेवाड़ की मर्यादा को रखने वाला राणाप्रताप उसके पाँवों में नहीं पड़ा।

> कदे न नामै कंध, अकबर ढिग आवै न ओ।
> सूरज बंस संबंध, पालैं राण प्रताप सी ॥१॥

शब्दार्थ=कदे=कभी। ओ=यह।

अर्थ.—यह राणा न तो कभी अकबर के पास आता है और न मस्तक ही झुकाता है। प्रतापसिंह सूर्य्यवंश के संबन्ध का पालन करता है। (सूर्य किसी के भी सामने नहीं झुकता। प्रताप सूर्य्य का वंशज है, इसलिए अपनी वंश-मर्यादा को रखने के लिए वह भी किसी के सामने नतमस्तक नहीं होता।)

बाँकीदास

कविराजा बाँकीदास का जन्म मारवाड़ राज्य में वि० सं० १८२८ में हुआ था। आप आशिया शाखा के चारण थे। सं० १८६० में जोधपुर के महाराजा मानसिंह से आपकी भेंट हुई। महाराजा ने इनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर इन्हें अपने राज-कवियों में स्थान दिया। बाँकीदास संस्कृत, डिंगल, फारसी तथा ब्रजभाषा के प्रकांड पंडित थे और आशुकवि होने के साथ इतिहास के भी अच्छे ज्ञाता थे। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। आपके स्फुट-काव्य से कतिपय दोहे नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

> सूर न पूछै टीपणौ, सुकन न देखै सूर।
> मरणां नूँ मंगल गिणै, समर चढ़ै मुख नूर ॥१॥

शब्दार्थ—टीपणो=पंचांग। सुकन=शकुन। नुँ=को। नूर=तेज, कीर्ति।

अर्थ—शूरवीर (ज्योतिषी के पास जाकर) युद्ध के लिए मुहूर्त्त नहीं पूंछता, शूर शकुन नही देखता। वह मरने मे ही मंगल समझता है और युद्ध में उसके मुंह की कान्ति चमक उठती है।

सुरातन सुरां चढ़ै, सत सतियाँ सम दोय।
आड़ी धारां ऊतरै, गणै अनळ नूँ तोय ॥२॥

शब्दार्थ—सुरातन=शूरत्व। सत=सतीत्व; पति के साथ चलने का आवेश। आड़ी धारां ऊतरै=तलवार से काटते हैं।

अर्थ—शूरवीरों में वीरत्व चढ़ता है और सतियों में सतीत्व। ये दोनों समान हैं। (शूरवीर) तलवार से कटते हैं और (सतियाँ) अग्नि को जल समझती हैं।

जाया रजपूताणियाँ, बीरत दीधी वेह।
प्रांण दियै पांणी पुणग, जावा दियै न जेह ॥३॥

शब्दार्थ—जाया=जन्म दिया। बीरत=वीरता। दीधो=दी, प्रदान की। वेह=विधाता ने। पांणी=तेज को। पुणग=तनिक भी।

अर्थ—(वीरों को) राजपूतनियों ने जन्म दिया और विधाता ने वीरता प्रदान की, जो प्राणों को देखकर भी अपनी प्रतिष्ठा को किंचित मात्र भी नहीं जाने देते।

कविराजा सूर्यमल्ल

आपका जन्म चारणों की मिश्रण शाखा मे वि० सं० १८७२ मे बूंदी में हुआ था। आप सहृदय कवि तथा उच्चकोटि के विद्वान् थे तथा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश-पिंगल, डिंगल

आदि कई भाषायें जानते थे। आपका देहान्त सं० १६२० में बूंदी मे हुआ था। आपके ग्रन्थों मे 'वंश-भास्कर' की सब से अधिक ख्याति है। यह बूंदी राज्य का एक प्रकार से इतिहास है, किन्तु प्रसंग-वश इसमें राजस्थान की अन्य रियासतों का भी थोड़ा-बहुत इतिहास आ गया है। नीचे आपके कतिपय पद दिये जाते है :—

दमँगळ बिण अपचौ दियण, बीर धणी रो धान।
जीवण धण बाल्हा जिकां, छोड़ौ जहर समान॥१॥

शब्दार्थ—दमँगळ =युद्ध। बिण=बिना। धान=अन्न। धण=स्त्री। बाल्हा=प्रिय। जिकां=जिनको।

अर्थ—(हे मित्रो!) वीर स्वामी का अन्न बिना युद्ध के नही हजम होता। अतः जिनको जीवन और स्त्री प्रिय हो, वे उस अन्न को जहर समझ कर छोड़ दे।

नहँ डाकी अरि खावणौ, आयां केवळ वार।
बधाबधी निज खावणौ, सो डाकी सरदार॥२॥

शब्दार्थ - डाकी=जबरदस्त। वार=अवसर। बधाबधी =बदाबदी, होड़ लगाकर।

अर्थ—जबरदस्त सेनापति वह नही है जो केवल अवसर आने पर शत्रु-संहार करता है, लेकिन प्रतापी नेता वह है जिसके लिए अपने ही लोग होड़ लगाकर प्राणोत्सर्ग करते हैं।

सबणी सबरी हूँ सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणे पूत सम, बलय लजाणे नाह॥ ॥

शब्दार्थ—सहणी = सखी । वलय = चूड़ा, चूड़ियाँ । नाह = नाथ, पति ।

अर्थ —हे सखी ! और सब बातें मुझे सह्य हो सकती हैं, किन्तु यदि प्राणनाथ मेरे वलय को लजा दें और पुत्र मेरे दूध को, तो ये दोनों बाते मेरे लिए समानरूप से दाहकारी एवं हृदय को उलटने वाली हैं।

× × × ×

किसी राजपूत महिला का पति शत्रुओ से लड़ने के लिए रणभूमि में गया हुआ है। वह उसीकी चिता मे मग्न है, पर यह नही चाहती कि उसका पति भागकर घर आ जाय जिससे सती होने को उसकी लालसा पर पानी फिर जाय और ससार के सामने उसे लज्जित होना पड़े। इतने में उसे सूचना मिलती है कि उसका पति रणक्षेत्र की तरफ़ से भागा हुआ घर की ओर आ रहा है। अब इसके दुःख का क्या ठिकाना; इतने मे पति भी आ पहुँचता है। कायर पति को अपनी आखों के सामने खड़ा देख एक लंबी साँस खींचकर वह कहती है। कविराज सूर्य्यमल ने नीचे के पद मे इसका वहुत ही सुन्दर चित्रण किया है।—

की घर आवे थें कियौ, हणियाँ बळती हाय ।
धण थारे घण नेहड़े, लीधो बेग बुलाय ।।१।।
पूतां रे बेटा थिया, घर में बधियो जाळ ।
अब तो छोड़ो भागणो, कंत लुभायो काळ ।।२।।
धव जीवे भव खोवियो, सो मन मरियो आज ।
मौनूं ओछे कँचुवै, हाथ दिखाताँ लाज ।।३।।
यो गहणों यो वेस अब, कीजै धारण कंत ।
हूँ जोगण किण कामरी, चूड़ा खरच मिटंत ।।४।।

अर्थ—हाय, घर आकर तुमने क्या किया ? यदि मारे जाते तो मै भी तुम्हारे साथ सती होती। इस पर पति उत्तर देता है—प्रिये, तेरा प्रेमाधिक्य ही तो मुझे शीघ्र बुला लाया ॥१॥ पोतो के भी पुत्र होकर अब घर में बहुत जाल बढ़ गया है और काल तुम्हारी अवस्था पर लुभा रहा है। कंत ! अब तो युद्ध से भागना छोड़ दो ॥२॥ हे प्रीतम ! इस प्रकार से जी कर तो तुमने सचमुच जन्म खो दिया। तुम्हारी यह दशा देखकर आज मेरा तो मन ही मर गया। अब तो इस (सौभाग्य चिह्न) ओछी कँचुकी में हाथ दिखाते हुए भी मुझे लज्जा होती है ॥३॥ कंत ! यह मेरा वंश और ये मेरे आभूषण अब आप ही धारण कीजिये। मैं तो योगिनी हो चली। अब आप के किस काम की। अच्छा ही हुआ आपके भी चूड़ियों का खर्च मिटा ॥४॥

चारण-काव्य का महत्व

चारण-काव्य का क्षेत्र यद्यपि राजस्थान था, किन्तु इसे भारतीय-साहित्य की सर्वोत्तम रचनाओं मे स्थान दे सकते हैं। वस्तुतः राजपूत भारतीय-वीरता के प्रतीक थे और मध्य-युग में राजस्थान वह दुर्ग था जिसमे भारतीय-सभ्यता तथा संस्कृति के रक्षक निवास करते थे। यही कारण है कि मध्ययुग मे वीर-राजपूतों ने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर मर मिटने में आना कानी न की। ऐसे वीरों की उज्वल-कीर्ति राजस्थान के चारण-काव्य ही में प्राप्य है। कवीन्द्र रवीन्द्र तो चारण-काव्य पर इतने मंत्रमुग्ध थे कि आपने 'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' के समक्ष १८ फरवरी सन् १६३७ में भाषण देते हुए निम्नलिखित उद्गार प्रगट किया था :—

"भक्ति-साहित्य हमे प्रत्येक प्रांत में मिलता है। सभी स्थानों के कवियों ने, अपने ढंग से राधा और कृष्ण के गीतों

का गान किया है। परन्तु अपने रक्त से राजस्थान ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, वह अद्वितीय है और उसका कारण भी है। राजपूतों के कवियों ने जीवन की कठोर वास्तविकताओं का स्वयं सामना करते हुए युद्ध के नक्कारों की ध्वनि के साथ स्वाभाविक काव्य-गान किया। उन्होंने अपने सामने साक्षात् शिव के तांडव की तरह प्रकृति का नृत्य देखा था। क्या आज कोई अपनी कल्पना द्वारा उस कोटि के काव्य की रचना कर सकता है? राजस्थानी-भाषा के प्रत्येक दोहे में जो वीरत्व की भावना और उमंग है, वह राजस्थान की मौलिक निधि है और समस्त भारतवर्ष के गौरव का विषय है। वह स्वाभाविक, सच्ची और प्रकृत है। मेरे मित्र क्षिति-मोहन सेन ने हिन्दी-काव्य से मेरा परिचय कराया। आज मुझे एक नई वस्तु की जानकारी हुई है। इन उत्साहवर्द्धक गीतों ने मेरे समक्ष साहित्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण उपस्थित किया है। मैंने कई बार सुना था कि चारण अपने काव्य से वीर योद्धाओं को प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया करते थे। आज मैंने उस सदियों से पुरानी कविता का स्वयं अनुभव किया। उसमें आज भी बल और ओज हैं। भारतवर्ष चारण-काव्य के सुसंपादित संस्करण की प्रतीक्षा कर रहा है।" ❀

छन्द

डिंगल-काव्य में सब से अधिक प्रयोग 'दोहा' और 'छप्पय' का हुआ है। चन्दबरदाई के छप्पय तो प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'मंदाक्रान्ता', भुजंगप्रयात', पद्धोर, तोमर

❀ माडर्न रिव्यू, दिसंबर १६३८, पृष्ठ ७१०, 'दि चारनस् आव् राजपूताना'।

आदि छन्दों का प्रयोग भी डिंगल मे होता है। फुटकल रचनाओं मे डिंगल के कवियो ने 'गीत' छन्द का प्रयोग भी बहुत किया है, जो डिंगल की एक विशेषता है। यह 'गीत' भी कई प्रकार के होते हैं। 'रघुवर-जस-प्रकास' आदि डिंगल के गीत-ग्रन्थों में ८५ प्रकार के गीतों का उल्लेख हुआ है। इनमें से जो गीत बहुत प्रचलित हैं उनके नाम ये हैं:—त्रवंकड़ो, पालवणी, भापड़ी, सावभड़ो, चोटीबंध, सुपंखड़ो, मकुटबंध, छोटी सैणोर और बेलियो गीत। छप्पय को डिंगल मे 'कवित्त' और दोहा को दूहो' कहते हैं। हिन्दी मे दोहा छन्द एक ही प्रकार का होता है परन्तु डिंगल में इसके दूहो, सोरठियो दूहो, बड़ो दूहो, और तुँवेरी दूहो ये चार भेद माने गये हैं। इनके लक्षण नीचे दिये जाते हैं:—

दूहो—यह हिन्दी का दोहा है। इसके पहले और तीसरे चरण मे १३-१३ मात्राएँ और दूसरे और चौथे में ११-११ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

> **तरवर कदे न फळभखै, नदी न संचै नीर।**
> **परमारथ के कारणे, साधाँ धर्‌यौ सरीर ॥**

(२) सोरठियो-दूहो—यह हिन्दी का सोरठा है। यह दोहे का बिलकुल उल्टा होता है। इसके पहले और तीसरे चरण में ११ - ११ मात्राएँ और दूसरे और चौथे चरण मे १३-१ मात्राएँ होती हैं। डिंगल कविता का यह अत्यन्त प्रिय छन्द है और बीर, शृंगार और करुण रस के वर्णन के लिए बहुत उपयुक्त है। डिंगल के कवियो ने इसकी प्रशंसा भी बहुत की है। यथा:—

> **सोरठियो दूहो भलो, कपड़ो भलो सपेत।**
> **ठाकरियो दाता भलो, घुडलो भलो कमेत ॥**

सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवण री बात।
जोबण छाई धण भली, तारां छाई रात ॥

'सोरठियो दूहो, का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

"अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हिंदू तुरक।
मेवाड़ो तिड माँह, पोयण फूल प्रताप सी ॥

(३) बड़ो दूहो—इसके पहले और चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ तथा दूसरे और तीसरे में १३-१३ मात्राएँ होती हैं। जैसे:—

रोपी अकबर राह, कोट भड़ैं नह कांगरे।
पटके हाथळ सीह पण, बादल ह्वै न बिगाड़ ॥

(४) तूंवेरी दूहो—यह बड़े दूहे का उल्टा होता है। इसके पहले और चौथे चरण में १३-१३ मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ होती हैं। जैसे:—

ऊभी सूरिज साँमुही, माधौ धोए मेटि।
ताह उपन्नी पेटि, मोहण वेली मारुई ॥

ऊपर गीतों की चर्चा की गई है। छोटी 'सैणोर' इसी प्रकार का एक छन्द है। यह एक मात्रिक छन्द है। इसके चार भेद हैं। जैसा कि कविवर मनसाराम······'मंछ'कृत डिंगल काव्य के रीति-ग्रन्थ 'रघुनाथ-दीपक' में कहा गया है :—

चार भेद तिण रा चवै, कवियण बड़ ओकूब।
समझ बेलियो, सोहणो, पुङ्गद, जाँगड़ो, खूब ॥

इस प्रकार 'छोटी सैणोर' के चार भेद होते है वे हैं (१) वेलियो गीत, (२) सोहणो, (३) पुंगद, (४) जाँगड़ो।

वेलियो गीत का लक्षण इस प्रकार है:—

सोलै कला विखम पद साजै, समपद पनेरे कला समाजै।
धुर अठार मोहरा गुरु लघु धर, कइजै 'मंछ' वेलियो इम कर ॥

अर्थात् विपम चरणों मे १६ मात्राएँ होती है और सम चरणो मे १५ मात्राएँ होती हैं। यह तो एक साधारण लक्षण है। परन्तु पहले चरण की विशेषता कहीं कहीं इस बात में देखी जाती है कि वह १८ मात्राओं का होता है और अन्त में गुरु लघु (ऽ।) होता है। पिंगल-शास्त्र के अनुसार इसको अर्द्धसम-मात्रिक-छन्द कहना चाहिए।

यही लक्षण और स्पष्ट शब्दों मे डिंगल-कोष के रचयिता कविवर मुरारीदान जी ने इस छन्द के सम्बन्ध में कहा है। यथा:—

अठारह कल आदतुक, दूजी पनरह पेख।
तीजी तुक सोलतणी, पनरह चौथी पेख ॥
दूजा दोहा सूँ दुरस, सहक्रम जाण सुजाण।
सोलह पनरह कलस कल, एम वेलियो आण ॥
मुहरावाली तुक यही, मुहरा माँहि मुणन्त।
वर्णों गीत इम वेलियो, आदगुरु लघु अंत ॥

अलंकार

डिंगल-कविता प्रधान रूप से वर्णनात्मक और भाव-प्रधान होती है। अतएव डिंगल के कवियों ने ऐसे अलंकारों का प्रयोग विशेप रूप से किया है—जो वर्ण्य-विपय की सजीवता एवं भाव-व्यंजना को बढ़ाने में सहायक होते हैं। डिंगल की फुटकर रचनाओं में अलंकारों का प्रदर्शन कम देखा जाता है लेकिन क्रमबद्ध वर्णनों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि

अलंकारों का प्रयोग उपयुक्त स्थानों पर होता है। डिंगल में एक अलंकार अवश्य ऐसा है जिसका प्रयोग इसके कवियों के अत्यधिक मात्रा में किया है। यह अलंकार है वयणसगाई। हिन्दी मे हम इसे शब्दानुप्रास कह सकते है। अनुप्रास की तरह इसके भी कई भेद-उपभेद हैं। वयणसगाई का साधारण नियम यह है कि किसी छन्द के प्रथम शब्द का आरम्भ भी उसी वर्ण से होना चाहिए। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है। वयण सगाई को स्पष्ट करने के लिए ऐसे शब्दों के नीचे लकीर खीच दी गई है।

अकबर गरब न आँण हींदू सह चाकर हुवा।
दीठो कोई दिवाँण, करतो लटका कटहडे ॥
नर जेथ निमाणा निलजी नारी, अकबर गाहक वट अवर।
चौहटै तिण जायर चीतड़ो, वेचै किम रजपूत वट ॥

रस

डिंगल-कविता में वीररस का प्रधानरूप से चित्रण हुआ है, किन्तु शृंगार, शान्त, हास्य, रौद्र तथा बीभत्स रसों का चित्रण भी डिंगल के कवियो ने किया है। वीररस के चित्रण के लिए निम्नलिखित पद उदाहरण स्वरूप दिये जाते है। पति युद्ध मे गया है। पत्नी के हृदय मे मनोभावो का जो अंतर्द्वन्द हो रहा है वही इन पदो मे चित्रित है :—

नायण आज न माँड पग, काल सुणीजै जङ्ग।
धारां लागीजै धणी, तो दीजै वण रंग ॥ ॥
ऊभी गोख अवेखियौ, पेलां रो दळ सेर।
पडियौ धव सुणियौ नहीं, लीधौ धण नाळेर ॥२॥
जिण मरियाँ जिण जीतियाँ, जो धव आवै धाम।
पग पग चूड़ी पाछ हूँ, तो रावत री जाम ॥३॥

अर्थात् हे नाइन ! तू आज मेरे पैरो को (महावर आदि से) मत रंग। कल युद्ध सुना जाता है। यदि स्वामी मारे जायें तो फिर (सती होने के समय) खूब रंग देना ॥१॥ झरोखे में खड़ी हुई वीर पत्नी ने देखा कि शत्रु-दल अधिक प्रबल है। अतः पति के धराशायी होने के समाचार सुनने के पहले ही उसने सती होने के लिये नारियल अपने हाथ मे ले लिया ॥२॥ यदि पति बिना विजयी हुए या बिना मरे घर आये तो मै पग-पग पर चूड़ियाँ तोड़-फोड़कर बिखेर दूँगी, मै वीर राजपूत की कन्या हूँ।

अब हास्य रस का भी एक उदाहरण ले। यह पद अपभ्रंश मे भी इसी प्रकार आया है।

राजा रावण जनमियो, दस मुख एक सरीर।
जननी ने सांसो भयो, किण मुख घालूँ खीर॥

अर्थात् राजा रावण ने जन्म लिया। उसके एक शरीर पर दस मुँह थे। माता संशय मे पड़ गई कि उसको स्तन-पान किस मुख से कराया जाय।

अब शृंगार रस का भी एक उदाहरण देखें।

बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवाँ एक सहाव।
जबही बरसइ घण घणउ, तब ही कहइ पियाव॥

अर्थात् पपीहा और विरहिणी दोनों का एक ही स्वभाव है। जब जब मेघ बरसता है तभी ये दोनों "पी आव", "पी आव" पुकारते हैं।

काव्य-दोष

काव्य के मुख्य अर्थ की प्रतीति को हानि पहुँचाने वाली वस्तु को दोष कहते हैं। डिंगल मे दोष ग्यारह प्रकार के माने गये

हैं। नीचे दो छप्पय उद्धृत किये जाते हैं जिनमें सभी तरह के दोषों के नाम और उदाहरण आ गये हैं:—

कहियौ मैं कै कहूँ किसूँ अंधौ तै कहियै ।
लिखा पान धनंख, राम छबकाळो लहियै ॥
अन्न अजेब जगईस, निमौतै हीण दोष निज ।
रतनद तिरद कबंध, सार इम चली निनंग सुज ॥
कवि छंदो भंग पङ्ग कह, तुक धर लछण तोर मैं ।
जत विरूध जोगड़ रो दुहौ, बणौ लघु साणोर मैं ॥१॥
बिस्नु नाम कुज बिस्नु बिस्नु सुत मित्र अपस बद ।
कच अहि मुख ससिलंक, स्यंध कुच कोक नाळ छिद ॥
मनुष्याँ मत बिललाय, गाय प्रभु जी पखतूटल ।
रांमण हणियौ राम, गङ्ङ खाधो तारक पल ॥
यण भांत कहै बहरो यला, महपत में पय राम रै ।
तुक एण अमंगल आद अंत, कवियण विधि गुण वह करै ॥

(१) अंध—जहाँ उक्त विषय का निर्बाध निर्वाह न हो सके तथा किसी चरण में उक्त विषय सम्मुख और किसी में पराङ्मुख हो वहाँ यह दोष माना जाता है। जैसे:—

कहियौ मैं कै कहूँ, किसूं अंधौ तैं कहियै ।

यहाँ "कहियौ" शब्द के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई बात पहले कही जा चुकी है। लेकिन बाद में "कहूं" आया है जिससे यह ध्वनि निकलती है कि बात अभी तक कहनी है। इसके सिवा यहाँ इस बात का भी पता नहीं लगता कि "मै" से अभिप्राय कवि से है अथवा किसी दूसरे व्यक्ति से। फिर "किसूं" आया है जिससे यह स्पष्ट नहीं होता कि कहने वाला अपनी बात किसी के पक्ष मे कह रहा है अथवा

विपक्ष में। अतः यहाँ पर अंध दोष है। दंडिन् के अनुसार हम इसे 'व्यर्थ' दोष की संज्ञा दे सकते हैं।

(२) छबकाळ—विरुद्ध-भाषाओं अथवा विभिन्न-भाषाओं के मिलान को—यथा ब्रजभाषा, खड़ीबोली, पारसी अथवा अन्य किसी भाषा को डिंगल से मिला देने को—"छबकाळ" दोष कहते हैं। जैसे —

"लित्ता पान धनंख"

इसमें 'लित्ता' शब्द पञ्जाबी का, 'पान' हिन्दी का और 'धनंख' डिंगल का है। इसलिए छबकाळ दोष है। इस दोष के पर्याय में दंडिन का 'देश-काल न्याय-आगम-विरोध दोष है

(३) हीन—जहाँ कोई निश्चित् अर्थ न हो सके अथवा जहाँ अर्थ का अनर्थ होने की संभावना हो वहाँ यह दोष होता है। जैसे:—

"अज अजेब जगईस"

यहाँ 'अज' से कवि का अभिप्राय शिव से है अथवा ब्रह्मा से अथवा विष्णु से, यह बात स्पष्ट नहीं है। क्योंकि तीनों ही अजन्मा और जगत् के ईश हैं। दंडिन का 'ससंशयम्' दोष इसका पर्यायवाची है।

(४)निनंग—जहाँ क्रम-भंग वर्णन हो अर्थात् जो बात पहले कहने की हो उसे बाद में कही हो और जो बात बाद में कहने की हो उसका उल्लेख पहले कर दिया गया हो, वहाँ यह दोष होता है। जैसे:—

"रत नद तिरत कबंध सार द्रुम चली निनंग सुज"

पहले तलवारें चलती हैं, बाद में रक्त बहता है और फिर कवंध तैरते हैं। लेकिन उपरोक्त पंक्ति में उलटा वर्णन किया गया है। रक्त की नदियों में कवंध पहले तैरते हैं और तलवार

बाद मे चलती है। अतः निनंग दोष है। दंडिन का अपक्रम दोष इसका पर्यायवाची है।

(५) पांगळो—पिंगल-शास्त्र द्वारा निश्चित् नियमों के विरुद्ध किसी छंद के चरण मे कम अधिक मात्राओं का होना पांगळो दोष कहलाता है।

(६) जातविरुद्ध—यदि किसी छंद के भिन्न-भिन्न चरण भिन्न-भिन्न जाति के छन्दों के हों तो वहाँ यह दोष होता है।

(७) अपस—यदि किसी बात को सीधी तरह से न कह कर घुमा-फिराकर कहा जाय तो वहाँ यह दोष होता है। जैसे :—

"बिस्नु नाम कुल बिस्नु, बिस्नु सुत मित्र अपस बद।"

यहाँ सीधा 'रामचन्द्र' न कहकर, बिस्नु नाम (हरि) हरि का नाम (सूर्य) उनका सुत (सुग्रीव) और उनका मित्र (रामचन्द्र) कहा गया है। अतः अपसदोष है। दंडिन का 'अपार्थ' दोष इसका पर्यायवाची है।

(८) नालछेद—काव्य-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध किसी विषय का मनमाने ढंग से वर्णन करना नालछेद दोष कहलाता है। जैसे :—

"कच अहिमुख ससि लंक स्यंध कुच कोक नाल छिद"

यहाँ पहले चोटी का, बाद मे मुख का वर्णन किया गया है जो नखशिख-वर्णन की परिपाटी क विरुद्ध है। अतएव नाल-छेद दोष है।

(९) पषतूट—जहाँ छन्द के प्रथम दो चरणों में कच्चीजोड़ और दूसरे दो में पक्कीजोड़ हो, वहाँ पषतूट दोष गिना जाता है। कच्चीजोड़ उसे कहते हैं जिसमे कठ अर्थात् शब्दानुप्रास

नहीं आता है और पक्कीजोड़ मे शब्दानुप्रास रहता है। यथा—

कच्चीजोड़—"तीर शेलां छुराफोक तरवारियाँ"

॥शब्दानुप्रासहीन॥

पक्कीजोड—"तहक नीपाण गिरवाण हरण तन"

॥शब्दानुप्रासयुक्त॥

(१०) बहरो—जहाँ शब्द-योजना ऐसी बेढंगी हो कि शब्दों का दुतरफा अर्थ निकलकर भ्रम पैदा हो जाय, वहाँ यह दोप होता है। जैसे :—

"रामण हणियौ राम"

इससे राम ने रावण को मारा और रावण ने राम को मारा ये दोनों अर्थ निकलते हैं। इसलिए 'बहरो' दोष है।

(११) अमंगल—यदि किसी छंद के किसी चरण के पहले और अंतिम अक्षर के मिलने से कोई अमंगल सूचक शब्द बने तो वहाँ पर यह दोष माना जाता है। जैसे :—

"महापन में पय राम रै";

छप्पय की इस तुक का पहला अक्षर 'म' और अंतिम अक्षर 'रै' है। इनके संयोग से 'मरै' शब्द बनता है, जो अशुभ है। अतः यहाँ पर अमंगल दोप है।

के जर्नल के २५ वें भाग मे किसी व्यक्ति ने उस अनुवाद को पुन' प्रकाशित कराया है। अन्त मे चन्द की कविता के सम्बन्ध मे टॉडों की जो सम्मति है, वह नीचे उद्ध त की जाती है—

चन्द का ग्रन्थ उसके समय का स्वाभाविक इतिहास है। इसमे ६६ भाग [समयो] तथा एक लाख पद हैं, जिनमे पृथ्वीराज के पराक्रम का वर्णन है, किन्तु इसके साथ-ही-साथ इसमे प्रत्येक उच्च राजपूत-वंश के पूर्व-पुरुषों का उल्लेख भी मिलता है। यही कारण है कि राजपूत-नाम-धारी प्रत्येक वंश के संग्रहालय में यह ग्रन्थ सुरक्षित मिलता है। पृथ्वीराज के युद्धो, विवाहों तथा अधीनस्थ अनेक शक्तिशाली राजाओ एवं उनके भवनों तथा वंश का ज्ञान प्राप्त करने के लिए चन्द का यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजपूताने के इतिहास तथा भूगोल के साथ-साथ इस ग्रन्थ मे दन्तकथाओं आदि का भी वर्णन मिलता है।

मुझे विश्वास है कि कुछ लोगों ने इस लेखक को 'चन्द्र' अथवा 'चन्द्र भाट' और इसके ग्रन्थ को 'पृथुराज-राजसू' के नाम से सम्बोधित किया है। 'राजसू' से राजसूययज्ञ का तात्पर्य है।❀

वार्ड ने 'हिन्दू-साहित्य तथा दन्तकथाओं के 'इतिहास' भाग २ पृष्ठ ४८२ मे इस ग्रन्थ की चर्चा की है, जिसमे उसने इसका हिन्दी की कन्नौजीबोली में लिखे जाने का उल्लेख किया है।

मेरे विचार मे यह वही ग्रन्थ है जिसका एशियाटिक-सोसाइटी, कलकत्ता के जर्नलों में 'पृथ्वीराज-भाषा तथा उसके कैट-

---

† मूल अंग्रेजी में टाडराजस्थान, भाग १ पृ० २५४

❀ इस्त्वाव द ला 'लितरेत्यौर ए द ला माइथालोजी दे हिन्दोज़।

लॉग में 'वियाना‡ के प्रथम सम्राट पृथुराजका पराक्रम नाम मिलता है।

चन्द ने 'जयचन्द्रप्रकाश' अर्थात् 'जयचन्द्र' का इतिहास' नामक भी एक ग्रन्थ लिखा है। पहले ग्रन्थ (रासो) को तरह यह भी कन्नौजीबोली में लिखा गया है और वार्ड ने इसका भी उल्लेख किया है।

परम्परानुसार तासी चन्द को पृथ्वीराज का समकालीन मानते हैं। प्रसिद्ध है कि ये पृथ्वीराज के साथ ही सम्वत् ११५१ में पैदा हुए थे। इनका जन्म स्थान लाहौर बतलाया जाता है। ये 'जगातिगोत्र' के भट्ट-ब्राह्मण थे तथा इनके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे। चन्द पृथ्वीराज के राजकवि ही नहीं, अपितु सखा और सामन्त भी थे। षड्भाषा, व्याकरण काव्य, साहित्य, छन्द-शास्त्र, ज्योतिष, पुराण नाटक आदि में ये पूर्णतया दक्ष थे। इनका जोवन पृथ्वीराज से बिल्कुल मिला हुआ था। सभा, युद्ध, आखेट तथा यात्रादि में ये सदैव महाराजा के साथ रहा करते थे। जब शहाबुद्दोन गोरी, पृथ्वीराज को कैद करके गजनी ले गया तब चन्द भी वहाँ पहुँचे। जाते समय 'रासो' को अपने प्रिय पुत्र जल्हन को पूरा करने के लिए दे गए। जिस प्रकार 'कादम्बरी' को 'बाणभट्ट' के पुत्र ने पूरा किया था, उसी प्रकार जल्हन ने भी हिन्दी के इस महाकाव्य को पूरा किया। रासो में इसका उल्लेख इस प्रकार है:—

कवि परिचय

पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज

× × ×

† १८८५ पृ० ४५

‡ आगरा प्रान्त का एक नगर।

रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि ।
पृथिराज-सुजस कवि चन्द कृत, चंद-नंद उद्धरिय तिमि ॥

गज़नी की भरी सभा मे, एक दिन, जब कौतुक आदि हो रहे थे, ये बादशाह से मिले और पृथ्वोराज के शब्द-वेधो बाण चलाने की कुशलता की बड़ी प्रशसा की। बादशाह ने पृथ्वी राज को बाण चलाने की आज्ञा दी। चन्द का इशारा पाते ही उन्होंने ऐसा बाण मारा कि शाह धराशायी हो गया। उसके मरते ही चन्द ने म्यान से कटार निकालकर अपना काम तमाम किया और फिर उसे पृथ्वोराज को दे दी।

परंपरानुसार रासो चंद को पृथ्वोराज का समकालीन मानता है। रासो मे चंद के जीवन आदि के संबंध में कुछ नहीं लिखा है; किन्तु जनश्रुति है कि चंद और पृथ्वोराज साथ ही पैदा हुए और अंत में साथ ही उनकी मृत्यु भी हुई। पृथ्वी-राजरासो के अनुसार महाराज पृथ्वोराज का जन्म सं० ११५१ है जिसकी आनन्द संवत् से गणना करने पर वि० सं० १२०६ निकलता है। इधर ओझा जी ने "कोपोत्सव-स्मारक-संग्रह" में प्रकाशित एक लेख में, शिलालेखों तथा ऐतिहासिक-उल्लेखों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यह तिथि सर्वथा अशुद्ध है।* किन्तु कविराव मोहनसिंह ने अन्य तर्क संगत प्रमाणों पर विचार कर यह सिद्ध किया है कि पृथ्वोराज का जन्म संवत् १२०६ वि० मानना भ्रमपूर्ण नहीं है।† दोनों पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए हुए तर्कों का विस्तृत विवेचन आगे

---

* कोपोत्सव-स्मारक-संग्रह, 'पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल पृ० ५३

† राजस्थान-भारती, भाग १, अंक, २—३ पृथ्वीराजरासो पर पुनर्विचार,' पृ० ४३।

किया जायेगा। यहाँ केवल इतना ही संकेत करना आवश्यक है कि यदि जनश्रुति तथा आनन्द संवत् की कल्पना पर विश्वास किया जाय तो चंद का जन्म सं० १२०६ वि० में सिद्ध होता है।

चंद का जन्मस्थान लाहौर बतलाया जाता है। ये जगाति गोत्र के भट्ट-ब्राह्मण थे तथा इनके पूर्वज पंजाब के रहने वाले थे। चंद पृथ्वीराज के राजकवि ही नही अपितु सखा और सामंत भी थे। षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंद-शास्त्र, ज्योतिष, पुराण-नाटक आदि के ये पूर्ण पंडित थे। इनका जीवन महाराज पृथ्वीराज के जीवन में इतना घुला-मिला है कि उसको अलग करना कठिन है। सभा, युद्ध आखेट तथा यात्रादि मे ये सदैव महाराज के साथ रहते थे। जब शहाबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज को क़ैद करके गज़नी ले गया, तब चंद भी वहाँ पहुँचे। जाते समय रासो को अपने प्रिय पुत्र जल्हण को पूरा करने के लिए देते गए। अब तक परम्परा से यही विश्वास चला आ रहा है कि जिस प्रकार "कादम्बरी" को बाणभट्ट के पुत्र ने पूरा किया था, उसी प्रकार जल्हन ने भी हिन्दी के इस महाकाव्य को पूर्ण किया। इस अनुमान का आधार रासो की निम्नलिखित पंक्तियाँ है :—

("पुस्तक जलहन हत्थ दै चलि गज्जन नृपकाज।"

\+ \+ \+

"रघुनाथ चरित हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज सुजस कवि चंद कृत, चंद-नन्द उद्धरिह तिमि॥")

किन्तु इधर श्री अगरचंद नाहटा को रासो की जो प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं उनमे पहला पद्य तो है ही नहीं और दूसरे पद्य मे "चंदनन्द" के स्थान पर "चंद्रसिंह उद्धरिय तिमि"

स्पष्ट मिलता है। अतः नाहटा जी ने जल्हण की अपेक्षा "चंद्र-सिंह" को ही रासो का वास्तविक उद्धारकर्ता माना है।❀

इसप्रकार चंद की जीवनी के संबंध में जितनी सामग्री इस समय उपलब्ध है, सभी संदिग्ध हैं और इस सम्बन्ध में विशेष अनुसन्धान की आवश्यकता है। जनश्रुति तो गजनी की भरी सभा में चंद के संकेत पर अंधे पृथ्वीराज द्वारा बाण चलाकर गोरी का वध करने और फिर चंद तथा पृथ्वीराज दोनों के आत्महत्या करने का निर्देश करती है।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री की खोज के आधार पर आचार्य-प्रवर पं० रामचंद्र जी शुक्ल ने चंद के विषय में निम्नलिखित सामग्री अपने 'हिंदी-साहित्य के इतिहास' में उपस्थित की है।❀ आप लिखते हैं—

महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री ने सन् १९०९ से १९१३ तक राजपूताने में प्राचीन-ऐतिहासिक-काव्यों की खोज में तीन यात्राएँ की थीं। उनका विवरण बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने छापा है। उस विवरण में पृथ्वीराजरासो के विषय में बहुत कुछ लिखा है और कहा गया है कि कोई-कोई तो चंद के पूर्व-पुरुषों को मगध से आया हुआ बताते हैं, पर 'पृथ्वीराजरासो' में लिखा है कि चंद का जन्म लाहौर में हुआ था। कहते हैं कि चंद, पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के समय में राजपूताने में आया और पहले सोमेश्वर का दरबारी और पीछे से पृथ्वीराज का मंत्री, सखा और राज-कवि हुआ। पृथ्वीराज ने नागौर बसाया था और वहीं बहुत

❀ 'राजस्थानी,' पृथ्वीराजरासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियां पृ० १४

❀ हिन्दीसाहित्य का इतिहास, [नवीन संस्करण] पृ० ५४-५५

सी भूमि चंद को दी थी। शास्त्री जी का कहना है कि नागौर मे अब तक चंद के वंशज रहते है। इसी वंश के प्रतिनिधि नानूराम भाट से शास्त्री जी की भेंट हुई। उनसे उन्हे चंद का वंशवृक्ष प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है :—
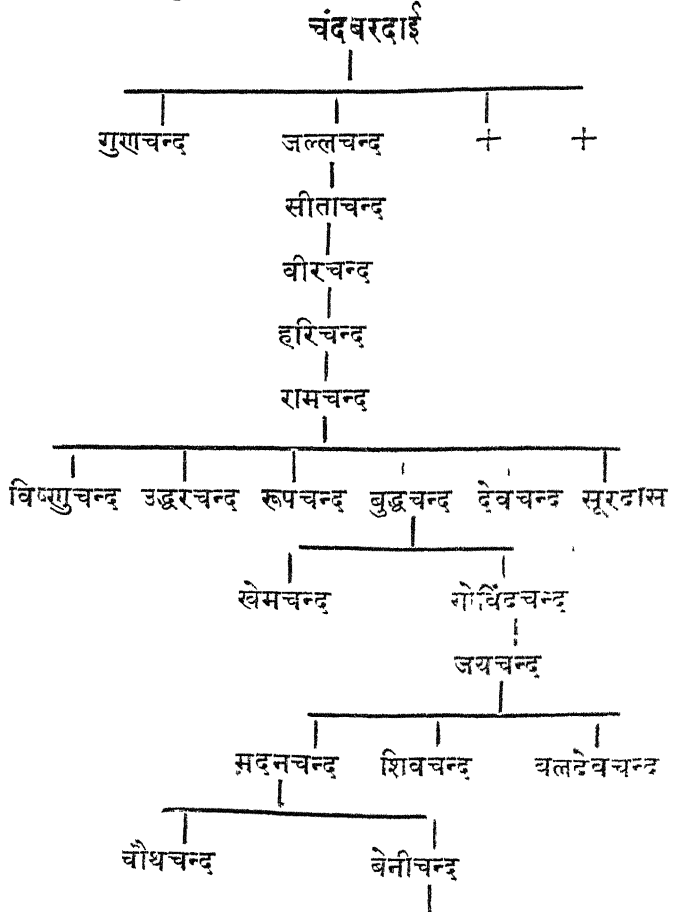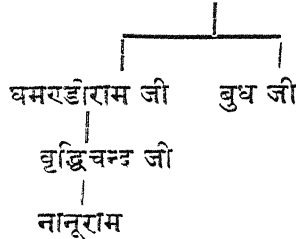
नानूराम का कहना है कि चंद के चार लड़के थे, जिनमे से एक मुसलमान हो गया, दूसरे का कुछ पता नहीं, तीसरे के वंशज अंभोर मे जा बसे और चौथे जल्ल का वंश नागौर मे चला गया। पृथ्वीराजरासो मे चन्द के लड़कों का उल्लेख इस प्रकार है —

> दहति पुत्र कविचन्द के, सुन्दर रूप सुजान।
> इक जल्ह गुन बावरो गुन समुन्द ससभान॥

'पृथ्वीराजरासो' में कविचन्द के दसों पुत्रों के नाम दिये है। सूरदास की 'साहित्यलहरी' की टीका मे एक पद ऐसा आया है, जिसमे सूर की वंशावली दी है। वह पद यह है:—

> प्रथम ही प्रथु यज्ञ तें भे प्रगट अद्भुत रूप।
> ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप॥
> पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
> कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
> पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
> तासु बंस प्रसंस में भौ चन्द चारु नवीन॥
> भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
> तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस॥
> दूसरे गुनचन्द ता सुत सीलचन्द सरूप।
> वीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप॥

अनुसार समय संख्या १६ और ग्रंथाग्रंथ* ३५०० है। इन तीनो प्रतियो के संबंध मे एक बात और उल्लेखनीय यह है कि उनमे पहले, सातवें और अंत के समय का नाम किसी भी प्रति मे नही मिलता। इन्हीं मे से दो प्रतियो मे वह छंद मिलता है, जिसकी अंतिम दो पंक्तियॉ ,निम्नलिखित है :—

"रघुनाथ चरित हनुमन्तकृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पथ्वीराजसुजसु कविचद कृत चंद्रसिह उद्धरिय इमि ॥

इनमे से एक प्रति सत्रहवी शताब्दि की है। नाहटा वाली प्रति सं० १७२८ की है। शेष दो मे संवत् का उल्लेख नही है, किंतु वे भी अनुमान से सत्रहवीं शताब्दी की ही प्रतीत होती है। अनूप-संस्कृत-पुस्तकालय की तीनों प्रतियॉ परस्पर मिलती जुलती हैं और एक दूसरे की प्रतिलिपि जान पड़ती हैं। किंतु नाहटाजी वाली प्रति में कहीं-कहीं भिन्नता है—पाठ में भी और रूप में भी। इस रूपांतर मे अध्यायो का नाम 'खण्ड' दिया गया है।

इन रूपांतरो मे मुख्यतया परिमाण का ही अंतर है। वृहत् रूपांतर के अधिकांश खण्ड, मध्यम रूपांतर में नही है, इसी प्रकार मध्यम के बहुतसे खण्ड लघु मे नहीं है। इतिहासविरुद्ध बाते तीनों मे न्यूनाधिक मात्रा मे वर्तमान हैं। हाँ, छोटे रूपांतरों मे उनकी संख्या न्यून अवश्य है।

(४) लघुतम रूपांतर

अभी तक इन तीन रूपांतरो का ही वृत्तांत ज्ञात था, किंतु

---

* अनुष्टुपश्लोकों की संख्या के आधार पर श्लोकसंख्या या ग्रंथाग्रंथ का परिमाण निकाला जाता है।

राजस्थानी-साहित्य के परिश्रमी अन्वेषक श्री अगरचंद नाहटा ने एक और रूपांतर भी खोज निकाला है, जो इन सब से छोटा है। परिमाण में वह लघु-रूपांतर के आधे से भी कम है। लिपिकार ने उसकी श्लोक-संख्या १३०० प्रमाण लिखी है। इसमें अध्यायों का विभाजन नहीं है। भाषा अपेक्षाकृत प्राचीन जान पड़ती है। इसका लिपिकाल सं० १६६७ है।

इधर नई खोज के अनुसार रासो की सब से प्राचीन-प्रति चंद के वंशज नानूराम के पास बतलाई जाती है। उसका परिचय प्रो० रमाकांत त्रिपाठी ने चाँद के मारवाड़ी अंक के पृ० १४६ में "महाकवि चंद के वंशधर" शीर्षक लेख में निम्नलिखित शब्दों में दिया है। "नानूराम के पास रासो की दो प्रतियाँ भी हैं। मैंने दोनों को देखा है। एक प्रतिलिपि तो कागज-स्याही तथा अक्षरों को देखते हुए काफी पुरानी ज्ञात होती है। उसे वे चंद के पुत्र जल्ल कृत बतलाते हैं।........ प्रतिलिपि, जैसा कि नीचे दिये हुए लेख से ज्ञात होता है, सं० १४५५ में की गई थी:—

'संवत् १४५५ वरसे शरद ऋतौ आश्विनमासे शुक्लपक्षे उदयात घटी १६ चतुरथी दिवसे लिखितं। श्री परतरगच्छ धिराजे, पंडित श्री रूप जी लिखितं। चेलः श्री सोभाजी श। कपासन मध्ये लिपिकृतं।"

किंतु, जब तक यह प्रति प्रकाश में न आए और विद्वान् उसकी प्राचीनता के संबंध में एकमत न हो जायँ, तबतक उसे संवत् १४५५ में लिपिबद्ध होना कैसे माना जा सकता है? श्रीयुत हरप्रसाद शास्त्री को नानूराम जी ने जो 'ल्होवा-समय' लिखवाया था, यदि वह सं० १४५५ वाली प्रति का हो तो निस्संदेह वह जाली है, कारण कि उसकी भाषा अपेक्षाकृत

बहुत अर्वाचीन ज्ञात होती है। उदाहरण के लिए उसकी एक पंक्ति श्रीयुत अगरचंद नाहटा ने उद्धृत की है, जो इस प्रकार है:—

'एक पहुर में सॉवतसारे।
लोक हजार पॉच तहं मारे॥"*

इसीसे उसकी प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा के सं० १६४२ वाली प्रति के संबंध मे भी संदेह किया जाता है। इस प्रकार, अब तक प्राप्त प्रतियों को, जब तक कोई विद्वान् प्रामाणिक न सिद्ध करदे, श्रीयुत अगरचंद नाहटा वाली प्रति ही प्राचीनतम मानी जायगी।

मूल रासो का परिमाण

उक्त चारो रूपांतरो के तुलनात्मक अध्ययन से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रासो सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री कितनी संदिग्ध है तथा अभी तक उसका सच्चा परिमाण अंधकार के गर्त में पड़ा हुआ है।

प्रस्तुत प्रतियों मे भी यह कहना कि अमुक प्रति लघुतम होने से प्रामाणिक है, युक्तियुक्त नही प्रतीत होता। संभव है, संकलनकर्ता ने जानबूझकर कुछ अंश छोड़ दिया हो और मुख्य-मुख्य अंशों को एकत्र करके किसी के पठनार्थ एक संग्रह तैयार कर लिया हो। ऐसे संस्करण मे स्वाभाविक रूप से ऐतिहासिक अशुद्धियो की संख्या भी कम रहेगी। जितनी ही अधिक घटनाओं का समावेश किया जायगा उतनी ही अशुद्धियो का बढ़ना स्वाभाविक ही है। अत: अशुद्धियो का अभाव देखक

---

* नाहटा : "राजस्थानीपत्रिका;" "पृथ्वीराजरासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ" पृ० १३।

भी उसे प्रामाणिक सिद्ध करने के लोभ मे पड़ना भ्रम है। वास्तव मे जिस आधार पर इन प्रतियो का प्रासाद खड़ा किया गया है, उसकी नीव तक पहुँचने के पूर्व ही रासो का मूल रूप विकृत हो चुका था। ठोस प्रमाण के अभाव मे आलोचक गण किस प्रकार पंगु की भाँति इतस्ततः लुढ़क-पुढ़क रहे है यह नीचे उद्धृत मतो से ही ज्ञात हो जायगा।

श्रीयुत गौरीशंकर हीराचंद ओझा पृथ्वीराजरासो के छोटा होने की कल्पना ही निर्मूल सिद्ध करते है। उनके इस कथन का आधार वि० सं० १८०० के आस-पास रचे हुए "वृत्तविलास" नामक ग्रंथ का वह अंश है जिसे चंदबरदाई के वंशधर कवि जदुनाथ ने करोली के यादवराजा गोपालसिंह के राज्य-समय में बनाया था। उसमे उसने अपने वंश का परिचय देते हुए लिखा है कि "चंदने १०५००० श्लोक (अनुष्टुप्) के परिमाण का पृथ्वीराज के चरित्र का रासो बनाया।"*

नाहटा जी ओझाजी के इस तर्क को भ्रामक मानते हैं; क्योंकि उन्हे बहुत सी प्रतियाँ ऐसी मिली हैं जिनमे ग्रंथाग्रंथ ३५०० श्लोक दिया हुआ है, और कुछ अन्य प्रतियों में केवल दश हजार श्लोक का ही प्रमाण मिलता है। आपके अनुसार ओझा जी का कथन, यहीं तक ग्रहण किया जा सकता है कि सं० १८०० के लगभग रासो का परिमाण एक लाख पांचहजार श्लोक तक का हो चुका था।"†

---

* एक लाख रासौ कियौ सहसपंच परिमान।
पृथ्वीराज नृपकौ सुजस जाहर सकल जिहान॥
(कोषोत्सव-स्मारक-संग्रह पृ० ६४)

† 'राजस्थानी,' : पृथ्वीराजरासो और उसकी हस्तलिखित प्रति पृ० १२।

पंडित मथुरा प्रसाद जी दीक्षित लाहौर कालेज वाली प्रति को ही "असली रासो" मानते हैं; क्योंकि रासो मे उसका प्रमाण "सत्तसहस" बतलाया गया है और उस प्रति की श्लोक संख्या आर्याछंद के हिसाब से सात हजार के लगभग पड़ जाती है। पर ग्रंथाग्रंथ सदैव अनुष्टुभ् छंदो के आधार पर लिया जाता है जिसमें ३२ अक्षर होते हैं। "सत्तह" शब्द का अर्थ श्री दीक्षित जी ने आर्या-छंद लगाया है। इसका आधार अनुमान है, कोष नहीं। अतएव यह प्रमाणिक नहीं माना जा सकता।

नानूराम जी भी रासो का परिमाण तीन-चार हजार श्लोक बतलाते हैं; किन्तु उनके पास जो "प्राचीनतम-प्रति" है, वह अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। अतएव उसके सम्बन्ध में स्पष्टरूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

आज से कुछ वर्ष पूर्व, श्री मुनि जिनविजय जी को जैन प्रबन्धों में चंद कवि के चार पद्य मिले, जो अपभ्रंश में थे। खोज करने से उनमे से तीन परिवर्त्तित रूप मे 'रासो' में मिल गये। इससे मुनि जी ने यह अनुमान किया कि 'रासो' का मूल रूप अपभ्रंश मे ही था। डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने इस मत का समर्थन किया। इधर बीकानेर के राजकीय-पुस्तकालय मेरासो का एक और छोटा रूपांतर प्राप्त हुआ है। यह पंजाब वाले रूपांतर के आधे से भी कम है। डा० दशरथ शर्मा ने उसकी ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में विचार किया है। भाषा के सम्बन्ध मे श्री शर्मा जी का भी मत है कि वह अपभ्रंश ही थी।

इधर उदयपुर के श्री मोहन सिंह राव कई वर्षों से 'पृथ्वी राजरासो' के गम्भीर अध्ययन में प्रवृत्त हैं। आप रासो के प्रक्षिप्त अंश को पृथक करने में अथक परिश्रम कर रहे हैं। अभी आप का कार्य प्रकाश में नही आया, जिससे रासो के परिमाण पर पूर्ण प्रकाश पड़ सके।

यदि मूल रासो अपभ्रंश में था, तो उसका आकार निश्चित रूप से छोटा रहा होगा। राजस्थान के चारणों और भाटों की यह विशेषता रही है कि वे अपनी तथा अन्य कवियों की कवितायें कंठस्थ कर लेते थे। ऐसी कविताओं में भाषा का परिवर्त्तन होना सर्वथा स्वाभाविक है। बहुत संभव है, रासो की भी यही दशा हुई हो, और आरम्भ में चंद द्वारा रचित कुछ छंद रहे हों जो कालान्तर में प्रक्षिप्त अंशों की अधिकता के कारण वृहत रूप धारण कर लिए हों। जो भी हो, आज 'रासो' के प्रक्षिप्त अंश को पृथक करके उसके मूलरूप का पता चलाना अतीव दुष्कर कार्य है।

रासो का उद्धार

"पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृपकाज" तथा "चंद-नंद उद्धरिय तिमि" को देखकर अब तक यही कहा जाता था कि रासो को "चंद-नंद" 'जल्हन', 'जल्हण' अथवा 'झल्ल' ने पूरा किया था; किन्तु अगरचंद नाहटा का कथन है कि उनके द्वारा प्राप्त प्रतियों में पहला पद्य तो है ही नहीं, दूसरे में भी "चंद-नंद" के स्थान पर "चन्द्रसिह" पाठ मिलता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि रासो के उद्धारकर्त्ताओं में चंद्रसिह भी एक था।

यह चन्द्रसिह कौन था, इसका पता विद्वानों को बहुत दिन तक नहीं था किंतु इधर संयोगवश "मुहणोत नैणसी री ख्यात" में उसके संबन्ध में कुछ पंक्तियाँ मिली हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि चाँद सिह अथवा चंद्र सिह महाराजा मानसिह के छोटे भाई और अकबर के सेनापति सूरसिह का पुत्र था। इस प्रकार चंद्रसिह मानसिह का भतीजा था।

छत्रपतिगयदं हरिहंस गति, विह बनाय संचै सचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावत्तिय, मनहुँ काम कामिनि रच्चिय॥

इस उदाहरण में संस्कृत के कला, कमल, मृग, भ्रमर, खंजन आदि शब्द अपने तत्सम रूप मे ही वर्तमान हैं। बहुत सम्भव है, प्राचीन भाषा के रूप बदल कर नए बनाए गए हों अथवा पीछे की रचना होने के कारण ही तत्सम शब्दों का अत्यधिक प्रयोग किया गया हो। अब रासो की भाषा का एक चौथा उदाहरण दिया जाता है:—

एक पहुर में सॉवत प्यारे। लोक हजार पाँच तहँ मारे।
ये सॉवत पृथ्वीराज पियारे। के ते ईंदल सँकर बुहारे।

महोबा समयो

ऊपर के उदाहरण में क्रिया तथा संज्ञा के प्रायः सभी रूप आधुनिक हैं जो व्रजभाषा में प्रचलित हैं। अब भाषा सम्बन्धी पॉचवॉ उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

षां भट्टी महनङ्ग षान षुरसानी बब्बर।
हबस षान हुजाब अब्ब आलम्म जास बर।

अथवा

कहियत मालनि महरबान। चहुंवान बंस मैं दिल्ली थाँन।
मादल महल में बसे जाय। षिजमत्तदार समुसियत धाय।

ऊपर 'खान' बब्बर' 'हबस' 'आलम' 'महरबान षिजमत्त-दार [खिदमतगार] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह रासो की फारसी-संश्लिष्ट-शैली है। इसप्रकार रासो की भाषा में कई स्तर विद्यमान हैं। भिन्न-भिन्न रूपान्तरों तथा पाठ-भेदों के साथ इनका अध्ययन भी अत्यावश्यक है।

अथ रेवातट समयौ लिख्यते

पृथ्वीराज का रेवातट आना सुनकर सुलतान की सेना सजकर चलना।

दूहा

रेवा तट आयौ सुन्यौं। बर गौरी चहुआन।
बर अवाज सब मिट्टि कै। सजे सेन सुरतान ॥ १ ॥

पृथ्वीराज का कहना कि बहुत बड़े शत्रु रूपी मृगों का समूह शिकार करने को मिला।

दूत बचन संभलि न्रपति। बर आषेटक षिल्ल१।
रेवातट पद्धर धरा। जूह मृगन बर२ मिल्लि ॥ २ ॥

राज्य-मंत्रियों ने यह सम्मति दी कि अपने आप झगड़ा मोल लेना उचित नही, किसी नीति द्वारा काम लेना ठीक है।

कवित्त

मिले सब्ब सामन्त। मत३ मंड्यो सुनरेसुर।
दह गुना दल४ साहि। सज्जि चतुरङ्ग सजी उर५ ॥
भवन६ मन्त चुकौ न। सोइ बर मन्त विचारौ।
बल घट्यो अप्पनौ। सोच पच्छिल्लौ निहारौ ॥
तन सट्टौ७ लीजै८ सुगति। जुगति बंध९ गोरी दलह।
संग्राम भीर प्रथिराज बल। अप्प१० मत्ति किज्जै११ कलह ॥३॥

रासो की अन्य प्रतियों में निम्नलिखित दोहा भी मिलता है: —

दूत गये कनवज्ज दिसि, ते आये तिन थान।
कथा मंजि चहुबान की, कहि कम धज्ज प्रमान।

१ खिल्लि २ मृगऽबर ३ मंत ४ बल ५ सउपर ६ भवन ७ सट्टे ८ लिज्जै ९ बंधि १० अप्पु ११ कीजै

यह बात सुनकर सामन्तों का मुसकराकर कहना कि भारथ का वचन है कि रण में मरने से ही वीर का कल्याण है।

सुनिय बत्त पज्जून । राव परसंग मुसक्यौ ।
देवराव बग्गरी । सैन दे पाव कसक्यौ ।।
तन सट्टै सहि मुकति । बोल भारथ्थी बोलै ।
लोह अंच उड्डंत । पत्त तरवर जिमि डोलै ॥
सुरतान चंरि मुष्षां लग्यौ । दिल्ली नृप दल बानिवौं ।।
भर भोर धीर सामन्त पुन । अबै पटंतर जानिबौ ।।४।।

पज्जूनराय का कहना कि मैंने सब शत्रुओं को पराजित किया और शहाबुद्दीन को भी पकड़ा। अब भी उससे नहीं डरता।

कहै राव पज्जून । तार कढ्यौ तत्तारिय ।।
मैं दष्षिन ढुंवै देस । भोर जदव पर पारिय ॥
मैं बंध्यौ जंगलू । राव चामंड सुसथ्थे ॥
बंभन बास बिरास । बीर बड़ गुज्जर तथ्थे ।।
भर विभंर सेन चहुआन दल । गोरी दल कित्तक गिनौ ॥
जानै कि भीम कौरव सुबर । जर समूह तरवर किनौ ।।५।।

जैतराव का कहना कि शहाबुद्दीन की सेना से मिलान होना लाहौर के पास अनुमान किया जाता है अतएव अपनी सब तैयारी कर लेनी उचित है, आगे जो आप की इच्छा हो।

कहै जैत पंवार । सुनहु प्रथिराज राज मत ।।
जुद्ध साहि गोरी । नरिद लाहौर कोट गत ।।
सबै सैन अप्पनौ । राज एकट्ठ सु किज्जै ।।
इष्ट अत्य सगपन सु । हित कागद लिषि दिज्जै ।।

सामन्त साभि इहि मन्त है। अरु जु मंत चित्तै नृपति ॥
धन रहै ध्रम्म जसु जोग है। दिपति दीप दिब लोकपति ॥६॥

रघुवंशराम का कहना कि "हम सामन्त लोग मंत्र क्या जाने? केवल मरना जानते हैं, पहले शाह को पकड़ा था, अब भी पकड़ेंगे।

बह बइ कहि रघुवंश। राम हकारि सु उठ्यौ ॥
सुनौ सब्ब सामन्त। साहि आए बल छुट्यौ ॥
गज रु सिंघ सा पुरिष। जहाँ रूँधै तहाँ जुम्झै ॥
असम समौ जानहि न। लज्ज पंकै आलुम्झै ॥
सामन्त मन्त जानैं नहीं। मत्त गहै इक मरन कौ ॥
सुरतान सेन पहिले बंध्यौ। फिर बंधौं तौ करन कौ। ७॥

कविचन्द का कहना कि हे गुज्जर गँवारी बातें न कहो, इन्हीं बातों से राज्य का नाश होता है। हम सब के मरने पर राजा क्या करेगा?

रे गुज्जर गाँवार। राज लै मन्त न होई ॥
अप्प मर छिज्जै नृपति। कौन कारज अह जोई ॥
सब सेवक चहुआन। देस भग्गै धर पिल्लै ॥
पच्छि काम कइ करै। स्वामि संग्राम इकल्लै ॥
पंडित भट्ट कवि गाइना। नृप सौदागिर वार हुअ ॥
गजराज सीस सोभा वरन *कन उड़ाइ वह सोभ लअ ॥८॥

पृथ्वीराज का कहना कि जो बात आगे आई है, उसके लिए युद्ध का सामान करो।

दूहा

परो षोर तन †दंग मम। अग्ग जुद्ध सुरतान ॥
अब इह मंत विचारये। लरन मरन परवान ॥९॥

---

* भँवर † परीखो रतन

गजन संग प्रथिराज के। है दिब्बिय परवान ॥
बज्जी पष्पर षंड रै। चाहुआन सुरतान ॥ ०॥
ग्यारह अष्षर पञ्च पट। लहु गुरु होइ समान ॥
कंठ सोभ बर छन्द कौ। नाम कह्यौ परवान ॥११॥

पृथ्वीराज के घोड़ाकी शोभा का वर्णन

छन्द कंठशोभा

फिरे हय वष्षर पष्षर से। मने फिर इंदुज पंष कसे ॥
सोई उपमा कविचन्द कथे। सजे मनों पोंम पवंग रथे ॥
उर पुट्टिय सुट्टिय दिट्ठयता। वपरो पय लंगत ता षरिता ॥
लग्गे उड़ि छिक्तिय चौ नलयं ; सुने षुर केहु अवत्तनयं ॥
अग बधि सुहेम हमेल घनं। तब चामर .जोति पवंन रनं ॥
अह अट्टस तारक बीत पगे। मनों सुत के उर भान उगे ॥
पय मंडिहि अंसु धरे उलटा। मनौं विटप देषि चले कुलटा ॥
मुष कड्डिन घूंघट अस्सु बली। मनो घुंघट दै कुलबद्धु चली ॥
तिनं उपमा बरनी न घनं। पुजे मन बाग पवंन मनं ॥१२॥

आधी रात को दूत पृथ्वीराज के पास पहुँचा और समाचार दिया कि अट्ठारह हजार हाथी और अट्ठारह लाख सेना के साथ सुलतान लाहौर से चौदह कोस पर आ पहुँचा।

कुडलिया

नव बज्जी घरियार घर। राज महल उठि जाइ ॥
निसा अद्ध बर उत्तरे। दूत संपते आइ ॥
दूत संपते आइ। धाइ चहुआन सु जग्गिय।
सिव विहथ्थें मुक्कि। साहि साही उर तग्गिय।
अट्ठ सहस गजराज। लष्ष अट्ठारह ताजिय ॥
उभे सत्त बर कोस। साहि गौरी नव बाजिय ॥१३॥

पृथ्वीराज ने दूत से पत्र लेकर पढ़ा—हिन्दुओं के दल में शोर मच गया।

दूहा

बंचि कागद चहुँआन नें। फिरन चन्द सह थान।
मनो बीर तनु अंकुरे। सुगति भोग बनि प्रान।
मची कूह दल हिन्दु के। कसे सनाह सनाह।
बर चिराक दल सहस भइ। बजि निसान, अरिदाह।१५।।

दूत का दरबार में आकर पृथ्वीराज से कहना कि मुसलमान सेना चिनाब के पास आ गई। चन्दपुंडीर ने उसका रास्ता बाँधकर मुझे इधर भेजा है।

बा बरवू नृप मुक्कते१। दूत आइ तिहि बार।
सजी सेन गोरी सुभर२। उत्तर ए नद पार
पंचासज गोरी नृपति। बंध उतरि नहिं पार।
चन्द बीर पुंडीर नें। थटि मुक्कै दरबार।।१७।।

सुलतान को अपने सामन्तों के साथ युद्ध के लिए प्रस्तुत होना।

कवित्त

षाँ मारुफ तत्तार। षान पिल्लची वर गढढे।
चामर छत्र मुजक्क। गोल सेना रचि गढढे।
नारि गोरि जम्बूर। सुबर कीना गज सारं।
नूरीं षाँ हुज्जाब। नूर महम्मद सिर भारं।
बज्जीर षान गोरी सुभर। षान षान हजरत्ति षाँ।
बिय सज्जि सैन हरवल करिय। तहाँ उभौ३ सजरत्ति षाँ।।१८।।

शाहजादे का सरदारों के साथ सेना हरवल रचना और सेना के मुख्य सरदारों के नाम और उनका पराक्रम वर्णन।

---

१ बावसू कोयन भयो २ सुबर ३ औ

रचि हरवल सुरतान । साहिजादा सुरतानं ।
षाँ पैदा महमूद । बीर बंध्यो सुविहानं ।
षाँ मंगोल लललरी । बीस टंकी बर षंचै ।
चौ तेगी सहबाज । बान अरि प्रान सु अंचै ।
जँहगीर पान जह गोर बर । षाँ हिन्दू बर बर बिहर ।
पच्छिमी पान पट्टान सह । रचि उभ्भै हरबल गहर ।।१९।।
रचि हरवल पठठान । पान इसमान रु गष्षर ।
केली षाँ कुंजरी । साह सारी दल पष्षर ।
षाँ भट्टी मह नंग । पान षुरसानी बब्बर ।
हबस षान हुज्जाब । अब्ब आलम्म जाल बर ।
तिन अग्ग अट्ट१ गजराज बर । मद सरक पट्टे तिना ।
पंच बिन पिंड जो ऊपजे । जुद्ध होइ लज्जी बिना ।।२०।।

शहाबुद्दीन का इस पार, तीस दूतों को रखकर, चिनाब पार करना।

करित माथ बहु साहि२ । तीस तहँ रषिग फिरस्ते ।
आलम पान गुमान । पान उजबक्क निरस्ते ।
लहु मारुफ गुमस्त । षान दुस्तम बजरंगी ।
हिंदु सेन उप्परें । साहिबज्जै रन जंगी ।
सह सेन टारि सोरा रच्यो । साहि चिनाब सु उत्तरयो ।
संभल सूर सामन्त नृप । रोस बीर बीर दुर्‍यो३ ॥२१॥

यह सुनकर पृथ्वीराज का क्रोध करना और दूत का कहना कि पुंडीर उसे रोके हुए है।

दूहा

तमसि तमसि सामन्त सब । रोस भरिग प्रथिराज ।
जब लगि रुपि पुंडोर नें । रोक्यौ गौरी साज ।।२२।।

---

१ अट्ठ २ माया चौ साह ३ दुर्‍यौ

सुलतान का चिनाब उतरना और चन्दपुण्डीर का गिरना देखकर दूत ने बढ़कर पृथ्वीराज को समाचार दिया ।

कवित्त

उतरि साहि चिन्हाव । घाव पुंडीर लुथ्थि पर ।
उप्पारयौ[1] बर चंद । पंच बधन सु पथ्थ धर ।
दिष्षि दूत बर चरित । पास आयो चहुआनं ।
उप्पर गोरी नरिंद । हाम बढ्ढी सुरतान ।
बर मीर धीर मारूफ दुरि । ख च अनी एकठ जुरी ।
सुर पंच कोस लाहौर तें । मेच्छ मिलानह सो करी ॥२३॥

पृथ्वीराज ने क्रोध के साथ प्रतिज्ञा की कि तब मैं सोमेश्वर का बेटा जो फिर सुलतान को कैद करूँ। पृथ्वीराज ने चन्द्रव्यूह की रचना करके चढ़ाई की।

दूहा

वीर रोस बर बैर बर । झुकि लग्गौ असमान ।
तौ नन्दन सोमेस कौ । फिरि बंधौ सुरतान ।२४॥
चन्द्रव्यूह नृप बंधि दल । धनि प्रथिराज नरिंद ।
साहि[2] बंध सुरतान सौ । सेना विन विधि कंद ॥२५॥

पंचमी मंगलवार को पृथ्वीराज ने चढ़ाई की। कवि ने उस दिन के ग्रह स्थिति योग आदि का वर्णन किया है।

कवित्त

बर मंगल पञ्चमी । दिन सु दीनौ प्रथिराजं ।
राहु केत जय दीन । दुष्ट टारे सुभ काजं ।
अष्ट चक्र जोगनी । भोग भरनी सुधि रारी ।
गुर पञ्चम रवि पञ्च । अष्ट मङ्गल नृप भारी ।
कै इन्द्र बुद्धि भारथ्थ भल । कर त्रिसूल चक्का बलिय ।
सुभ घरिय राज बर लीन बर । चल्यौ उदै क्रूरह बलिय ॥२६॥

---

१ उप्पारयौ २ साह

दूहा

सो रचि उद्द अवद्द अध । उग्गि महब विधि कंद ।
बरनिषेध नृप बद्धौ । कौन भाय कवि चन्द ।।२७।।

जिस प्रकार चक्रवाक, साधु, रोगी, निर्धन, विरह-वियोगी लोग रात्रि के अवसान और सूर्योदय की इच्छा करते है उसी प्रकार पृथ्वीराज भी सूर्योदय को चाहता था ।

कवित्त

प्रात सूर बंछई । चक्क चक्किय रबि बंछै ।
प्रात सूर बछई । सुरह बुद्धि बल सो इंछै ।
प्रात सूर बछई । प्रात बर बछि वियोगी ।
प्रात सूर बछई । ज्यों मु बंछै बर रोगी ।
बंछयौ प्रात ज्यों त्यों उनन । बंछै रंक करन्न बर ।
बंछयौ प्रात प्रथिराज ने । सत्ती सत्त बंछैति उर ।।२८।।

पृथ्वीराज की सेना तथा चढ़ाई का वर्णन ।

दूहा

क्रमगाह इक सुगत को । क्यों करिजै बापान ।
मन अनप सामन्त नै । कच करबति पापान ।।२६।।
बाई विप धुंधरी परिय* । बद्दर छाए भान ।
कुन घर मगल बज्जही । कै चढ़ि मगल आन ।।३०।।

दोनो ओर की सेनाओ के चमकते हुए अस्त्र-शस्त्र और निशानो का वर्णन ।

दिष्ट देषि सुरतान दल । लोहा चक्कत बान ।
पहकि फेरि उड्गन चले । निसि आगम फिर जान ।।३१।।

---

* बाय विषम धंधर परी ।

धजा बाइ बकुर उर्डात । छबि कबिंद इह आइ ।
उडगन चद नरिंद बिय । लगी मनों१ अइ पाइ ॥३२॥
से सनि संकड्ढि-बजतहि । बाजे कुहक सुरग ।
मेटै सद्द निसान के । सुने न श्रवनति अग ॥३३॥

जब दोनो सेनाएँ सामने हुई तब मेवारपति, रावल समरसिंह ने आगे बढ़कर युद्ध आरम्भ किया।

अनि दोउं घनघोर ज्यों । घाय मिले करघाट ।
चित्रंगी रावर बिना । करै कोन दहवाट ॥३४॥

कवित्त

पवन रूप परचंड । घालि असु असि बर झारै ।
मार मार सुर बज्यि । पत्त तरू अरि सिर पारै ।
फहकि सद्द फेफरा । हड्डु कंकर उप्पारै ।
कटि भसुड परिमुंड । भिंड कटक उप्पारै ।
बज्जयौ विषम मेवार पति । रज उडाइ सुरतान दल ।
समरथ्थ समर सम्मर मिलिय । अनी मुष्ष पिष्षौ सबल ॥३५॥

रावल, जैत पँवार, चामंडराय और हुसेनषां का क्रमानुसार हरावल मे आक्रमण करना। पीठि सेना का पीछे से बढ़ना।

रावर उप्पर धाई । पर्यौ पांवार जैत पिष्षि ।
तिहि उप्पर चांमड । कर्यौ हुस्सेन षान सजि ।
धकाई धक्काइ । दोह हरवल बर मझ्झै ।
पच्छ सेन आहुट्टि । अनी बंधी आलुझ्झै ।
गजराज बिय२ सुरतान दल । दह चतुरँग३ वर बीर बर ।
धनि धार धार धारह धनी । वर भट्टी उप्पारि कर ॥३६॥

---

१ लग्गि मांन २ बीय ३ दहड चरंग

हिन्दू सेना की चन्द्र-व्यूह-रचना

छत्र सुजीक सु अप्पि । जैत दीनौ सिर छत्र ।
चन्द्रव्यूह अकुरिय । राज दुश्र इहां इकत्र।
एक अग्र हूसेन । बीय अग्रह पुंडीर ।
मद्धि भाग रघवस । राम उभ्भौ बर बीरं ।
सांषलो सूर सारंग दे । उररि पान गोरीय सुष ।
हथनारि गोर जंबूर घन । दुहूँ बांह उभ्भंति रुप ।।३७।।

दोपहर के समय चंदपुंडीर का तिरछा रुख देखकर शत्रु-सेना को दबाना ।

छुट्टि अद्ध बर घटिय । चढ्यौ मध्यान भान सिर ।
सूर कंध बर कढ्ढि । मिलै काइर कुरंग बर ।
घरी अद्ध बर अद्ध । लोह सो लोह जु रुक्कै ।
मन अग्गै अरि मिले । चित्त मे कंक धरक्कै ।
पुंडीर भीर भंजन भिरन । लरन तिरच्छौ लग्गयो ।
नव बधू जेन संका सुबर । उदौ जानि जिम भग्गयौ ।।३८।।

सुलतान का घबराना । तातारखाँ का धैर्य दिलाना ।

दूहा

तेज छुट्टि गोरी सुबर । दिय धीरज तत्तार ।
मो उभ्भै सुरतान को । भीर परी इन बार ॥३६।।

सोलंकी माधवराय से खिलजीखाँ से तलवार का युद्ध होने लगा । माधवराय की तलवार टूट गई तब वह कटार से लड़ने लगा । शत्रुओं ने अधर्म युद्ध से उसे मार गिराया ।

कवित्त

सौलंकी माधव । नरिंद पिलची सुष लग्गा ।
सुबर वीर रस बीर । बीर बीरा रस पग्गा ।

दुश्रन बुद्ध जुध तेग । दुहू हत्थन उभ्भारिय ।
तेग तुट्टि चालुक । बथ्थ परि कढ्ढि कटारिय ।
अग अग्ग रुकि ठिल्लै बलन । अधम जुद्ध लग्गो लरन ।
सारंग बंध घन घाव परि । गोरी वै दिन्नौ मरन ॥४०॥

वीर गति से मरने पर मोक्षपद पाने की प्रशंसा ।

षग्ग हटक्कि जुटिक्क । जमन सेना समंद गजि ।
हय गज बर हिल्लोर । गरुत्र गोइंद दिप्पि सजि ।
अनम अठेल अभंग । नीर अलि मीर समाहिय ।
अति दल बल आहुट्टि । पच्छ लज्जी पर वाहिय ।
रज तज्ज रज मुक्कि न रह्यौ । रज न लगी रजरज भयो ।
उच्छंगन अच्छर सो लयौ । देव विमानन चढ़ि गयो ॥४१॥

जैसिंह की वीरता और उसकी वीर-मृत्यु की प्रशंसा ।

परि पतंग जैसिंघ । पतंग अप्पुन तन दझ्झै २।
नव पतंग गति लीन । करै अरि अरिधज धज्जै ।
तेल ठांम बात्तीय । अगन्नि एकल बिरुझ्झाइय ।
पंच अप्प अरि पच । पंच अरि पंथ लगाइय ।
आरन्नि-कू आरी बर बर्यौ । दै दाहन दुज्जन दवन ।
जीतेव असुर महि मंडलह । और ताहि पुज्जै कवन ॥४२॥

वीर पुंडीर के भाई की वीरता और उसके कबन्ध का खड़ा होना ।

रुप्पौ बीर पुंडरी । फिरा पारस सुरतानी ।
शत्रु बीर चमकंत । तेज आरुहि सिर ठानी ।
टोप ओप तुटि किरच । सार सारह जरि भारे ।
मिली नछित्र रोहनी । सीस ससि उडगन चारे ।

उठि परत भिरत भंजत अरिन। जै जै जै सुर लोक हुअ।
उठ्यौ कमंध पल पंच चव। कोन भाइ कथ्यौ जु धुअ ॥४३॥

पज्जूनराय के भाई पल्हानराय का खुरसानखाँ के हाथ से मारा जाना।

दुज्जन सल कूरंभ। वंध पल्हन हकारिय।
सम्हौ परौ षुरसान। तेग लंबी उभ्भारिय।
टोप तुट्टि वरकरी। सीस, परि तुट्टि कमंधं।
मार मार उच्चार। तार तं नंचि कमध।

तहँ देषि रुद्र रुद्रह हस्यौ। हय हय हय नदी कह्यौ।
कवि चंद शैल पुत्री चकित। पिष्षि बीर भारथ नयौ ॥४४॥

जैसिंह के भाई का मारा जाना

सोलंकी सारंग। षान षिलची मुष लग्गा।
वह पगानौ भ्रत्त। इते चहुआन विलग्गा।
है कधन दिय पाय। कन्ह उत्तरिं बिय बाजिय।
गज गुंजार हुंकार। धरा गिर कदर गाजिय।
जय जयति देव जै जै करहि। पहुपञ्जलि पूजत रिनह।
इन पर्‌यौ षेत साधै सकल। इक रह्यौ बंधै धुनह ॥४५॥

गोइन्दराय का तत्तारखाँ के हाथी और फीलवान को मार गिराना।

करी मुष्य आहुट्ट। बीर गोइंद सु अष्षै।
कबिल पील जनु कन्ह। दन्त दारुन गहि नष्षै।
सुड दंड भये षड। पीलवानं गज मुक्यौ।
गिद्धि सिद्धि बेताल। आइ अंषिन पल रुक्यौ।

बर बीर परऱ्या भारथ्थ बर१ । लोह लहरी लगात२ झुल्यौ ।
तत्तार षान सम्हौ सु कत३ । सिघ हक्कि अबर डुल्यौ ॥४६॥

नरसिंहराय के सिर में घाव लगने से उसके गिर जाने पर चामुंडराय का उसकी रक्षा करना।

षोलि षग्ग नरसिंघ । विक्खिझ्झ पज सीसह झारिय ।
तुटि धर धरनि परंत । परत संभरि कट्टारिय ।
चरन अंत उरझत । वीर कूरभ करारौ ।
तेग घाइ चुकंत । झरी झर लोह संभारौ ।

चलि गयौ क्रमन क्रम्मन४ चलै । डुल्यौ न डुल्ल तज हथ्थ बर ।
तिन परत बीर दाहर तनौ । चामडा बज्जो लहर ॥४७॥

जैतराय के भाई लक्ष्मणराय के मरते समय अप्सराओं का उसके पाने की इच्छा करना परन्तु उसका सूर्यलोक भेद कर मोक्ष पाना।

कवित्त

जैत बन्ध ढहि परयौ । लष्प लष्षन कौ जायौ ।
तह झगरी मह माय । देवि हुंकारौ पायौ ।
हुंकारें हुंकार । जूह गिद्धनि उड्डायौ ।
गिद्धिन तें अपछरा । लियौ चाहत नहि पायौ ।
अवतरन सोइ उतपति गयौ । देवथान विश्रम बियौ ।
जम लोक न शिवपुर ब्रह्मपुर । भान थान भानै बियौ ॥४८॥

तन झंझरि पावार । परयौ धर मुच्छि घटिय बिय ।
बर अछर बिंटयौ । सुरङ्ग मुक्के सुरङ्ग हिय ।

१ भिरि २ लहर, लग्गत ३ झित ४ नक्रमन, क्रमनन।

तिहित बाल ततकाल। सलष बंधिव ढिग आइय ।
लिपिय अङ्क बिय हथ्थ। सोइ बर बंच दिषाइय ।
जनम मरन.सुह दुह सुगति। नन मिट्टे मिटइ न तुअ।
ए वार सुबर बंटहु नही। बंधि लेहु सुकी बधुअ ।

महादेव का, लक्ष्मण का सिर, अपनी माला के लिए लेना।

दूहा

राम बन्ध कौ सीस बर। ईस गह्यौ कर चाइ ।
अथ्थि दरिद्री ज्यौ भयौ। देषि देषि ललचाइ ॥५०॥

एक पहर दिन चढ़े जङ्घा योगी ने त्रिशूल लेकर घोर युद्ध मचाया।

जाम एक दिन चढ़त बर। जंघारौ झुकि बीर ।
तीर जेम तत्तौ परयौ। धर अषगारे मीर ॥५१॥

कवित्त

जंघारौ जोगी। जुगिन्द कह्यौ कट्टारौ ॥
परस पानि तुङ्गी। त्रिसूल मषगर अधिकारौ ॥
जटत बाँन सिगी। बिभूत हर वर हर सारौ।
सबर सद्द बद्दयौ। बिषम मद्द गंधन झारौ।

आसन सदिट्ठ निज पत्ति मैं। लिय सिर चन्द अत्रित अमर।
मंडलीक राम रावन भिरत। नभौ बीर इत्तौ समर ॥५२॥

शस्त्र सजकर सुलतान का युद्ध में लूटना। लंगरीराय का घोर युद्ध मचाना। लंगरीराय की बीरता की प्रशंसा।

सिलह सज्जि सुरतान। झुकि बज्जै रन जंगं ।
सुनें श्रवन लङ्गरी। बीर लग्गा अनभंगं ।

बीर धीर सत मध्य । बीर हुंकरि रन धायौ ।
सामंता सत मद्धि । मरन दीन भय सायौ ।
पारंत धक्क हक्कंत रन । षग्ग प्रवाह षग्ग षुल्लयौ ।
बिभ्भूत चंद अंगन तिलक । बहसि बरिहकि बुल्लयौ ॥५३॥

लंगा लोह उचाइ । पर्यौ घुंमर घन मझ्झै ।
जुरत तेग सम तेग । कोर बट्टर कछु सुझ्झै ।
यों लग्गौ सुरतान । अनल दावानल दग्गं ।
ज्यों लंगूर लग्गया । अगनि अगै आलग्गं ।
इक मार उझ्झार अपार मल । एक उझ्झार सुझ्झारयौ ।
इक बार तर्यो दुस्तर रुपे । दूजै तेग उभारयौ ॥५४॥

लोहाने की वीरता का वर्णन । चौसठ खांओं का मारा जाना ।

कवित्त

लोहानौ मद मुंद । बान मुक्के बहु भारी ।
फुट्टि सु ठट्टर ज्वान । पिट्ठ ऊरद्ध निकारी ।
मनों किवारी लागि । पुट्ठि पिरकी उघ्घारिय ।
बट्टारी बर कढ्ढि । बीर अवसान संभारिय ।
एक झर मीर उरझारि झर । करि सुमेर परि अरि सु फिरि ।
चवसट्ठि षान गोरी परै । तीन राव इक राज परि ॥५५॥

मानि लोह मारुफ । रोस विड्डुर गाहक्के ।
मनु पंचानन बाहि । सद्द सिरहद्द हहक्के ।
दुहूँ मीर बर तेज । सीस इक सिंघह बाही ।
टोप टुट्टि बहकरी । चंद ओपमता पाई ।

मनु सीस बीय श्रँग बिज्जुलह । रही हेत त्रुटि भान हति ।
उतमंग सुहै बिब टूक ह्वै । मनु उड़गन नृप तेज मति ॥५६॥

चौसठ खान मारे गए और तेरह हिन्दू सरदार मारे गए । हिन्दू सरदारों के नाम तथा उनका किससे युद्ध हुआ उसका वर्णन ।

दूसरे दिन तत्तारखां का शहाबुद्दीन को विकट-व्यूह के मध्य में रखकर युद्ध करना और सामन्तों का क्रोध कर शाह की तरफ बढ़ना ।

कवित्त

दस हथ्थी सु विहान । साहि गोरी मुष किन्नौ ।
कर अकास बादी । ततार चवकोद स दिन्नौ[1] ।
नारि गोरि जंबूर । कुहक वर बान अघानं ।
गज्जि भग्ग प्रथिराज । चित्त करयो अकुलानं ।
सो मोह कोह वर बज्जि कैं । व्रज उन धारय धमसि कैं ।
सामन्त सूर बर बीर बर । उठे बीर बर हमसि कैं ॥५७॥

अद्ध अद्ध जोजनह । मीर उड्डि संगा केरी ।
तब गोरी सुरतान । रोस सामन्तह घेरी ।
चक्र श्रवन चौडोल । अग्ग सेषन पंचासौ ।
सूर कोट ह्वै जोट । सार मारनह हुलासौ ।[2]
बर अगनि बगी हल्लौ नहीं । पख्खर[3] कोट सुजोट[4] हुअ ।
बर बीर रास समरह परिय । सार धार बर कोट हुअ ॥५८॥

खुरासानखां का सुलतान के वचन पर तैश आकर घोर युद्ध मचाना ।

---

१ बिछिन्नौं २ मरनह उल्हासौ ३ पक्खर ४ सजोर

कवित्त

षाँ पुरसान ततार । षिझ्झि दुज्जन दल भष्षै।
बचन स्वामि उर पटकि । हटकि तसबी कर नंषै ।
कज्जल पंति गज्ज बिथुरि । मध्य सैन चहुआनी ।
अजै मानि जै रारि । विगसु तेरह चपि प्रानी ।
धामन्त फिरस्तन कढ्ढि असी । दहति पिड सामन्त भजि ।
बर बीर मीर बाहन कहर❀ । परे धाइ चतुरंग सजि ॥५९॥

लड़ाई के पीछे स्वर्ग मे रम्भा ने मेनका से पूछा कि तू उदास क्यो है ? उसने उत्तर दिया कि आज किसी को वरन करने का अवसर नही मिला ।

कवित्त

पच्छै भौ संग्राम । अग्ग अप्छर विच्चारिय ।
पूछै रंभ मेनिका । अज्ज चित्तं किम भारिय ।
तब उत्तर दिय फेरि । अज्ज पहुनाई आइय ।
रथ्थ बैठि औथान । सोझतह कन्त न पाइय ।
भर सुभरपरे भारथ्थप भिरि । ठाम ठाम चुप जीत रथ ।
उथकीय पंथ हल्लै चल्यौ । सुथिर सभौ देपीय तथ ।।६०।।

हुसैनखां घोड़े से गिर पड़ा, उभबकखाँ खेत रहा, मारूफखां तातारखाँ सब पस्त होगए, तब दूसरे दिन सबेरे सुलतान स्वयं तलवार निकालकर लड़ने लगा ।

कबित्त

षाँ हुसेन ढरि परयौ । अस्व फुनि परयौ सारबहि ।
झुझ्झ फेरि सति सीव१ । षान उज्बक्क षेत रहि ।

❀करह

षाँ ततार मारूफ । षान षाना षट घुम्मैं ।
तब गोरी सु बिहान । आइ दुज्जन मुप कुम्मैं ।
कर तेग झल्लि मुट्ठिय सुबर । नहिं सुलतानह पन करी ।
अदि हार दीह पलटे सुबर । तबहि साहि फिरि पुक्करी ॥६१॥

सुलतान ने एक बान से रघुवंस गुसाईं को मारा। दूसरे से भीम भट्टी को। तीसरा बान हाथ का हाथ ही में रहा कि पृथ्वीराज ने उसे कमान डालकर पकड़ लिया।

तब साहिब गोरी नरिंद । सतबान समाहिय ।
पहिल बान बर बीर । हने रघुवंश गुसाइय ।
दुजै बान ते कण्ठ । भीम भट्टी बर भंजिय ।
चहूआन तिय बान । षान अद्ध' धरि रज्जिय ।

चहुआन कमान सुसंधि करि । तीय बान हथ हथ्थ रहिय ।
तब लग्गि चंपि प्रथिराज नें । गोरी बे गुज्जर गहिय ॥६२॥

सुलतान को पकड़कर और हुसैनखाँ ततारखाँ आदि को विजय करके पृथ्वीराज दिल्ली गए। चारों ओर जैजैकार हुआ।

गहि गोरी सुरतान । षान हुस्सैन उपार्‍यो ।
षाँ ततार निसुरत्ति । साहि झारि कर डार्‍यौ ।
चामर छत्र रषत्त । बषत लुट्टे सुलतानी ।
जै जै जै चहुआन । बजी रन जुग जुग बानी ।
गज बन्धि बन्धि सुरतान कौं । गय ढिल्ली ढिल्ली-नृपति ।
नर नाग देव अस्तुत करैं । दिपति दीप दिव लोकपति ॥६३॥

एक समय प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने सुलतान को छोड़ दिया।

दूहा

समै एक बत्ती नृपति। वर छंड्यौं सुरतान।
तपै राज चहुआन यौं। ज्यों ग्रीषम मध्यान ॥६४॥

एक महीना तीन दिन कैद रखकर नौ हजार घोड़े और बहुत से माणिक्य-मोती आदि लेकर सुलतान को गजनी भेज दिया।

मास एक दिन तीन। साह सांकट में रुंद्धौ।
करिय अरज उमराउ। दंड हय मंगिय सुद्धौ।
हय अमोल नव सहस। सत्त सै दिन ऐराकी।
उज्जल दंतिय अट्ठ। बीस सुर ढाल सु जक्की।
नग मोतिय मानिक नवल। करि सलाह संमेल करि।
परि राइ राज मनुहार करि। गज्जन वै पठयौ सुघरि ॥६५॥

'बीसलदेवरासो'

द्वितय सर्ग

गवरी को नन्दन आव्यो छइ भाव ।
दोय कर जोड़े लागु हो पाय ।।
'नाल्ह' रसायण रस भणइ ।
भूलो अषिर आणजो ठाई ।।
एकदंतो ! करूं वीनती ।
रास प्रगासुं बीसल - दे - राई ।।१।।

गरब करि ऊभो छई साभंर्यो-राव ।
मो सरीखा नही ऊर भुवाल ।।
म्हां घरि सांभर उगहइ ।
चिंहु दिस थाण जेसलमेर ।।
लाख तुरी पाषर पड़इ ।
राजिकउ थानिक गढ़ अजमेर ।।२।।

गरब न बोलो हो मो भरतार ।
बाजा-बाजे राजा असिय हजार ।।
लंकापति रावण धणी ।
सात समंद बिच बस्ती फेर ।।
"लंक बिंधुसी बांनरां ।
थे काई सराहो राजा गढ अजमेर ।।३।।

गरभि न बोलो हो सांभर-या-राव ।
तो सरीखा घणा और भुवाल ।।
एक उड़ीसा को धणी ।
बचन हमारइ तुं मानु जु मानि ।।

ज्युं थारइ सांभर उगहइ ।
राजा उणि घरि उगहइ हीरा-खान ॥४॥

"धणक बोल बस्यो मन मांहि ।
चित चमकियउ बीसलराय ॥
हूँ बीसल्ह्यो तें वेदिहा ।
म्हा तु बरस बारइ की लांब ॥
कइ म्हारइ हीरा ऊगहई ।
नही तो गोरी ! तिजूहूँ पराण" ॥५॥

"हूं बराकी धणी ! मोकियउ रोस ।
पांव की पाणही सुं कियउ रोस ॥
मे य हसंती बोलीयो ।
आपणइ मान हतौ मानस छइ साँस ॥
उभी मेल्हे चालीयौ ।
जल बिण राजा क्यु जीवइ हाँस ?" ॥६॥

"जनमी गोरी तुं जेसलमेर ।
परणी आवी गढ अजमेर ॥
वार[ह] बरस की गोरड़ी ।
कूं समरयो उड़सिय जगनाथ ॥
अन मेल्हुं पाणी तिजुं ।
कहित[ो]गोरी थारा जनम की बात ॥७॥

"जइ तुं पूछइहो धरह नरेस ! ।
वन खंड रहती हरिणि कइ वेस ॥
निरजला करती एकादसी ।
एक अहेडी बनह मंझारी ॥
ले बांणां उरहु हणी ।
जनम दीज्यो जगंनाथ दुवार ॥८॥

हरिणी मणि संभरया जगनाथ।
संख - चक्र - गदा - धरीय ॥
माँगिहै हरणली मनह विचार।
तो तुंठा त्रिभुवन धणी ॥
पूरब देस म्हारो जनम निवारि" ॥९॥

'क्यु बीसरायो गोरी पूरब देस ?।
पाप तणउ तिहाँ नहीं प्रवेस ॥
अति चतुराई दीसइ घणी।
गङ्गा गया छै तीरथ योग ॥
वाणारसी तिहाँ परसजे।
तिणि दरसण जाई पतिग म्हांसि" ॥१०॥

"पूरब देस को पूरब्या लो।
पान फूलाँ तणउ तुं लहइ भोग ॥
कण संचइ कुकस भखइ।
अति चतुराई राजा गढ ग्वालेर ॥
गोरड़ी जेसलमेर की।
भोगो लोक दखण को देस ॥११॥

जनम हुवउ थारउ मारू कइ देस।
राज कुँवरि अति रूप असेस ॥
रूप नीरोपमी मेदनी।
आछा कापड़ भीणइ लंक ॥
खलयांगी धन कूँवली।
अहिरघ बाला, निर्मल दंत ॥१२॥

कूँवर कहई "सुणों ! साभरया' राव।
काँई स्वामी तु उलगई जाई ? ॥

कह्यउ हमारउ जइ सुणउ ।
थारइ छइ साठि अंतेवरी नारि" ॥
कर जोडे धन वीनवइ ।
"राजकुंवरी निति भोगवि राय" ॥१३॥

रावइ कहइ "सुणी ! राजकुमारि ।
दूमनी काई हीयडइ बर नारि ॥
कह्यउ हमारो जउ सुणइ ।
आंणिसु कोड़ि - टकाउल - हार ॥
देस उडीसइ गम करू ।
जाई जुहारूं जाइवराई" ॥१४॥

मइ धणी ! थार मिल्हीय आस ।
"मइला राजा थारउ कीसउ हो वेसास ।
तो हूँ दासी करि गीणी ।
सगा सुणी जी मांहि ना गमीमा ॥
जीवत ही मुआ वढइ ।
बालूं लोभी हूँ थारा दाम" ॥१५॥

"कड़वा बोल न बोलीस नारि ! ।
तुं मो मेल्हसी चित विसारि ॥
जीभ न जीभ विगोयनो ।
दव का दाधा कुपली मेल्ही ॥
जीभ का दाधा नु पांगूरई ।
'नाल्ह' कहइ सुणाजइ सब कोई ॥१६॥

पंच सखी मीली बइठी छई आई ।
"निगुणी ! गुण होई तो प्रीव क्युं जाई ।
फूल पगर जू , गाहजइ ।
थारउ आंचल बंध्यो नाह कुंजाई ? ॥१७॥

राव कहइ 'सुणि राजकुंमार ।
दूमनी काई हीयइइ वरनारि ॥
कह्यो हमारउ जै सुणइं ।
येक बार रहस्युं खटमास ॥
देव जुहारे आवस्युं ।
ते छइ त्रिभुवन-मुगति-दातार" ॥१८॥

राई कुंवरि बोलइ ईक चित ।
बीप्र हुंकारे बेग तुरंत ॥
आवीयो प्रोहित राव को ।
'पाड्या ! हु थारे गुणदास ॥
देई सचा वर वइलणइं ।
मुहूरत देई वीर ! कातिग मास" ॥१६॥

पांड्या ! वीरा ! हूं थारी गुण दास ।
दिन दस महूरत मौडउ परगास ॥
मास एक बीलंबावज्यो ।
दूजइ फेरई प्रयि समझाई ॥
देइस हाथ कउ मुंदड़उ ।
सोवन-सिंगी नई कपिला गाई" ॥२०॥

पाड्या ! तोहि बोलावइ छइ राय ।
ले पतड़ो जोसी वेगो आई ॥
सूदन कहै रूड़ा जोईसी ।
बाचइ पतड़ो बोलइ छइ साँच ॥
मास एकां लगी दिन नहीं ।
तिथि तेरस वार सोमवार ॥
चंद्रई ग्यारमौ देव है ।
तीसरो चंद्र छइ खोडीला जोगि ॥

काल जोगण भद्रा नहीं ।
बुध नक्षत्र नई कातिक मास ।।
जीण दिन स्वामी थे गम करउ ।
ज्युं घणी आगइ पूरइ हो आस" ।।२१।।

"पाड्यो कहु कइ परतिष (इ) भांड ।
झूठ कहइ छइ नै बोलइ छइ मांड ॥
राज-कुली महूरत कीसउ ? ।
म्हां तो ओलग चालस्यां आज ॥
कह्यो हमारउ जोसी ! जइ सुणई ।
जाइ उडसिई पूजूं जगनाथ ।।२२।।

पाड्यां हूं तो ओलग जाऊं ।
जाई उडीसेइ बात कहांउ ।।
कह्यौ हमारौ जइ सुणइं ।
मो हइ घर की गोरड़ी कह्यां कुबोल ।।
मोहि न मन्दिर आलिगइ ।
जाइ उडीसइ तइ राखस्युं बोल ।।२३।।

"आव दमोदर बइसि नु पाट ।
कहि न वीरा म्हां का पीउ की बात ।।"
"घरौ हो अयांणउ डफिरई ।
आठमो ठांव रवि बारमो राहु ।।
ग्रह गणतो अतिहि वीरा" ।
सिर धुणी मूका छइ धाह ।।२४।।

"दासी होई करि निरवहुं ।
पाय पषारसुं ढोलसुं वाई ।।
पुहर पुहर प्रति जागसुं ।
इण हर सेवस्युं आपणउ नाह" ।।२५।।

'गहिली है श्री तोहइ लागी छुई वाय।
अलीय ले कोई उलगि जाई ?॥
गहिली मुंधउ तुं वावली।
चंद क्युं कूडइ ढांकाणउ जाई ?॥
रतन छिपायाँ क्यु रहई ?।
आगई बाचा को हीणो छइ पूरब्यो राइ" ॥२६॥

उलगी जांण सजौ समदाव।
हंसि कर गोरी पूछइ राव॥
"सात बरस पेहलो रह्यो।
चीरी जणइ न मोकल्यै कोई॥
लाहो लेता जनम गौ।
तुय करै तिसी तोथो होई" ॥२७॥

अचल गह तिय बइसाड़ी छइ आणी।
हंसि गल लाई भोजी सो काया॥
आज ऊलेंभउ भांजवा।
"या धनवीरा! थारइ हिये न समाई॥
कै या बोल का आकरी ?।
कौणे दुख देवर! उलग जाई" ॥२८॥

उभी भावज दइ छइ सीष।
"रतन कचौलौ राय सांपजै भीप॥
ते नाउं पगसूं ठेलीजै।
इसीन रायाँ तणौ नहीच अवास॥
ईसीय न देवल पूतली।
नयण सलूंणां बचन सुमीत॥
ईसीय न खाती कौ घड़इ।
इसी अखी नहीं रवि तलै दीठ" ॥२९॥

'रही ! रही ! भावज वचन तूं बोल ।
राज-कुंवर मोहइ कह्यो हो कुबोल ॥
मोहि रयणी दिन [न] बिसरइ ।
राज कुंवर आवे जो साथ ॥
तो विस खाये मरूं ।
बारइ बरस पूजूं जगनाथ" ॥३०॥

आज सखी मोहि विहांण ।
पीइवा कइ दिन कहइ छइ जाण ॥
"आज नीरालइ सोय पड्यो ।
च्यारि पहुर मांही नू मीली आंख ॥
ढळइ पांणो ज्युं माछली ।
जिव जागु तिव उठुछुं झंपि ॥३१॥

बीज अंध्यारी नइ सुक्रजावार ।
महूरत नहीया कहइ वर-नार ॥
महा — डपग्रह उपजइ ।
जै नर उलग ईण महूरत जाई ॥
आवण का सांसा पड़ई ।
जाणि हीमाळइ राजा गळीया हो जाई ॥३२॥

तीजं घरि घरि मंगलचार ।
चिहुँ दिसी कामनी करई हो सयंगार ॥
रमइ सहेली काजली ।
धरि धरि कामिनी मड़इ छइ खेल ॥
चंद्र बदन विलखी फिरई ।
स्नेह-घुठी राजा औलगी मेलही ॥३३॥

"चउथ अंधारी [दि] नई मंगलवार ।
चन्द उजाळउ घरि घरि बारि ॥

वरति करह घरि आपणइँ ।
चउथ जुहारउ सांभरया—राव ।।
वचन हमारउ मानज्यो ।
हरिप के पूजो ईणी ठाई ।।३४।।

पंचम कउ दिन पहूतो छइ आई ।
अउत होइ घरि छौड़ो हो राय ।।
तु अजमेरी राजीयो ।
पुत्र कलत्र सहू परिवार ।।
सईभर थांणउ बइसणइं ।
राई चहूवांण ! औलगि नीवार ।।३५।।

'रही [रही] कांमणी अंचल छोड़ी ।
औलग जाऊँ हूँ अंऊ न बहोडी ।।
देस उड़ीसइ गम करूँ ।"
बे वचन बोल्या तिणि ठाई ।।
छउ सातम दिन आवीयो ।
निहचइ औलगि चालण-हार ।।३६।।

पूरी सभा बइठो सांभरयो-राव ।
चउरास्या सहू लीयो बोलाई ।।
माई तेड़ावो राव की ।
सबी मिलि मंत्र कियो तिणि ठाई ।।
कहेउ हमारउ जइ सुणो ।
"कोक भतीजौ सूंपजए राज" ।।३७।।

राइ कहइ "भली हुई आजि ।"
कोकि भतीजौ सौंप्यौउ राज ।।
बांध्या खाइण वर जरी ।

थाप्या मंदिर घरि कविलास ॥
थाप्या चौरा चउखंडि ।
थाप्या सांभरि का रीणवास ॥
राजा चाल्यो उलगइं ।
सहू अंतेवरी मेल्ही नीसास ॥३८॥

ओलग चाल्यो धन कउ नाह ।
सहू अंतेवरी झूरई राउं ॥
झूरई सहोवर राव का ।
कुली छतीसइ झूरइ सोही ॥
धार झूरई राजा भोज सूं ।
सांभर्या राव्र सो पड्यो विछोह ॥३९॥

झूरइ राइ वइहनंडी अंकन कुंवार ।
महाजन झूरई राई सांधार ॥
माता झूरइ राव की ।
झूरइ बंभण भांट बीयास ॥
येकइं बोल कइ करिणाइ ।
चाल्यों राजा मेल्ही निसास ॥४०॥

राव उडीसइं पहुँतउ जाई ।
देव जुहारे लागु पाय ॥
धन दिहाडउ आज कउ ।
देव उठि दीयो चउगिणउ मान ॥
मेल्ही चावर बइसणइ ।
राव उडीसा को परधान ॥४१॥

राई प्रधानपणइं रह्यो जाई ।
चउरास्या सहू लागइ पाय ॥

मान

मान का जीवन-सम्बन्धी कोई वृत्तांत, अभीतक, उपलब्ध नही हुआ है। आप द्वारा लिखित केवल एक ग्रंथ "राज-विलास" मिलता है, जिसकी रचना वि० सं० १७३४, आषाढ़ शुक्ल ७ बुधवार को प्रारम्भ हुई थी। इसकी पुष्टि "राज-विलास के ही निम्नलिखित छंद से होती है—

"सुभ संवत् दस सात बरस चौतीस बधाई।
उत्तम मास अषाढ़ दिवस सत्तमि सुखदाई।
विमल पाष बुधवार सिद्धिवर जोग संपत्तौ।
हरषकार रिषि हस्त रासि कन्या ससि रत्तौ।
तिन द्यौस मात त्रिपुरासुकवि, कीनौ ग्रंथ मंडान कवि।
श्री राजसिंह महाराण कौ रचि यह जस जौ चंद रवि॥

(रा० वि० १-३८)

महाराणा राजसिंह का राज्यारोहण वि० सं० १७०६, कार्तिक वदि ४ को हुआ* तथा औरंगजेब का आक्रमण वि० सं० १७३६ मे हुआ था। इसप्रकार महाराज के सिंहासनारूढ़ होने के पच्चीस वर्ष पश्चात् और आक्रमण के दो वर्ष पूर्व, इस ग्रंथ की रचना आरम्भ हुई थी। सम्भव है, इसी तिथि के आस-पास कवि राजदरबार मे आया हो।

ऊपर के छंद मे प्रयुक्त "मंडान" कवि का मुख्य नाम था। इसके अनंतर ग्रंथ भर मे प्रायः "मान" नाम ही आया है,

---

*"उदयपुरराज्य का इतिहास"—पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा पृष्ठ ५३२; ५५५।

जो उसका उपनाम था। इस छंद के अतिरिक्त आत्मपरिचयात्मक पंक्तियाँ और नहीं है।

इसके जीवन के विषय मे अन्य अनेक धारणायें प्रचलित हैं किन्तु उनके सम्बन्ध मे कोई पुष्टप्रमाण उपलब्ध नही। इतना अवश्य माना जा सकता है कि इस ग्रंथ में वर्णन की हुई राजसिंह-सम्बन्धी प्रायः सभी घटनाये समकालीन ही थीं; अतः उनमे सत्य का अंश है।

ग्रंथ की समाप्ति सं० १७३७ वि० में हुई है और इसके अतिरिक्त कवि को कोई अन्य रचना भी प्राप्त नही है; अतः उसका कविता-काल स्थूलरूप से सं० १७३४ से १७३७ तक माना जा सकता है।

राजविलास

इस ग्रंथ की रचना कवि ने वीरकेसरी मेवाड़नरेश महाराणा राजसिंह की प्रशंसा में की है—

"श्री राजसिंह राना सबल महिपतियाँ शिर मुकुटमनि।
गावत तास गुण बंद गुरु धणियांणी दिज्जै सुधुनि॥"

(रा वि० १-३२)

इस ग्रंथ में अठारह विलास (सर्ग) हैं। प्रारम्भ में सरस्वती की स्तुति विस्तार से की गई है। तदनंतर वंशोत्पत्ति, राजसिंह का जन्मोत्सव, तथा उनकी ग्यारह वर्ष की अवस्था तक का बाल्यजीवन चित्रित किया गया है। घटनाओं का विस्तृत-विवरण, महाराणा के सिंहानारूढ़ होने के पश्चात् प्रारम्भ होता है। औरंगजेब तथा महाराणा के युद्धों का विशद और विस्तृत-वर्णन इस ग्रंथ में है। मुख्यरूप से इन युद्धों का बर्णन करना ही कवि का प्रयोजन ज्ञात होता है; ग्रंथ के

अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराणा के आक्रमण तथा युद्ध ही ग्रंथ के केन्द्रीय-वर्ण्य-विषय हैं।

सारांश

प्रथम—प्रारम्भ में सरस्वती की विस्तृत-वंदना के साथ ग्रंथनिर्माण का समय देते हुए कवि ने अपना संक्षिप्त-परिचय दिया है। इसके अनंतर मौर्यकुल का वर्णन करते हुए चित्रांगद का मेदपाट नाम के नगर बसाकर अठारह प्रांतों पर राज्य करने का भी वर्णन है। सातवी पीढ़ी में चित्रंग नामक राजा के पश्चात् शिव जी के प्रसाद से बप्पारावल की उत्पत्ति सोरठ के राजा गुह्यादित्य से बतलाई गई है। गुह्यादित्य के मारे जाने पर बप्पारावल जंगल मे इधर उधर भटकने लगे। एक दिन जंगल मे बप्पारावल को हारीत मुनि से भेंट हुई और महाराज उनको सेवा मे लग गये। हारीत ने स्वर्ग जाते समय इन्हें प्रतापी राजा होने का आशीर्वाद दिया। जंगल में ही इनका विवाह हुआ था और वहीं पर इन्होंने सैन्य-संग्रह भी आरम्भ कर दिया। फिर अपने मामा के यहाँ सेनापति होकर उन्होंने उसी का राज्य दबा लिया। इन्हीं बप्पारावल के वंश में राजसिंह का जन्म हुआ था। प्रथम विलास में २३८ छंद है।

द्वितीय—इसमें बप्पारावल की वंशावली तथा उनसे संबंधित कतिपय मुख्य घटनाओं का उल्लेख है। इसी विलास में समरसिंह, प्रतापसिंह आदि का भी अत्यंत प्रभावशाली वर्णन है; इसके अन्त मे उदयपुर के महल, जगतसिंह की सभा, नगर के बाजार, व्यापार, प्रबन्ध तथा निवासियों का बड़ा सुन्दर वर्णन है। इसके अनंतर राजसिंह का जन्म और उनकी ग्यारहवीं वर्ष की अवस्था तक का संक्षेप में चित्रण है।

महाराणा राजसिंह का जन्म सं० १६८६ वि०, शरदऋतु कार्तिक कृष्ण द्वितीया को, एक पहर रात्रि व्यातीत होने पर, चंद्रोदय के समय, मेषलग्न मे, हुआ था।

यह विलास १६२ छदों मे समाप्त हुआ है

तृतीय—इसमे राजसिंह का बूंदीनरेश हाड़ा छत्रसाल की कन्या से विवाह का वर्णन है। इसीसमय छत्रसाल की दूसरी कन्या का विवाह, जोधपुर नरेश गजसिंह के पुत्र, जसवंत सिंह के साथ, होना निश्चित हुआ था। दोनो बारातें साथ ही साथ पहुँची। शिष्टाचार तथा विवाह, किसका प्रथम हो, इस प्रश्न पर बड़ा वाद-विवाद हुआ किन्तु छत्रसाल के समझाने से विवाद शान्त हो गया और राजसिंह का ही विवाह पहले हुआ। वाद-विवाद का भी वर्णन इस ग्रंथ में बड़ी ओज पूर्ण भाषा मे है। इसमे १०७ छद हैं।

चुतुर्थ—इसमें राजसिंह के "ऋतुविलास" नामक उद्यान का सुन्दर वर्णन हैं। इस विलास मे केवल २३ छंद हैं।

पंचमः—इसमें २३ वर्ष की अवस्था मे, सं० १७०८ वि० में राजसिंह के सिंहासनासीन होने का वर्णन है और साथ ही कवि द्वारा प्रणीत, विस्तृत-विरुदावली भी है। इसमें ६३ छंद है।

षष्टः—इसमें टीकादारी-प्रथा के अनुसार राजसिंह की दिग्विजय का वर्णन है। इसमे मालपुरा की लूट का विस्तृत वर्णन है। इसमें कुल ३९ छंद हैं।

सप्तमः—इस विलास के प्रारम्भ मे रूपनगर के राजा मानसिंह राठौर की बहन रूपकुमारी (प्रभावती) का नखशिख वर्णन है। उसके सौंदर्य का वर्णन सुनकर औरंगजेब प्रभावती से ब्याह करना चाहता था; किन्तु रूपकुमारी ने स्वयं पत्र लिखकर महाराणा राजसिंह को पाणिग्रहण के लिए

निमंत्रित किया तथा सारी परिस्थितियों से भी उसको सूचित किया। राजसिंह ने एक विशाल-सेना के साथ रूपनगर में जाकर रूपकुमारी के साथ ब्याह किया। इस विलास मे १०७ छन्द है।

अष्टमः—इस विलास में "राजसर" या "राजसमुद्रतालाब" तथा विष्णु-मन्दिर बनवाने का उल्लेख है। इसमें तत्कालीन अकाल का भी बड़ा हृदयद्रावक-वर्णन किया गया है। इस विलास में कुल १७२ छन्द हैं।

नवमः—इसमे जोधपुर के राजा जसवंतसिह तथा औरंगज़ेब के विरोध का वर्णन है। राजसिंह ने जोधपुर का पक्ष लिया और जसवंतसिंह के पुत्र अजीतसिह को अपने शरण मे लिया। इसमे कुल २०६ छन्द हैं।

दशमः—बादशाह के क्रोधित होकर हिन्दूपति राजसिंह को एक पत्र लिखकर जोधपुर के बालक राजा अजीतसिह को अपने पास भेजने की आज्ञा दी। आज्ञापालन न करने पर बादशाह ने युद्ध की घोषणा कर दी; मेवाड़ में भी युद्ध का आयोजन होने लगा। इसमे कुल १२३ छंद हैं।

एकादशः—इस विलास मे देवसूरि नामक घाटी मे भीमसिह तथा मुगलसेना मे भयंकर युद्ध का वर्णन है। भीमसिह ने मुगलो को पराजित किया। इसमे कुल १४ छंद हैं।

द्वादशः—इसमे राजकुमार उदयभान और मुग़लों के युद्ध का वर्णन है। मुग़लो की सेना पच्चीसगुनी थी, फिर भी वे पराजित हुए। इसमे कुल २३ छन्द हैं।

त्रयोदशः—इसमे नोनवारा नामक पर्वत पर दोनों सेनाओं के युद्ध का वर्णन है। राजपूत सेना का संचालन रतनसिंह और केशरीसिंह कर रहे थे तथा मुग़लों का शाहजादा, अक-

बर, कर रहा था। इसमें भी मुग़ल पराजित हुए। इसमें कुल ३५ छन्द है।

चतुर्दशः—केशरीसिह के पुत्र सगतावत गंगासिह ने मुग़ल सेना का हस्तीयूथ छीन लिया। इसमे ४१ छन्द है।

पंचदशः—इसमे राजसिह के पुत्र भीमसिह द्वारा गुजरात पर किए गए आक्रमण का वर्णन है। नगर को लूटकर अंत मे पिता की आज्ञा से राजकुमार को लौट आना पड़ा। इसमे कुल ३६ छन्द है।

षोडशः—मेडतिया के महाराज सॉवलदास ने वधनौर के किले से निकलकर रुहिल्लाखॉ के नायकत्व में आनेवाली मुग़लसेना पर आक्रमणकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस विलास मे २८ छन्द है।

सप्तदशः—मेवाड़ के मंत्री, दयालशाह ने, मालवा-प्रांत पर आक्रमण किया और मांडो, उज्जैन, सिरोज, चंदेरी आदि को लूटकर मालवा पर अधिकार कर लिया। इसमे कुल २८ छन्द है।

अष्टदशः—इसमे शाहजादा, अकबर, की चित्तौर पर चढ़ाई का बर्णन है। शाहजादा अजमेर भाग गया। राजपूतों का उत्साह बढ़ा और चित्तौर पर राजसिंह के पुत्र जयसिह का अधिकार हो गया।

इसी युद्ध के साथ ग्रंथ की भी समाप्ति हो जाती है। अंत मे राजसिंह के वंशवर्णन में कतिपय छन्द है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ को अचानक समाप्त करना पड़ा है; सम्भवतः राणा को मृत्यु के कारण ऐसा करना पड़ा हो। यह विलास १०७ छन्दो में पूर्ण हुआ है।

ऐतिहासिकता

"राजविलास" की रचना सं० १७३४ में आरम्भ हुई थी। इसमें सं० १७३७ वि० तक की घटनाओं का वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि उसी संवत् में इसकी समाप्ति हुई। इन तिथियों से यह सिद्ध हो जाता है कि राजविलास की रचना महाराणा राजसिंह के राज्यकाल में उनके उत्कर्ष के ही समय हुई। इसमे वर्णित समस्त घटनायें ग्रन्थ-रचना के समय की ही हैं; अत. उनमे सत्य का अंश ही अधिक है; किन्तु साथ ही,.इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन मे, मान उतने सत्यनिष्ठ नहीं हैं, जितने गोरेलाल जी "छत्रप्रकाश" मे। दरबारी कवियो की अतिशयोक्तिपूर्णशैली का अवलंबन करने से, कवि ने एक ओर तो कतिपय घटनाओं को बहुत बढ़ाचढ़ाकर चित्रित किया है, तो दूसरी ओर, कतिपय साधारण घटनाओं का वर्णन ही नहीं किया है। नीचे प्रामाणिक इतिहासो के आधारपर इस ग्रन्थ मे वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिकता पर बिचार किया गया है।

राजविलास के संवत् प्राय. शुद्ध है। उदाहरण के लिए राजसिंह की जन्मतिथि मान ने अपने ग्रन्थ मे इसप्रकार दी है—

"संवत् सोरह सरस बरस छह असिय बखानह।
असि अमृत ऋतुसरद धरा निष्पनिय सुधानह।
मंगल कातिक मास पढ़म पष बीय पवित्तह।
बलवतो बुधवार निरखि भरनी सुनषत्तह।
निसिनाथ उदित गय पहर निशि मेष लगन मन्यो सु मन।
जगतेश राण घर सुत जनम राजसिंह राना रतन॥"

[रा० वि० २-१४८]

अर्थात् जगतसिंह के पुत्र महाराणा राजसिंह का जन्म सं० १६८६ वि०, कार्तिक वदि २, बुधवार को, मेषलग्न में प्रहर-भर रात्रि व्यतीत होनेपर चंद्रोदय के समय में हुआ था।

ठीक यही तिथि "राजप्रशस्ति-महाकाव्य" में भी दी गई है। "राजप्रशस्ति" की रचना संस्कृत में महाराणा राजसिंह की आज्ञा से रणछोड़भट्ट नामक एक पंडित के द्वारा हुई थी, जिसमें उस समय तक उपलब्ध ऐतिहासिक-सामग्री का उपयोग किया गया था। यह सारा महाकाव्य "राजसमुद्र" के बांध पर लगी हुई २५ शिलाओं पर उद्धृत है। यह केवल काल्पनिक-काव्य नहीं है, किन्तु इसमें संवतों के साथ-साथ ऐतिहासिक-घटनाओं का विस्तृत-वर्णन है।* उक्त महाकाव्य में महाराणा राजसिंह की जन्मतिथि इसप्रकार दी गई है—

'शते षोडशकेऽतीते षडशीत्यभिधेऽब्दके।
ऊर्जे कृष्णद्वितीयायां जगतसिंह महीपतेः ॥२२॥
पुत्रः श्री राजसिंहोऽभूद्दर्पान्तेऽरसी तथा।
मेडता धिय राठोड़ राजसिंह महीभृतः ॥२३॥

[राजप्रशस्तिमहाकाव्य, सर्ग ५]

मान ने राजसिंह का २३ वर्ष की अवस्था में सिंहासनारूढ़ होना लिखा है। यथा—

"पालिय प्रबर कुंआर पद बरस तेइस बखान।
पाट बइट्ठे पुहुवीपति, राजसिंह महारान ॥१॥"

[रा० वि०; ५-१]

पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा ने उनके सिंहासनारूढ़ होने की तिथि सं० १७०६ कार्तिक वदि ४ दी है।†

---

*ओझा—राजपूताने का इतिहास, पृ० ८८७।

†ओझा—"उदयपुरराज्य का इतिहास", पृ० ५२२

इनका जन्मसंवत् १६८६ होनेपर तेईस बर्ष की अवस्था सं० १७०६ मे होनी निश्चित ही है।

टीकादारीप्रथा के अनुसार राणा राजसिह की दिग्विजय-यात्रा का वर्णन, मान ने बड़े विस्तृत-रूप मे किया है। उसकी तिथि "राजविलास" मे निम्नलिखित है—

"सम्वत प्रसिद्ध दह सत्त भास। वत्सर सुपंच दस ज्येष्ठमास॥
सजि सेन राण श्री राजसीह। असुरेश धरा सज्जन अबीह॥"
[रा० वि०; ६-२]

इस तिथि का उल्लेख "वीरविनोद" तथा "राजप्रशस्ति" नामक ग्रंथों मे भी इसीरूप मे किया गया है।*

उदयपुर के प्रसिद्ध अकाल की तिथि, मान ने, अपने ग्रन्थ मे, निम्नलिखित रूपमें दी है—

"संबत सतरा सै सुपरि, संवच्छर दससात।
उतर्यौ मास असाढ़ कौ, बिन घन बज्जत बात॥"
[रा० वि०; ८-११३]

दुर्भिक्ष- पीड़ित जनता की ही सहायता के लिये राजसिह ने प्रसिद्ध "राजसमुद्रतालाब" का निर्माण कराया। इन दोनो तिथियों की पुष्टि अन्य प्रामाणिक-इतिहासों से हो जाती है।†

इसीप्रकार राजसरोवर के निर्माण की तिथि भी पूर्ण रूप से प्रामाणिक है। राजबिलास में इसका निम्नलिखित उल्लेख मिलता है :—

---

*कविराजा श्यामलदास—"वीरविनोद"; भाग २, पृष्ठ ४१४। तथा "राजप्रशस्ति-महाकाव्य" सर्ग ७, श्लोक २५-२६।

†"राजप्रशस्तिमहाकाव्य," सर्ग ६; श्लोक १४ तथा "वीरविनोद" भाग २, पृ० ४४६।

संवत्सर दह सत्त सत्त दह मवत सोहग।
मण्डि महा कमठान जानि दुरभष्प सकल जग॥
पोस अष्टमिय प्रथम बार मंगल वर दाइय।
नायक हस्त नक्षत्र सिद्धि वरयोग सुहाइय॥
तिहि दिवस सकल मङ्गल सजित, परठि नीम पायाल मधि।
राजेस राण रचि राजसर, नितु नितु बहु बिलसन्त निधि।
[रा० वि० ८—१४०]

राजप्रशस्तिमहाकाव्य मे उल्लिखित-तिथि से भी ऊपर की तिथि की पुष्टि हो जाती है।

राजबिलास मे राणा के ऊपर औरंगजेब के आक्रमण की तिथि निम्नलिखित है :—

संवत्सर छत्तीस सीम सतरासें संवत।
भद्दव दुतिया धवल चल्यो पतिसाह चंड चित॥
दोय सहस गुरु दंति पंति जनु हल्लिय पव्वह।
उभय लक्ख उत्तंग बाजि बर बेग सु सव्वह॥
आराब नारि गोरह अधिक रथ जंत्री दो सहस रजि।
औरंगसाहि आडंबर हि सेन कोटि पायक सु सजि।
[रा० वि० ६-१७०]

डा० ओझा ने भी उदयपुरराज्य के इतिहास में यही तिथि दी है। यथा—"बादशाह ने हि० स० १०६० ता० ७ शाबान (वि० सं० १७३६ भाद्रपद सुदि ८, ई० सं० १६७६ ता० ३ सितम्बर) को महाराणा से लड़ने के लिये बड़ी सेना के साथ प्रस्थान किया है।"❀ [ओझा—उ० रा० इ० पृष्ठ ५५५]

❀दोनों उल्लेखों में केवल तिथिभेद है। एक में द्वितीया तिथि है और दूसरे में अष्टमी।

इन तिथियों के अतिरिक्त कतिपय अन्य घटनायें भी प्रामाणिक-इतिहास की कसौटीपर खरी खरी उतरती है। उदाहरण स्वरूप राजाविलास मे राणा की दिग्विजय-यात्रा में "मालपुरा" की लूटमार का बड़ा विस्तृत बर्णन है,—

"धक धूनिय धाम सुकोट धकाइय गोपरु पौरि गिराइ दिये।
ढम ढेर करी हट श्रेणि ढुढारिय कंकर कंकर दूर किये॥
पतिसाह सु दुज्झन नैर अजारिय अंबर पावक भार अरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसो राण कुमार उजारिय मालपुर॥"

[रा० वि० ६-३३]

"राजप्रशस्ति" में भी इस लूट का ऐसा ही विस्तृत-वर्णन है।† इसप्रकार सिद्ध होता है कि जहाँ तक लूट का सम्बन्ध है, इसमें किसीप्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है।

इसके पश्चात् 'राजविलास' के सप्तम सर्ग में रूपनगर की राजकुमारी के साथ राणाराजसिंह के विवाह को विस्तृत-कथा है। राजकुमारी, प्रभावती, उपनाम रूपकुमारी अत्यंत सुन्दरी थी। उसके सौंदर्य का वर्णन सुनकर बादशाह औरंगजेब उस पर मुग्ध होकर उसके साथ विवाह करना चाहता था। किन्तु रूपकुमारी ने राणा के नाम पत्र लिखकर, उसे विवाह के लिए आमंत्रित किया। इस विवाह का वर्णन "राजप्रशस्ति महाकाव्य" में भी है; यथा—

"शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे सप्तदशे ततः।
गत्वा कृष्णगढ़े दिव्यो महत्या सेनयायुतः॥२९॥
दिल्लीशार्थं रक्षिताया राजसिंह नरेश्वरः।
राठोड रूपसिंहस्य पुत्र्याः पाणिग्रहं व्यधात॥३०॥

[राजप्रशस्तिमहाकाव्य ८]

---

†सर्ग ७, श्लोक ३१-३६

औरंगज़ेब, कितनी हत्याओं के पश्चात् दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, यह सर्वप्रसिद्ध है। पिता को कारागार मे डालने तथा भाइयो के साथ छल-कपट करके उनकी हत्या के सम्बन्ध मे इतिहासों के पृष्ठ के पृष्ठ रंगे हुए है। मान ने 'राजविलास' मे भी इन कृत्यो का उल्लेख किया है। कुछ पंक्तियाँ नीचे दी जाती हैं :—

"असपति परि ओरंग अति, क्रूर कपट को कोट।
जिनमारे बंधन जनक, अल्लह दै बिचि ओट ॥९॥
विश्वास देइ तिन हने बंधु। औ ऐसु दुष्ट उर रच्य अंधु ॥१०॥
अल्लह सु देइ निज अंतराल। सु सुरादि साहि उर जानि साल ॥
करकरिय छुरिय लहु बंधु कंठि। गुरु भार बंधि जिन पाप गंठि ॥१४॥
एकल्ल भयो पतिसाह आप। पहु प्रगट कलंकी ज्यों प्रताप ॥
न सुहाइ जास षट दरस नाँउ। धीधिट्ठ दुट्ठ बहु पाप धाउ ॥१६॥
[रा० वि०; ९]

उसकी यही बातें मंदिर तुड़वाने और जज़िया लगाने के सम्बन्ध में भी हैं। यदुनाथसरकार के अनुसार हिंदुओं के देवालय आदि तुड़वाने का कार्य औरंगज़ेब ने अपने शासन के बारहवे वर्ष से आरम्भ किया था।[1] जज़िया नामक कर लगाने का समय ओझा जी के अनुसार सं० १७३६ है।[2] हिंदुओं के लिये यह बड़ा अपमानजनक कर था और बड़ी निर्दयता से वसूल किया जाता था। इतिहासों में जज़िया वसूल करने के अनेक अपमान-जनक विधानों के उल्लेख मिलते हैं।[3]

---

१ यदुनाथसरकार, 'हिस्ट्री आफ औरंगजेब,' भाग ३ पृ० ३१९-२० ।

२ ओझा, 'उदयपुरराज्य का इतिहास,' पृ० ५५८ ।

३ इलियट,—'हिस्ट्री आफ इण्डिया' भाग १ पृ० ४७६-७७, तथा यदुनाथसरकार, 'हिस्ट्री आफ औरंगजेब' भाग ३, पृ० २७४, ३०५—८ ।

महाराणा राजसिंह ने इस कर का बड़ा भयंकर विरोध किया था। ओझा जी ने अपने "उदयपुरराज्य के इतिहास में राणा द्वारा लिखित एक लम्बा पत्र उद्धृत किया है, जो औरंगज़ेब के नाम जज़िया के विरोध में लिखा गया था।❀ इसमे बड़े साहस के साथ बादशाह की नीति का घोर विरोध किया गया है और इसके एक-एक शब्द से राणा की स्पष्टवादिता प्रकट होती है। कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती है—

"वे धार्मिक-ग्रंथ, जिनपर आपका विश्वास है, आपको यही बतलावेंगे कि परमात्मा मनुष्यमात्र का ईश्वर है, न कि केवल मुसलमानों का ·····वही सब को पैदा करने वाला है। आपकी मसजिदो मे उसीका नाम लेकर नमाज़ पढ़ते हैं और मन्दिरों में जहाँ मूर्तियों के आगे घण्टे बजते है, वहाँ भी उसी की प्रार्थना की जाती है। इसलिये किसी धर्म को उठा देना ईश्वर की इच्छा का विरोध करना है। जब हम किसी के चित्र को बिगाड़ते हैं तो हम उसके निर्माता को अप्रसन्न करते हैं।"······मतलब है कि जो कर आपने हिन्दुओं पर लगाया है, वह न्याय और सुनीति के विरुद्ध है।"

[ओझा, उ० रा० इ० पृ० ५५१]

अब इस सम्बन्ध में मान का उल्लेख देखें :—

"चौरासि अर्वल्लिय रूप चारु। चौबीस पीरि कामाति धार ॥
थप्पै स अप्प तुरकान थान। काजी कतेब कलमाकुरान ॥२८॥
रसना रटंत महमद रसूल। ईदह निवाज रोजा अभूल।
बाराह छंडि गो सत्थ बैर। सुदि पप बीय बटै सुषेर ॥२९॥
गरवर वदंत पारसि गुमान। प्रासाद तित्थ षंडै पुरान ॥०३॥

[रा० वि०; ६]

❀ओझा—'उदयपुरराज्य का इतिहास' पृष्ठ ५४९-५५१।

यद्यपि राजविलास में जज़िया के विरोध में लिखित-पत्र का उल्लेख नहीं है, फिर भी बादशाह की ओर से हिन्दुओं के असन्तुष्ट होने का स्पष्ट उल्लेख है। इसीसमय से बादशाह और राणा के वैमनस्य का बीज, जो चारुमती (रूपकुमारी) के विवाह में, बो दिया गया था, अंकुरित हुआ। इसीसमय एक दूसरी घटना भी हुई, जिससे बादशाह के विरुद्ध विद्रोह की आग और भड़क उठी।

महाराज जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् राजकुमार अजीतसिंह (जसवंत सिंह के पुत्र) को बादशाह, अपने दरबार में रखना चाहता था। किन्तु बालक राजकुमार, राठौड़] दुर्गादास की संरक्षकता में, महाराणा राजसिंह की शरण में पहुँचा दिया गया। महाराणा ने उसे बारह गाँवों सहित केलवे का पट्टा देकर वहाँ रखा। राजविलास के नवमविलास में इस घटना का विशद-वर्णन है, जो सर्वथा प्रामाणिक है। इस घटना का उल्लेख अन्य प्रामाणिक-ऐतिहासिक-ग्रंथों में भी इसी प्रकार से है।❀

फलतः औरंगज़ेब ने राजपूतों पर आक्रमण कर दिया। युद्ध का विस्तृत-वर्णन राजविलास के अंतिम नव विलासों में (१०-१८) किया गया है। इस युद्ध से सम्बन्धित प्रायः सभी घटनाओं के वर्णन ऐतिहासिक हैं। राजपूतो ने शिवाजी के विधानों का अनुकरण किया और उदयपुर का त्यागकर पर्वत की उपत्यकाओं में छिपकर युद्ध करना निश्चित किया। पर्वत पर, उनके प्रबन्ध का वर्णन, मान ने इसप्रकार किया है—

❀डा० ईश्वरीप्रसाद,—'भारतवर्ष का इतिहास' [अंग्रेजी-संस्करण] पृ० ६२०, एम० सी० सरकार, 'माडर्न इण्डियन हिस्ट्री' पृ० २१२-२१३; वीरविनोद, भाग २, पृ० ४६३।

प्रनमि हिंदुपति पाइ सब, ठट्ठे महलहि ठट्ट ।
मनो गंग यमुना मिली, सलिल समेल सुघट्ट ।।६३।।
हुकुम दयो तिन करन हर, भारहु घाट सभार ।
दस दस सहस रहो सुभर, पिशुन न दे पैसार ।।६४।।
षरच सु लेहु पजान ते, ध्रुव पद रोपो धीर ।
रक्षित रुक्कि रिपु रुक्किके, मारो बड़ बड मीर ।।६५।।
यों कहि सब अभिमानि के, सबनि दये शिर पाव ।
अश्व कनक भूषन अषय, बसुधा ग्रास बढ़ाव ।।६६।।
पंच फौंज तिन रचि प्रबल, रहे घाट गिरि रुक्कि ।
आवन जान न लहे अरि, थान थान मग थक्कि ।।६७।
पत्तनेन बारा सु पट्ट, गिरिवर तई गुरु गाढ़ ।
भार अठारह तरु भरित, अहनिसि लगत असाढ़ ।।६८।।

[रा० वि०—१०]

युद्ध के उन्हीं विधानों तथा उन्हीं स्थानों का नाम "औरंगज़ेबनामा" मे भी मिलता है।* आधुनिक इतिहासों में भी इसीप्रकार के उल्लेख मिलते हैं।†

इस समय उदयपुर खाली था और वहाँ केवल थोड़ी सी राजपूत सेना बची हुई थी। औरंगज़ेब ने सारा नगर लूट लिया और कई मंदिर तथा मूर्तियां तुड़वाई। राजविलास मे यद्यपि, इस घटना का उल्लेख, उतने विस्तृतरूप में नहीं मिलता, जितना अन्य इतिहास-ग्रंथों में है, फिर भी उसका संकेत अवश्य मिलता है। यथा—

---

*देवीप्रसाद,—'औरंगजेबनामा,' भाग २ पृ० ८८-८९।

†यदुनाथसरकार,—'औरंगजेब,' भाग ३, पृ० ३८६, ईश्वरीप्रसाद, भारतवर्ष का इतिहास (अंग्रेजी) पृ० ६२०-६२१।

"डरत डरत 'असुरेश दल, करत सुकास सकोस।
आये उदयापुर निकट, दुज्जन पूरित दोस ॥१०४॥
[रा० वि०; १०]

उदयपुर के मंदिरों को तोड़ने के पश्चात्, बादशाह ने सारा-कार्य-भार शाहज़ादा अकबर के ऊपर छोड़कर अजमेर की ओर प्रस्थान किया। इसका उल्लेख सभी प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों में मिलता है। "राजविलास में भी मान ने, इसका निर्देश, निम्नलिखित पंक्तियों में किया है:—

"अंगज साहि ओरंग को, अकबर साहि अमान।
धस्यो पहारनि मध्यधर, रिन जित्तन महरान ॥१॥
[रा० वि०; १३]

किंतु इस युद्ध में राजपूतों ने बड़ी वीरता से युद्ध किया और अकबर को असफल होना पड़ा। राणा ने अचानक अकबर पर आक्रमण कर दिया, जिससे मुग़लों की बड़ी क्षति हुई। राजपूतों का साहस दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। कुँवर भीमसिंह ने अकबर पर आक्रमण करके मुग़लों के कई थानों पर अधिकार कर लिया। मुग़लसेना पर राजपूतों का इतना आतंक छाया हुआ था कि सैनिक आगे बढ़ने के लिये प्रस्तुत न होते थे। निदान शाहज़ादा अकबर को असफल होकर पीछे हटना पड़ा। ❀

राजविलास में भीमसिंह के युद्धों तथा उसमें अकबर के भागने का अत्यंत सुन्दर चित्रण है। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं—

❀सरकार—'औरंगजेब,' भाग ३, पृ० ४००-४०१।

ओझा—उदयपुरराज्य का इतिहास, पृ० ५६३।

"भई भूमि भयकंप, प्रचलि पर धर पुर पत्तन।
होत कोट संलोट, गिरत गढ़ दुर्ग गाढ़ घन ॥
दिशि दिश उट्ठि दहक्क भुक्क भय गुरु भर भक्खर।
सर सरिता इह सुक्कि रुक्कि दर राह धरद्धर ॥
थरहरिय थान थानह सुथिर, विथुरि प्रजा डुल्लत अथिर।
प्रजरंत नर षरहर सुपरि, जहँ तहं मनिय जोर डर ॥९॥

[रा० वि०; १५]

यही नहीं, भीमसिह ने मुसलमानों से मंदिरों के तोड़ने का बदला भी लिया। उसने एक बड़े सैन्य के साथ गुजरात पर आक्रमण किया। वहाँ उसने ईडर के दुर्ग का विध्वंस करके वहाँ वालों से चालीस हजार रुपये दण्ड में लिये। देवमंदिरों को गिराने के बदले में उसने एक बड़ी मस्जिद और अन्य तीन सौ छोटी मस्जिदों को धराशायी किया।❀

राजविलास में ईडर के दुर्ग पर अधिकार करने का अत्यंत लोमोत्कर्षक-चित्रण है। यथा—

सजि भीमसेन सेना विशेश। दहबट्ट करन गुज्जर सुदेश ॥
दल बिटि प्रथम ईडर दुरंग। भट बिकट जानि चंदन भुजंग ॥१२॥
गढ़ तोरि तोरि गट्टे कपाट। थरहरिय थान असुरान थाट ॥
नट्ठौ सु सैद हासा नवाब। गढ़ छंडि छंडि किन्ना सिताब ॥१३॥
खलतलिय प्रजा बहु परिय रोरि। डर मंनि जात बन गहन दौरि ॥
बनिता धपंत लहु नंषि बाल। भूषन पतंत घिरि मुत्तिमाल ॥१४॥
तजि न्हाण वस्त्र इक तनु लपेट। चित चौकि जात दीने चपेट ॥
व्याकुलिय इक अधगुंथि बेनि। भरि फाल जात ज्यों जात एनि ॥१५॥

[रा० वि० १५]

❀ओझा,—'उदयपुरराज्य का इतिहास', पृ० ५६७।

इस घटना का उल्लेख "राजप्रशस्तिमहाकाव्य" तथा "बाम्बेगजेटियर" मे भी है।[1]

इसप्रकार शाहज़ादा अकबर, वहाँ का प्रबंध न संभाल सका और उसको भागना पड़ा। राजविलास के अंतिम-विलास मे उसके भागने का स्पष्ट उल्लेख है। यथा—

× × × ×

"बहुरे निसंक जय करि बहुत, मिल्यौ म्लेच्छ तिन मारयौ।
महाराण सुभट सामंत सजि, बहु असुरान विडारय ॥१६॥
भगौ साहिजादा गयौ, गढ अजमेर अनिट्ठ।
रहे न आसुर और रन, नृपत दाव सब नट्ठ ॥१७॥
[रा० वि०, १८]

डा० ईश्वरीप्रसाद के इतिहास में इसके सम्बन्ध में यह उल्लेख मिलता है कि औरंगज़ेब ने अकबर की असफलता पर क्रोधित होकर उसके स्थान पर आज़म को भेजा।[2]

इसके पश्चात्, द्वितीय आक्रमण भी असफल हुआ और औरंगज़ेब ने संधि की बातचीत आरंभ की; किंतु इसीसमय महाराणा की आकस्मिक मृत्यु हो गई। 'राजविलास' तथा अन्य इतिहासों मे ऊपर की सब समानताओं के रहते हुए भी, बहुत-सी विभिन्नतायें भी हैं। ओझा ने "उदयपुरराज्य के इतिहास" मे लिखा है कि सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात्, महाराणा राजसिंह ने रत्नों का तुलादान किया था।[3] संपूर्ण भारत के इतिहास में रत्नों के तुलादान की यह प्रथम घटना

---

१ 'राजप्रशस्ति-महाकाव्य,' सर्ग २२, श्लोक २६-२९।
"बाम्बेगजेटियर" जि० १, भाग १ पृ० २८६।
२ डा० ईश्वरीप्रसाद, 'भारतवर्ष का इतिहास' [अंग्रेजी] पृ० ६२१।
३ ओझा, 'उदयपुरराज्य का इतिहास' पृ० ५३२।

थी। "राजप्रशस्तिमहाकाव्य" में इस तुलादान के संबंध में निम्नलिखित पंक्तियाँ उपलब्ध हैं—

"सिंहात्मज श्रीराजसिंह नृपतिः प्रीत्यैक लिंगाश्रितो।
रत्नैः पूर्णतुलां कृती व्यवरयत सच्चित्रकूटाधिपः ॥१८॥

[रा० प्र०; सर्ग ६]

पुनः राज्याभिषेकोत्सव के उपलक्ष्य में उन्होंने रजत-तुलादान भी किया। किंतु इन दोनों तुलादानों के संबंध में राजविलास में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात्, सब से पहला कार्य जो राणा ने आरंभ किया, वह था, चित्तौड़-दुर्ग का पुनर्निर्माण। शाहजहाँ ने जब दुर्ग के निर्माण के संबंध में सुना तो क्रोधित होकर उसने राणा पर आक्रमण कर दिया। परिस्थितियों पर विचार करके राणा ने युद्ध करना उचित न समझा; अतः उन्होंने क्षमायाचना की।* फिर भी औरंगज़ेब द्वारा भेजे हुए सालुल्लाखां नामक सेनापति ने दुर्ग के नवीन अंशों को गिरा दिया।† अंत में संधि होगई और युवराज सुल्तानसिंह औरंगज़ेब के दरबार में रहने के लिये भेज दिया गया। राजविलास में इन घटनाओं के सम्बंध में कोई उल्लेख नहीं। सम्भवतः अपने चरित्र-नायक के आदर्श के विरुद्ध समझकर ही मानने इन घटनाओं का निर्देश करना उचित न समझा हो।

इसीप्रकार जब औरंगज़ेब सं० १७१५ में शासक हुआ तो उसने महाराणा के नाम फ़रमान भेजकर, उनके पद में वृद्धि

---

*ओझा—"उदयपुरराज्य का इतिहास" पृ० ५३१।

†इलियट—"शाहजहाँनामा"; जि० ७ पृ० १०३।

की थी और साथ ही पाँच लाख रुपये. तथा हाथी भी दिये।* किन्तु इसका भी कोई उल्लेख "राजविलास" में नहीं मिलता।

मानसिंह की बहन के साथ महाराणा राजसिंह के विवाह की कथा प्रायः प्रत्येक प्रामाणिक इतिहास में मिलती है; किन्तु उसका नाम सर्वत्र चारुमती ही मिलता है। राजविलास मे चारुमती नाम न देकर रूपकुमारी और प्रभावती नाम दिये गये है।

इतिहास में प्रसिद्ध है कि चारुमती से विवाह करने के लिये औरंगज़ेब जब अपनी सेना के साथ रूपनगर (किशनगढ़) आ रहा था, उस समय चूड़ावत सरदार ने उसे तीन दिन तक रोक रखा था और अंत मे वह मारा गया। सरदार के मेवाड़ से प्रस्थान करते समय उसकी नवपरिणीतापत्नी ने पति को चिंतित देखकर आत्मघात कर लिया था। राजविलास मे इस घटना का कोई उल्लेख नहीं। ऐसी घटना को छोड़ देने से कवि की प्रबन्ध-पटुता में त्रुटि परिलक्षित होती है।

इसी विवाह के कारण राणा को औरंगज़ेब के क्रोध का भाजन भी बनना पड़ा और उसपर आक्रमण हुआ, फिर संधि हुई और कुँवर जयसिह को बादशाह के दरबार में भेज दिया गया। बादशाह ने खिलअत और तलवार आदि की भेंट देकर कुँवर को लौटा दिया।† इसका भी उल्लेख राजविलास में नहीं है।

अपने शासन-काल मे औरंगज़ेब ने अनेक हिन्दू-देवालयों को धराशायी किया। इन्हीं में एक श्रीनाथदेव का भी मन्दिर

*ओझा—उदयपुरराज्य का इतिहास; पृ० ५२८

† राजप्रशस्तिमहाकाव्य,' सर्ग २२, श्लोक ५—९। ओझा, "उदयपुरराज्य का इतिहास," पृ० ५४६।

था। श्रीनाथ की मूर्ति को जब कहीं भी शरण न मिली तो अन्त मे महाराणा राजसिंह जी ने ही अपने राज्य में मूर्ति स्थापन के लिये स्थान दिया।१ इस प्रसिद्ध घटना का भी कोई उल्लेख राजविलास में नहीं।

ओझा जी ने अपने "उदयपुरराज्य के इतिहास" में 'जज़िया' नामक कर के विरोध मे राणा द्वारा लिखित विस्तृत पत्र उद्धृत किया है। उस पत्र के एक-एक शब्द उच्च-सिद्धान्तों और ओजस्वी विचारो से ओतप्रोत हैं। राजविलास में यद्यपि अन्य पत्रों का उल्लेख हुआ है किन्तु इस पत्र के विषय में एक शब्द भी नही है। इस पत्र का उल्लेख करने से राणा के चरित्र-चित्रण मे सहायता ही अधिक मिलती, किन्तु न जाने क्यों मान ने इसका कोई निर्देश न किया।

औरंगज़ेब के बड़े आक्रमण के समय राणा ने खुले मैदान में लड़ने की अपेक्षा पर्वतीय-उपत्यकाओं में ही युद्ध करना अधिक उचित समझा। पहाड़ो में चले जानेपर उदयपुर अरक्षित ही पड़ा रह गया—केवल जगदीशमन्दिर की रक्षा के लिये एक छोटी सी राजपूत सेना रह गई थी। जब मन्दिर को तोड़ने के लिये मुग़ल लोग आगे बढ़े तो वहाँ के बीस राजपूतों ने सैकड़ों मुसलमानो को धराशायी करके अंत में स्वयं वीरगति प्राप्ति की। इसके पश्चात् ही वहाँ का मन्दिर तोड़ा गया और मूर्तियों को विध्वंस किया गया।३ तदनन्तर वहाँ के २३६ अन्य मन्दिर तोड़े गये।४ एम० सी० सरकार ने तो

---

१ ओझा—'उदयपुरराज्य का इतिहास' पृ० ५४७।

२ वही, पृ० ५५४।

३ इलियट—'नासिरेआलमगीरी, जि० ७, पृ० १८७-८८।

४ ओझा—'उदयपुरराज्य का इतिहास' पृ० ५६०-६१।

अपने इतिहास में टूटे हुए मन्दिरो की संख्या ३०२ दी है। राजविलास मे राणा के उदयपुर छोड़ने का वृत्तांत तो मिलता है, किन्तु मन्दिर-मूर्तियो के तोड़ने की कथा नही मिलती। संभवतः राणा के लिये अपमानजनक होने के कारण, इन घटनाओ का उल्लेख, कवि ने न किया हो।

इसका बदला लेने के लिए भीमसिह ने भी गुजरात पर आक्रमण किया था। इसका उल्लेख "राजप्रशस्ति-महाकाव्य" तथा बाम्बेगजेटिर मे मिलता है[1]। राजविलास में गुजरात पर आक्रमण का उल्लेख तो मिलता है, किन्तु मस्जिद तोड़ने का उल्लेख नही मिलता।

राजविलास में राणा की मृत्यु के सम्बन्ध मे भी कोई उल्लेख नही मिलता। ग्रन्थ की समाप्ति से यह अवश्य ज्ञात होता है कि राणा की मृत्यु के ही कारण ऐसा हुआ है। "राजप्रशस्ति" के अनुसार राणा की मृत्यु विष के कारण हुई थी।[2]

आलोचना

मान दरबारी कवि थे और उनकी कविता मे रीतिकालीन दरबारी कवियों की सारी विशेपताये विद्यमान हैं। महाराणा राजसिह का नाम राजपूताने के इतिहास मे सदैव अमर रहेगा किन्तु विरुदावली की झोक में उन्हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश सब कुछ बना देना तथा "पुष्कर गंग प्रयाग" सभी को राणा की कृपा पर अश्रित बता देना अतिशयोक्ति ही कहा जायगा। "राजविलास" के पंचम विलास में ऐसे वर्णनों की भरमार

---

१ 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य,' सर्ग १२, श्लोक २६,२९ तथा 'बाम्बे-गजेटियर' जि० १ भाग १ पृ० २८६।

२ 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य,' सर्ग २३, श्लोक १-३।

है। वर्णन की अस्वाभाविकता से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ये कवि के हार्दिक-उद्गार नहीं, केवल परंपरा का पालन करने तथा जीविकोपार्जन के लिये ही लिखे गये है । उदाहरण-स्वरूप कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती है—

"पुष्कर गंग प्रयाग तिच्छ अभिराम त्रिवेनिय।
जगन्नाथ जाज्जिपादेवि सुख संपति देनिय ॥
काशी वर केदार द्वारिकानाथ सु देखिय।
गोदावरि गुनगेह बैजनाथह सु विशेषिय ॥
इकलिंग ईश अवलोकियां दुष दोह गरुरहिं टरैं।
राजेश राण निरखत नयन मान मनोवञ्छित फरैं ॥२१॥
तुही रामरूपं रवीवंश राजा, बसै जास तिहुँ लोक मैं सुयशवाजा ॥२३॥

[रा० वि०, ५]

डा० ओझा ने उदयपुर के इतिहास में महाराणा राजसिंह का चरित्र-चित्रण करते हुए लिखा है कि राणा बड़े क्रोधी स्वभाव के थे और कभी-कभी बिना कुछ सोच विचार किये ही महत्व-पूर्ण-कार्यों का आरम्भ कर देते थे। इस उत्कलता से उन्हें हानि भी होती थी किन्तु इन दुर्गुणों का निर्देश ग्रन्थ भर में कही भी स्पष्टरूप में नहीं मिलता है और न परोक्षरूप मे ही।

सूची-परिगणन की भी प्रथा का अवलम्बन करना रीतिकालीन कवियो की एक विशेषता है। यद्यपि सूदन की कविता मे इस प्रथा के पालन की पराकाष्ठा है, किन्तु मान भी उनसे अधिक पीछे नही। राजविलास में कहीं घोड़ों की विभिन्न जातियों की सूची मिलती है तो कही लूटी हुई सामग्रियों की। नीचे दो सूचियाँ उद्धृत की जाती हैं—

"एराक आरबी अरब ऐन। सोभन्त श्रबन सुन्दर सुनैन ॥
कास्मीर देश कांबोज कच्छि। पय पंथ पौन पथ रूप लच्छि ॥८॥

बंगाल जाति के बाजिराज । काबिल सु केक हय भू रकाज ॥
खंधार उतन केहि खुरासान । वपु ऊंच तेज वर विविध बान ॥९॥
हय हीस करत के जातिहंस । कबिले सुकि हाड़े भोर बंस ॥
किरडीये खुरहडे केवु रत्त । पीलड़े केकली लेप वित्त ॥१०॥

[रा० वि०; ६]

× × × ×

"तहाँ श्रीफल पुंगिय लौंग तमारह हिंगुल केसरि जायफलं ।
घनसार मृगमद लीलि अफीम अंबार करंत सु कारफल ॥३४॥

[रा० वि० ६]

राजविलास में यत्र-तत्र तुकभंग और छन्दोभंग भी मिलते हैं जिससे रचना की गम्भीरता जाती रहती है। उदाहरण स्वरूप दो पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

"हसंत सु आनन अबुंज अप्प ।
सदा सुप्रसाद विषाद विलेप ॥१७३॥

[रा० वि०, २]

तुही चारु मुखं मनो पूर्ण चन्द । श्रवै अमृत बैन लहरी समुद ॥

उक्त छन्द की प्रथम पंक्ति में "मुख" के स्थान पर "मुक्ख" पढ़ने पर मात्रा ठीक बैठती है। संभव है, यह छापे की त्रुटि हो किन्तु ऐसी त्रुटियाँ अन्य कई स्थलों पर मिलती हैं।

कहीं-कहीं शब्द-नाद के कृत्रिम प्रयोगों तथा अलंकारों के बलात् दिग्दर्शन से भी रचना में अस्वाभाविकता आ जाती है। शब्दनाद का प्रयोग भी रीतिकाल की एक विशेषता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे प्रयोगों से पाठक की अरुचि ही अधिक बढ़ती है। यथा—

ठनकि गज घंटा सु ठननन, भनकि भेरि नफेरि भननन ।
घनकि षग्ग उनभ्भ वननन, झनकि ज्यों झल्लरी झननन ॥१०६॥
झाट झरमहि बजिषग झट, घमतु घायल घाव घण घट ।
गिद्ध पीवत श्रोन घट घट, जिद ढूंढत फिरत शिर जट ॥१११॥

[रा० वि०; १]

अंतिम दो पंक्तियों मे "झ" और "घ" का अनुप्रास मिलाने के लिये कितने अनावश्यक शब्दों को खींच-तान कर ले आया गया है ।

"राजविलास" का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कवि को शृंगार तथा शांत-रसात्मक-स्थलों पर वीर-रसात्मक स्थलों से अधिक सफलता मिली है । ऐसे वर्णनो मे अलंकारो की स्वाभाविक छटा भी बिना प्रयास के ही निखर उठती है । उदाहरण-स्वरूप नीचे दो पद्य उद्धृत किये जाते हैं—

"झमकति झंझरि नाद रुण झुण पाय पायल पहिरना ।
कमनीय, छुद्रावली किंकिनि अवर पय आभूषना ॥
कलधौत कूरम समय मनक्रम पाप पीड़ प्रहारनी ।
अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी ॥"

[रा० वि०; १]

"सुचि सुरभि सुकोमल सारी । कज्वरि मनु मांगनि कारी ।
सिर मोती मांग सुसाजै । राषरी कनक मय राजैं ॥"

[रा० वि०; ७]

इन पद्यों मे रचना-सौष्ठव के साथ ही साथ माधुर्य-गुण तथा अनुप्रास की स्वाभाविक छटा के भी दर्शन होते हैं । इस से सिद्ध होता है कि इनकी प्रतिभा वीररस के अनुकूल नही थी; केवल जीविकोपार्जन के लिये उन्हें इस भ्रांतदिशा का अवलंबन करना पड़ा था । यही कारण है कि अनेक अरुचि-कर तथा अस्वाभाविक-स्थलो से यह ग्रन्थ भरा पड़ा है । ऐसे

अरुचिकर पद्यों में से उदाहरणस्वरूप एक पद यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"कत्ती किलकिल्ला सक्ति सलिल्ला तोप त्रिसुल्ला जाजल्ला ।
दल मचि दहचल्ला लोह उझल्ला नहिं बिचि पल्ला घर भल्ला ॥
घूमत घामल्ला छक्क छल्ला तजि गृह तल्ला एकल्ला ।
तुटि तूरत वल्ला हरि गज ढल्ला कापर डुल्ला अकतुल्ला ॥

प्राय. ऐसे ही छन्दों से यह सम्पूर्ण विलास भरा पड़ा है। यह सब होते हुए भी, कुछ स्थल, प्रशंसनीय है। ऐसे स्थलो पर भावोत्कर्ष उत्कृष्ट-कोटि का रहता है तथा रस का भी सुन्दर परिपाक हो जाता है। यथा—

"षेती हम कुल षम्म, षम्म हम अपय पजानह ।
षग्ग करै बस षल्लक, नाम हम पग्ग निदानह ॥
षल दल षडंन षग्ग, षेत हच्छुत हम पग्गह ।
छिति रष्षन फुनि षग्ग, अहित भम्मो इन अग्गह ॥
पग धार तित्थ सत्री धरम, आवागमनहि अपहरन ।
सो पग्ग बंध हम सूर सब, धरय न साहिषजान धन ॥८०॥
[रा० वि०; ६]

औरंगज़ेब द्वारा धन का लोभ दिखाने पर जोधपुराधीश जसवन्तसिंह जी की यह क्षत्रियोचित उक्ति है।

कहीं-कहीं घटनाओं के यथातथ्य-वर्णन मे कवि की पर्यवेक्षण-शक्ति का भी परिचय मिलता है। विवाह में बारात के प्रमाण के समय पीलवानों का "धत्त-धत्त" कहना तथा हाथियो का शुण्ड ऊपर करना एक साधारण दृश्य है। कवि ने निम्न-लिखित पंक्तियों मे इसका सुन्दर चित्रण किया है—

"मदोनमत्त धत्त धत्त पीलवाँन षट्टयं ।
चरक्खि दार कुक्क ए गयन्द जोर गट्टयं ॥६७॥

सु बास दाँन गच्छ सूच्छ गुञ्जए मधूपयं ।
सुण्डाल माल के बिकाल उद्धतं अनूपयं ॥६८॥"
[रा० वि०, ३]

इसीप्रकार हाथी की सुन्दरता तथा सजावट का वर्णन करते हुए कवि ने सिदूर तथा तेल लगाने का उल्लेख किया है। साधारणतः हाथी की सजावट में सिदूर का ही वर्णन मिलता है, तेल का नही। किन्तु हाथी के मस्तक पर तेल पोतने की प्रथा है। इससे प्रतीत होता है कि कवि को निरीक्षण-शक्ति अत्यंत तीव्र थी। इस सम्बन्ध का पद नीचे दिया जाता है—

"शुभे शिर तेल सुरंग सिदूर । बहै बिरुदावलि बंक बिरूर ॥
[रा० वि०; १७; ११]

किन्तु एक स्थान पर कवि ने लिखा है—

"सोभत चौर सिंदूर शीश । रस रग चंग अति भरियरीस ॥
सो झाल घटा मनु मेघ श्याम । ठनकन्त घंट तिन कण्ठ ठाम ॥२॥
[रा० वि०; ६]

इसमें कवि ने एक व्यवहारिक भूल की है। हाथी के दोनों ओर घण्टे बाँधे जाते हैं; कण्ठ में नही।

हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों में जो व्यवहारिक अन्तर आधुनिक काल में है, औरंगजेब के समय में वह और भी अधिक मात्रा में था। कवि ने इस धार्मिक प्रतिक्रिया का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। इससे सम्बन्धित पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

"इक कहे पुब्ब पच्छिम सु एक । पग पगहिं पंथ भाषा प्रत्येक ॥
घरधरें इक बर छत्रि धर्म । कलिकरें इक घन मेच्छकर्म ॥

बाराह इक्क इक सुरहि बैर । इक हन्त हक्कि इक करतु गैर ॥
इइ भांति उभय नृप भो अमेज्ज । सल्ले सु साहि डर जामि सेज ॥"
[रा० वि० ६, ५४, ५५]

अष्टम विलास में राजसमुद्रतालाब तथा विष्णुमन्दिर का, पष्ट विलास मे राणा की दिग्विजय-यात्रा का, चतुर्थ विलास मे "ऋतुविलास" नामक बाग़ का तथा पन्द्रहवें विलास मे भीमसिह के युद्ध का अत्यंत सुन्दर चित्रण है। ईडरदुर्ग पर भीमसिह द्वारा आक्रमण किये जाने पर लोगो को क्या दशा होती है, इसका चित्रण कवि ने बहुत सुन्दर किया है।

कवि ने कई स्थानों पर पंचक, सप्तक आदि का प्रयोग भी किया है। इसप्रकार की रचना मे सब छन्दों की अंतिम पंक्तियाँ एक ही होती है जैसे सरस्वती-बन्दना में अंतिम पंक्ति "अद्भुत अनूप मराल आसनि जयति जय जगतारनी' इसीरूप मे इक्कीस छन्दो तक चली गई है। इसप्रकार की कविता पढ़ने में सुखकर प्रतीत होती है तथा उसमें सरसता भी अधिक आ जाती है।

कवि ने राजसिंह का चरित्र-चित्रण सुन्दर किया है। अकाल पड़ने पर 'राजसमुद्र' के बाँध का कार्य आरम्भ करना तथा प्रजा की सहायता करना, उनकी दीन-वत्सलता का परिचायक है।

भाषा

मान् कृत 'राजविलास' की भाषा ब्रज है, यद्यपि क्रियायों के रूप कही कही अव्यवस्थित है। यथा:—

एक दिन एक जोगिन्द अवलोकियौ।

× × × ×

पुष्प फल करिय रिषि राय तब पूजियौ। रा० वि० पृ० २२

× × × ×

पानि ग्रहन कीनौ नृपति। रा० वि पृ० २"

ऊपर की तीनो क्रियायें "अवलोकियौ", "पूजियौ", तथा 'कीनौ' ब्रजभाषा की एक वचन भूत कालिक क्रियाये हैं किन्तु 'राजविलास' की निम्नलिखित क्रियायों के रूप ब्रज के नहीं। यथाः—

अलावदी आलम चढ़ि आइय।

बरस एक रहि पुल बँधाइय।

बनिता देन असुर बहिकाइय।

मरदानै तब रारि मचाइय। रा० वि० पृ० ३७

ऊपर की क्रियायों का ब्रज में रूप होगा—

"आयौ" "बँधायौ" "बहकायो" तथा 'मचायौ"

राजस्थानी सकर्मक-क्रिया "मूकणो" [छोड़ना] का भी कवि ने स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। यथाः—

दुर्ग मुक्किनिय दूत कहौ पयसार मुकवइ।

राजविलास मे प्रयुक्त कारकों के रूप ब्रज के ही हैं किन्तु कहीं कहीं ऐसे रूप भी मिलते है जो 'बीसलदेवरासो' के "वानराँ", "ऊँटां" का स्मारण दिलाते हैं। यथाः—

श्री राजसिंह राना सबल,

महिपतियां शिर मुकट मनि। रा० वि० पृ० ७

धर्म देश मेवार धर,

सब देसां सिरताज। रा० वि० पृ० १८

राजविलास मे प्रयुक्त शब्दों के रूप ब्रजभाषा के ही हैं किन्तु बीच-बीच मे राजस्थानी के रूप भी आ गए हैं। यथा.—

"रुन झुन" के स्थान पर "रुण, झुण"।
"आपन" के स्थान पर "आपण"।

राजस्थानी में मराठी की भाँति ही अभी भी वैदिक 'ळ' का उच्चारण होता है। 'राजविलास' मे भी इसका प्रयोग मिलता है। यथा:—

बिधु सकल कल संजुक्त बदनी,
चिबुक गाळ सु चाहिए।

'राजविलास' में कवि ने तत्सम-शब्दों का प्रचुरमात्रा में प्रयोग किया है। यथा—

"वीणा पुस्तक कर प्रवर, बाहन विमल मराल"।

किन्तु स्थान-स्थान पर अपनी रचना को ओजस्वी बनाने के लिए कवि ने कृत्रिम-डिंगल का भी प्रयोग किया है। यथा—

को झड्डुल्ल हरवल्ल को सु कर बल्ल अठित्तह।
किं गज्ज ढल्ल मझ्झिल्ल भूप छत्तिल्ल छयल्लह।
दुज्जन को न दुहिल्लह कहा कोतिल्ल क सिल्लह।
कि सु किल्ल वनि निल्ल नेत किं पित्त सुल्लह।
साहुल्ल मल्ल एकल्ल से टपु भल्ल जे पल्ल जिन।
रावत्त मत्त महसिंघ सुप रहे न को आमुर सुरित।

राजविलास में अरबी-फारसी से उधार लिए हुए शब्दों की संख्या अत्यल्प है। कवि ने पाद पूर्त्यर्थ "सु" का प्रयोग अधिक किया है, यहाँ तक कि नाम के बीच में भी कहीं कहीं "सु" लगा दिया है। यथा—

माधव सु सिंह चोंडा मरद ।
कन्हा सगताउत सुकर आदि ।

मान की रचना में लोकोक्तियों का अधिक प्रयोग नहीं मिलता। केवल कहीं-कहीं कतिपय लोकोक्तियाँ मिल जाती है। यथा—

कोटिक किये कलाप। दूध फट्टा न होय दधि।
(र० वि० ६-६२)

अथवा—'सुररंत मुच्छ मयमत्त मनु के इनोव कधे वहव।

राजविलास

राणा श्रीराजसिंह की दिग्विजय यात्रा

कवित्त

चढे सेन चतुरंग, राण रवि सम राजेसर ।
मना महोदधि पूर, बारि चहु ओर सु बिस्तर ।
गय बर गुंजत गुहिर, अंग अभिनव एरावत ।
हय वर घन हींसन्त, धरनि खुरतार धसक्कत ।।
सल सलिय सेस दल भार सिर, कमठ पीठि उठि कल कलिय ।
हल हलिय असुर धर परि हलक, रबनि सहित रिपु रलतलिय ।।

छंद पद्धरिय

सम्वत प्रसिद्ध दह सत्तमास । बत्सर सु पंच दस जिट्ठ मास ।
सजि सेक राण श्री राज सीह । असुरेश धरा सज्जन अबीह ।
निर्घोष घुरिय नीसान नद्द । सहनाई भेरि जंगी सु सद्द ।
अति बदन बदन बट्टो अवाज । सब मिले भूप सजि अप्प साज ।
किय सेन अग्ग करि सैल काय । पिक्खन्त रूप पर दल पुलाय ।
गुंजंत मधुप मद झरत गच्छ । चरषी चलन्त तिन अग्ग पच्छ ।
सोभन्त चौर सिन्दूर शीश । रस रंग चग अति भरिय रीस ।
सो झाल घटा मनु मेघ श्याम । ठनकन्त घंट तिन कंठ ठाम ।
उनमत्त करत अगगग् अभ्राज । बहु वेग जान पावै न बाज ।
उल्लकन्त पुट्ठि उजल सढाल । बर बिबिध वर्ण नेजा बिसाल ।
बोलन्त चलत बन्दी बिरद्द । दीपन्त धवल रुचि शुचि ।वरद्द ।
गुरु गाढ गेंद गिरिवर गुमान । पढ़ि धत्त धत्त मुख पीलवान ।
एराक आरबी अश्व ऐन । सोभन्त श्रवन सुन्दर सुनैन ।
काश्मीर देश कांबोज कच्छि । पय पन्थ पौन पथ रूप लच्छि ।
बंगाल जात से बाजिराज । काबिल सु केक हय भूर काज ।

खंधार उतन केइ खुरासान। वपु ऊँच तेन बर बिबिध बान।
हय हीस करत के जाति हंस। कविले सुकि हाड़े भोर बंस।
किरडीए खुरहडे केसु रत्त। पीलडे केकली लेप वित्त।
चंचल सुवेग रहबाल चाल। थेइ थेइ तान नच्चन्त थाल।
गुन्थिय सुजान कर केस बाल। बनि कंध नक्र सोभा विसाल।
साकति सुबर्ण साजे समुत्र। लीने सु सत्थ हय एक लख।
रवि रथ तुरंग सम ते सरूप। भनि विपुल पुठि तिन चढ़े भूप।
पयदल सु सज्जि पोरष प्रधान। जंघालु जग जीतन जवाँन।
भट विकट भीम भारत भुजाल। स्वधर्म्मि सूर निज शत्रु साल।
निलवट सनूर रत्ते सु नैन। गय थाट घाट अप घट गिनैन।
धमकंति धरनि चल्लत धमक। धर हरत कोट निज सवर धक।
बंकी सु पाघ वर भृकुटि बंक। निर्भय निरोग नाहर निसंक।
शिर टोप सज्जि तनु त्रान संच। प्रगटे सु बंधि हथियार पंच।
कमनीय कुंत कर तेल पुठि। मारंत शद्द सुनि सबल मुट्ठि।
गरहर करत गुज्जत गैन। बोलंत बंदि बहु विरुद बैन।
मुररंत मुंछ गुरु भरिय मान। गिनि कोन कहै पायक सु गान।
बहु भूप थट्ट दल मध्य बीर। सुरपति समान शोभा सरीर।
श्री राजसिंह राणा सरूप। गजराज ढाल आसन अनूप।
शशि सु छत्र बाजत सार। चामर ढलंत उज्जल स चारु।
वन सजल सरिस दल घाघरट्ट। भाषंत विरुद बर बन्दि भट्ट।
कालंकि राय केदार कत्थ। अस कत्ति राय थप्पत समच्छ।
हिन्दू सु राय राखन सुहद्द। मुगलाँन राय मोरन मरद्द।
कविलान राय कट्टन सुकन्द। द्युतिवंत राय हिन्दू दिनंद।
अरि बिकट राय जाड़ा उपाड। बलवन्त राय वैरी विभाड।
अन पुट्टि राय पुट्ठिय पलाँन। भल हलत रूप मध्यान भान।
रायाधिराय राजेश रान। जगतेश नन्द जय जय सुजान।
बाजीनि चरन खुरतार बग्ग। मह अनड कट्टि कीर्गत मग्ग।

झलझलिय उदधि सलसलिय सेस। कलकलिय पिट्टि कच्छप असेस।
रजथान सञ्चल जलथान रेनु। धुन्धरिग भान रज चढ़ि गगेनु।
अति देश देश सु बढ़ी अवाज। नट्टे सु यवन करते निवाज।
हलहलिय असुर घर परि हलक्क। पलभलिय नैर पर पुर पलक्क।
थरहरैं दुर्ग मेवास थान। रचि सेन सबल राजेश रान।
सुलतान मान मन्नो ससङ्क। बलवंत हिन्दुपति बीर बंक।
आयौ सुलेन अवनी अभंग। आलम सु भयौ मुनि गात भंग।

कवित्त

ऊचलि गया अग्गरो दंद मच्यौ अति दिल्लिय।
हाजीपुर परि हक्क डहकि लाहौर सु डुल्लिय।
थरस लयौ रिनथम्भ असकि अजमेर सु धुज्जिय।
सुनौ भयौ सिराज भगग भै लगा सु भज्जिय।
अहमदावाद उज्जैनि जन थाल मूंग ज्यों थरहरिय।
राजेस राण सु पयान सुनि पिशुन नगर खरभर परिय।

छन्द मकुन्द डामर

चतुरंग चमूं सिंधुर चंचल वक बिरुद्दन दान बहैं।
अवधूत अजेत तुरंग उतगह रंगहि जे रिपु कट्टि रहैं।
अवगाढ़ सु आयुध युद्ध अजीत सु पायक सत्थ लिए प्रचुरं।
चित्रकोट धनी सजि गजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं।
अति बट्टि अवाज भगी दिसि उत्तर पंथ पुरंपुर शोरि परी।
अह कंत सु अंबक नूर अहं अह षंग महा षिति बज्जि पुरी।
उडि अम्बर रेनु बहूदल उम्मडि सोषि नदी दह मग्ग सर।
चित्रकोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय मालपुरं।
दल बिंटिअ माल पुरा सु चहौ दिसि उपम चंदन जान अही।

तहँ कीन मुकाम घुरंत सु अंबक सोच पर्यो सुलतान सही।
नर नाथ रहे तह सत्त अह। निसि सोवन मारस धीर धरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय माल पुरं।

धक धूनिय धास सु कोट धकाइय गोपर पौरि गिराइ दिए।
ढम ढेर करी इट अँखि ढुढारिय कंकर कंकर दूर किये।
पतिसाह सु दुज्झन नैर प्रजारिय अंबर पावक भार अरं।
चित्र कोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय माल पुरं।

तहाँ श्रीफर पुंगिय लौंग तमारह हिंगुल केसरि जायफलं।
घन सार मृगमद लीलि अफीमि अँवार जरन्त सु भारफलं।
उडि अग्गि दमग्ग सु दिल्लिय उप्पर जाय परै सु डरे असुरं।
चित्रकोट धनी चढ़ि राजसी राण यु मारि उजारिय मालपुरं।

धर पूरिय धोम धराधर धुंधरि धाम भरे धन धाम धपैं।
रबि बिम्बति है दिन गोप रह्यो लुटि लच्छि अनन्त सु कोन लपैं।
सिकलात पटम्बर सूफ सु अम्बर ईंधन ज्यों प्रजरैं अगरं।
चित्र कोट धनी चढ़ि राज सी राण यु मारि उजारिय मालपुरं।

अति रोसहिं कीन इलातर उप्पर कञ्चन रूप निधान कढ़े।
भरि ईभष जान सुखच्चर सूभर चित्तहिं मृत्य अनेक बढ़े।
जस वाद भयौ गिरि मेरु जितौ हरषे सुर आसुर नूर हरं।
चित्र कोट धनी चढ़ि राज सी राण युमारि उजारिय मालपुरं॥

निज जीति करी रिपु गाढ़ नसाइय आए देत निसान खरे।
पयसार सु कीन सिंगारि उदयपुर आइ अनेक उछाह करे॥
कबि मान दिए हय हत्थिय कंचन बुट्ठिय जान कि बारि धरं।
चित्र कोट धनी चढ़ि राजसी राणा यु मारि उजारिय मालपुरं॥

[षष्टमविलास से]

जोधपुर युद्ध वर्णन

दोहा

गज्जि झंड अजमेर गढ़ अप्प साहि ओरंग ।
सवा लाख हय सेन सों रह्यो सुरढ़ घन रंग ।। १ ।।
सत्थ तुरंग सत्तरि सहस सहिजादा सहि सैन ।
पठयो मुर धर देश पर बछि कमधज्जी लेन ।।२।।
सो सिताब आवत सुन्यौ सज्यौ रट्ठवर सत्थ ।
हय गय पयदल थव्वह सम सहस बतीस समत्थ ।।३।।
जोधपुरह तें यवन दल पंच कोस सु प्रमान ।
आइ परयो जानकि उदधि आडंबर असमान ।।४।।
अनुग मुक्कि तिन अक्खि इह सुनहु रट्ठवर सूर ।
करो कलह हम सत्थ कै होगा धन संपूर ।।५।।
लेहु निमिष विश्राम लटि आए हो तुम अज्ज ।
कल्हि सही हम तुम कलह कही बहुरि कमधज्ज ।।६।।
बित्यौ बासर बत्तही परी निसा तम पूर ।
छल करि के तब रिपु छलन सजे रट्ठवर सूर ।।७।।

कवित्त

अद्ध रयनि तम अधिक छलन रिपु इक्क कियो छल ।
संढ पंच सय शृंग जोइ युग यु ह लाल झल ।।
हंकिय सो वर हेट उभय . चर अरिदल अभिमुष ।
अप्र चढे दिशि अवर लिये बर कटक इक लष ।।
पेखिय चिराक प्रद्योत पथ (; ' समुष धाए असुर ।
उत तें वीर अनगैब के परे आइ अरि सेन पर ।।८।।

भुजंगी

परे धाइ अरि सेन पर रोम पूरं ।
सजे सेन सायुद्ध रट्ठोर सूरं ।।

किये कंठ लक्कालि कंकालि कूरं ।
झनंकी यु घग्गौ बजी झाक झूरं ॥६॥

मची मार मारं जनं मूख मूखे ।
मिले जानि गो मंडलं सीह भूखे ॥
सरं सोक बज्जी नभ ढंकि सारं ।
भटक्के घन घोर आराब भारं ॥१०॥

घटक्के धरा धुम्मरं पूरि धोमं ।
बढ़े बीर बीरार सल्लग्गि व्योमं ॥
फुरें योध हत्थं महा कूह फुट्टी ।
इतें आसुरी सेन पच्छी उलट्टी ॥११॥

धये धींग धींगं धरालं धमक्के ।
चहो कोद तें लोकपालं चमक्के ॥
जप इट्ठ जप्पं जुरे जोध जोधं ।
करो कंक बंके भरे भूरि क्रोधं ॥१२॥

मुरे सार सारं ननं मुष्ष मोरे ।
पटे टट्टर वान सन्नाह फोरे ॥
धरे शीश नच्चैं कमंधं प्रचंडं ।
मही भिन्न भिन्न ररे रुंड मुंडं ॥१३॥

लरे दोन के शीश पच्छैं लटक्कें ।
कहूं कंठ ज्यों हड्ड जुडे कटक्कें ॥
घने घाउ लग्गे किते बीर घूमें ॥
भुकंते धुकते किते फेरि झूमें ॥१४॥

हहक तहक किते हायहायं । परे घंगि चित्त झरे हत्थ पायं ॥
परे दीप मज्झे किलें ज्यों पतंगा । उछ्छ छेनि छंछे करे होम अगा ॥१५॥

दोहा

परि पुकार अजमेर पुर सुनि औरंग सुबिहान ।
कमधज जुरि जीते कलह सेन भगी सुलतान ॥२७॥

जाने हिंदू जोर वर न तजें टेक निदान ।
कलह किये नावे सुकर सोचे चित सुलतान ॥२८॥

करते तो हम पै करी राठोरनि सों रारि ।
इन अग्गें फुनि आसटें है पतिसाही हारि ॥२९॥

फिरि बसीठ फुरमा लिषि पठयो से पतिसाह ।
करन मेल कमधज्ज पें राखन रस दुहु राह ॥३०॥

कवित्त

बुलय बचन बसीठ मिट्ठ घन इट्ठ सुद्धमन ।
सुनहु रट्ठवर सूर बीर तुम युद्ध बियक्खन ॥
कीनो हम रण सग प्रबल तुम प्रान परक्खन ।
पर तुम बड़ रजपूत राह रखन अभग रन ॥
हम तुम सु प्रीति ज्यों आदि है त्यों राखहु रस रीति तुम ।
अखे सु साहि औरग अब भूलि न को रक्खो भरम ॥३१॥

भूलि न राखहु भरम नरम अति करग चित्त तिय ।
सजि चतुरंगिन सेन प्रबल हय गय पैदल प्रिय ॥
हमपै अचहु हरष निरषि नृप जसपति नन्दन ।
रीझि करो राजेन्द्र अप्पि सुरधर आनन्दन ॥
इनमें अलीक जो होइ कछु सुकृत तो हम फोक सब ।
कमधज्ज सतो सुलतान कहि अलिय टेक मंडो न अब ॥३२॥

दोहा

अलिय टेक मंडो न अब उप्पै यों यवनेश ।
रस राजस १ हु राखिये करि सब दूरि कलेश ॥३३॥

मन्नी सब कमधज्ज मिखि शांत लष्यो सुलतान ।
नृप सुत करि अग्गै नृपत सजि दल बल सधान ॥३४॥
आए चढ़ि अजमेर गढ़ पथ भेटे पतिसाह ।
नृप सुत पूग किन्नै नजरि असपति चित्त उमाह ॥३५॥

कवित्त

इक दह हय गय एक सज्ज सोवन सिंगारिय ।
मनि इक मुत्तय माल उभय चामर अधिकारिय ॥
इक करवाल अनूप एक जमदाढ़ सु अच्छिय ।
पातिसाह प्रति पेस लखइ गरु गरु लच्छिय ॥
कमधज्ज करी रस रग करि भयो मेल दुहु दोन भल ।
हरष्यो सु साहि औरंग हिय आण दाण बरतो अचल ॥३६॥

दोहा

कहि आलम कहधज्ज सुनुहु योगिनि पुर हम जाइ ।
नृप गुरु सुत करिहे नृपति बहु सनमान बढ़ाइ ॥३७॥
तिहि कारन हम सत्थ तुम चलो सकल चित चंग ।
प्रभु सब करिहे पद्धरी नृलि न जानहु भंग ॥३८॥
बहु बिधि बचन बिसास तैं चूक न चिंतय चित ।
ढिल्लि नेर दिल्लीस सों सब कमधज्ज सम्पत ॥३९॥
सेव करत नृप सुतन सों बासर बहुतक बित्त ।
पर न देत महराय पद असपति चित अपवित्त ॥४०॥

कवित्त

दिल्ली पति लखि ढिल्ल कथन कमधज्ज कहावहि ।
पातिशाह परवर दिगार कद गहर लगावहि ॥
हम आए प्रभु हुकुम देश हम हमकूं दिज्जै ।

थप्पि जोधपूर थान नृपति गुरु सुत नृप किज्जे ॥
सत पुरुष बैन डुल्लै न सहि ध्रुव सुराह उर धारि यहि ।
रस किये रसहि रस राखिये अरज इती अवधारियहि ॥४१॥

सुनि सुबोल सुलतान उलटि उलटी इह आखिय ।
रह हम तुम कहा रह्यो सो व तुमहि चित साखिय ॥
आगे हू तुम ईश वह्यो हमसो गुमान बहु ।
जुरिग उजेनी जंग सेन हय गय मिलिय सहु ॥
फुनि लुट्टि हुरम धवलापुरहि सस्लरीति सल्ले सदुप ।
सो राज रीति तुम सगही साचि कहो रहि क्यों न सुष ॥४२॥

रयण कनक अरु रूपधनी तुम जे संचिय धन ।
सो हम अप्पहु सच्च गिनिब हय गय खच्चर गन ॥
तो सुमेल हम तुमहि पुहबि तबही तुम पावहु ।
अब हम सों अरदास कहा इह वृथा कहावहु ॥
मन्नै सु कोन महाराय के पुत्त न जाने कब प्रगटि ।
मन मत्त भयो जनु पचमुष पातिशाह बचनहि पलटि ॥४३॥

दोहा

रिपु जन मन राखें न रस, गुन परि को न महंत ।
पन्नग का पय प्यावतें, समझि करे चित संत ॥४४॥

कवित्त

रिपु जन के रस कहा कहा तिन-बचन बिसासह ।
कहा पिशुन सुप्रतीत कहा अरि कोह कलासह ॥
महुरे का कहा मीठ कहा हिमशैल शीत जग ।
कहा स्व प्रगटित अगन कहा पय पोषित पन्नग ॥
पतिशाह सुबोल पलट्टि के रढ़ लग्गा सुख जान रुष ।
शुभ सीष तान को सीखवै लायक नर जो मिलय लष ॥४५॥

दोहा

सुनि एसी राठर सब, भये रोस भर भार ।
सब पतशाही सेन पर, तुट्टे ज्यों पहतार ॥४६॥

छंद मोती दाम

जगो कमधज्ज महा रनयोध । किये दृग रत्त भये भर क्रोध ।
बजी वर बीरन हक्क बहक्क । छुटे जनु इम्भ महामद छक्क ॥४७॥
धरातलि धावत उट्ठि धमक्क । चहूँ दिशि दानव देव चमक्क ॥
कढ़ी कर नागिन सी करवाल । जितं तित ढाहत है गज ढाल ॥४८॥
लसे मनु लोह कि अग्गि लपट्ट । झनकंत नद्द परी पग झट्ट ॥
पलं दल कीजत बंड बिहंड । जितं तित मीर परे बिन मुंड ॥४९॥
खड़क्कत हड्डु सजड्डु करारं । करे जनु कट्ठिय सैल कनार ॥
भभक्कत श्रोन सु कुम्भ भुसुंड । जित तित जोर मच्यो पल षंड॥५०॥
परे जनु पत्थर रूप पठान । हये जम दाढ़नि कट्ट जुवान ॥
भजे नर कायर भारथ भीर । गजें प्रति सद्दनि व्योम गुहीर ॥५१॥
किते बिन शीश नचन्त कमन्ध । लड़ब्बड़ मत्थ लटक्कत कन्ध ॥
किते घन घाइनि छक्क छुमन्त । जित तित दोरत पीसत दन्त ॥५२॥
उफ्फटिय आसुरि सेन अलेख । जित तित सत्थर ह्वै रहे सेस ॥
गिते कुन गरबर भक्खर ग्यान । बलोचिय लोदिय बिद्धिय बान ॥५३॥
ररब्बरि षब्बरि रुम्मिय रुंड । झफ्फोरिय भूरिय तत्तर झुंड ॥
रन घन रोलिय मत्त रुहिल्ल । जितं तित मच्चिय रत्त चिहल्ल ॥५४॥
पुरेसिय षग्ग किये पय काल । हबस्सिय होइ रहे यु बिहाल ॥
सुसेंधर मुच्छिय केसरि बानि । जित तित जाइ परे पय पानी ॥५५॥
इही बिधि आलम के मुंह अग्ग । जित तित भग्ग महा भर जग्ग ॥
मच्यो दरबार भग्यों महराय । भगो यवनेश सु अन्दर जाय ॥५६॥
षरब्भरि आसुर षान जिहान । जितं तित रक्खिय आवन जान ।
जरे दरबानन दुर्ग कपाट । घनं परि वैर रुके जलघाट ॥५७॥

रलं तजि लोग परीपुर रोरि । दुरे नर भग्गि दई द्रढ़ पौरि ॥
गृहं गृह कंचन रूब गडंत । भगे बहु भामिनि बाल रडंत ॥५८॥
गहै कुन कप्पर सार किरान । घरप्पर ठिप्पर ठिल्ल हि धान ॥
मची वन लम्बी कूइ कराल । चढ़ो दिग होइ रहो ढकचाल ॥५९॥
मुषं मुष जक्किय मारहि मार । हये नर मेछिय केउ हजार ॥
ढंढोरय ढिल्लियकिन्नसुढिल । कियेगढ़कोट उथल्ल पुथल्ल ॥६०॥
बिहंडय खंडिय श्रेणि सुदृट्ट । जितं तित कोजत गेह कुघट्ट ॥
लबक्कहि लुट्टहिं लुट्टक लच्छि । गए तिन नाहर न वन गच्छि ॥६१॥
बिहस्सिय योगिनि बीर बेताल । महेशसु गुंथहिं मच्छय माल ॥
झरप्फहि पंषिनि गिद्धिनि झुंड । उड़े नभ कक गहेपल तुंड ॥ ६२॥
जितं तित लंगय लुच्छित जेट । पशू पल चारिनि पूरय पेट ॥
बढ़यो रस बैरन सेन बिभत्स । सुरासुर मन्नत अद्भुत अच्छ ॥ ६३॥
अरे नन आसुर अट्टह आइ । लगी जनु मारुत ग्रीषम लाइ ॥
चकत्तह चूर चमू किय चून । फिरेहय हीसत सिंधूर मून ॥ ॥६४॥
मसक्कहि थक्कहि औरंग साहि । कलंमलि चित्त उठंत कराहि ॥
हहक्कहि तक्कहि मिड्डहि हत्थ । महल्लनि मज्झ डुलावहि मत्थ ॥६५॥
गए कितहू तजि मीर गंभीर । नहीं सुनवाबनि के मुंह नीर ॥
तुरक्क न कोइ रह्यो हम तीर । भिरे इन सत्थकरे हम भीर ॥ ६६॥
इही बिधि युग्गिनि नैरहि आइ । बली मकधज्जसुवग्ग बजाइ ॥
चले चतुरंग चमूनिय लेइ । दमामह दुट्ठनि के सिर देइ ॥६७॥

कवित्त

दिल्लि नयर करि ढिल्ल ढाहि आवास ढँढोरिय ।
दुट्ठ महल दलमलिय बग्घ से असुर बिरोलिय ॥
चूरि चकत्ता चमू चग हय गय चतुरंगह ।
लुट्टि अनंत सुलच्छि रजत अरु कनक सुरंगह ॥
भयभीत साहि औरंग भय जरि कपाट अन्दर दुरिय ।
कमधज्ज सकल रक्खन सुकुल कलक केलि इहि बिधि करिय ॥६८॥

दोहा

करियैंदिल्लियपुर कलह, रिन अभंग राठोर ।
उद्धसिय असुरान अति, अरयन को मुंह ओर ॥६९॥
पहर तीन युग्गिनिपुरहि, पारी धारि प्रजारि ।
कीन कुरूप कुदरसनी, नाइक बिन त्यों नारि ॥७०॥
करि अग्गे महराइ के, पुत्त प्रभाकर रूप ।
चले सज्जि चतुरंग चमू, अप्पन इला अनूप ॥७१॥
आड़े जे आए असुर, सकललिए सु सँहारि ।
मारवारि पत्ते सुमहि, प्रमुदित सब परिवार ॥७२॥

कवित्त

आए मुरधर इलाजीति योगिनिपुर जंगह ।
सूर रट्ठवर सेन सकल हय गय भर संगह ॥
घोष निसान घुरंत जोधपत्ते सु जोधपुर ।
जिन जिनकी जो अवनि थप्पितिन तिन सथान थिर ॥
आलम ओरंग महत अरि अति उद्धत आतुर अकल ।
भारत्थ युद्ध तिन सत्थ भिरि बसुमति लीनी अप्प बल ॥७३॥

[नवमविलास से]

भूषण

आज की हिन्दी-कविता, अपने पीछे, प्राचीन कविता का एक गौरव छोड़ आयी है। काव्य-साहित्य का नवीन पाठक उसकी ओर श्रद्धा के साथ देखता है। दिनानुदिन अस्तंगत प्राचीन कविता का साहित्य भी सुगम होता जा रहा है। परन्तु इस विषय में सब से अधिक कठिनाई यह है कि हमारे पुरातन कवियों के जीवन, जन्म-स्थान, जन्मकाल तथा काव्य-रचना के समय आदि का यथार्थ पता अभी तक नहीं चल सका है। हिन्दी के वीर-काव्य के सर्वाधिक सफल और जागरूक कवि भूषण के सम्बन्ध में भी यही कमी चली आयी है। किंवदंतियों, प्रामाणिक अन्वेषणों और विचार-पूर्ण आलोचना-प्रत्यालोचनाओं से इस विषय में जो कुछ सामग्री प्राप्त हो सकी है, साररूप में वह यहाँ दी जाती है।

भूषण का आत्म-परिचय

'शिवराज-भूषण' भूषण कवि का एक काव्यग्रन्थ है। उसके छन्द २५ से २७ तक में स्वयं कवि ने अपना जो आत्म-परिचय दिया है, वह इस प्रकार है—

"देसन देसन तें गुनी, आवत जाचन ताहि।
तिनमैं आयो एक कवि, भूषन कहियतु जाहि ॥२५॥
द्विज कनौज कुल कस्यपी, रतनाकर - सुत धीर।
बसत तिविक्रमपुर सदा, तरनि तनूजा तीर ॥२६॥
बीर बीरबर से जहाँ, उपजे कवि अरु भूप।
देव बिहारीस्वर जहाँ, बिस्वेस्वर - तद्रूप ॥२७।

अर्थात् "महाराज शिवाजी के यहाँ देश-देशान्तर मे भाँति-भाँति के कलाविद पुरस्कार-प्राप्ति की कामना से आते हैं। उन्हीं मे यह कवि (भूषण) भी है, इसे लोग भूषण कहते हैं। वह कान्यकुब्ज-ब्राह्मण है। कश्यप उसका गोत्र है। धैर्य्यशील श्री रत्नाकर जी का वह पुत्र है। यमुना के किनारे त्रिविक्रमपुर गाँव का वह वासी है। यह वही गाँव है, जहाँ बीरबल जैसे वीर राजा और कवि तथा श्री विश्वेश्वर महादेव के समान विहारीश्वर का मन्दिर है।

असली नाम

'भूषण' कवि का असली नाम नहीं है। यह तो उनकी उपाधि है:—यथा—

'कुल सुलक चितकूट पति, साहस सील समुद्र।
कवि 'भूषण' पदवी दई, हृदय राम सुत रुद्र॥'

अब प्रश्न यह उठता है कि उनका असली नाम क्या था? इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न लोगों के विभिन्न मत है। प्रत्येक का सारांश यहाँ दिया जाता है:—

१—श्री कुंवर महेन्द्रपाल सिह का कथन है कि तिकवाँपुर के एक भाट के कहने से उनको मालूम हुआ है कि उनका असली नाम पतिराम था; क्योंकि कहा जाता है कि मतिराम उनके भाई थे।*

२—श्रीनारायण प्रसाद जी "बेताब" का मत है कि शायद उनका जन्म-नाम कन्नौज था।†

३—पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित का मत है कि उनका असली नाम मनिराम था। पंडित बद्रीदत्त जी पांडेय ने अपने कुमायूँ के इतिहास में राजा उदोतचन्द्र के वर्णन में लिखा है—

---

*विशाल-भारत, अगस्त सन् १६३० †मिश्रबन्धु प्रलाप पृ० ६८,

"सितारागढ़-नरेश" साहू महराज के राजकवि मनिराम राणा के पास अलमोड़ा आये थे। उन्होने राजा की प्रशंसा में यह कवित्त बनाकर सुनाया था। राजा ने दस हज़ार रुपये तथा एक हाथी इनाम में दिया।" वह छन्द यह है—

पुराण पुरुष के परम दृग कोऊ अहैं,
·······कहत बेद बानी यों पढ़ गई।
ये दिवस पति वे निसापति जोतकर हैं,
काहू की बढ़ाई बढ़ाये ते न बढ़ गई।
सूरज के घर में करण महादानी भयो,
यहै सोचि समुझि चितै चिन्ता मढ़ि गई।
अब तोहि राज बैठत उदोतचन्द* चन्द के,
कर्ण की किरक करेजे सों कढ़ि गई।

श्री दीक्षित जी का अनुमान है कि ऊपर के पद के रिक्त स्थान मे "भूषण" जोड़ देने से यह पूरा हो जायेगा अतएव भूषण का असली नाम मनिराम था।

भूषण के असली नाम के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। ऊपर विद्वानों ने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है उनका आधार कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नही है।

कान्यकुब्जब्राह्मण

भूषण कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, यह एक प्रकार से निर्विवाद है। रस-चन्द्रिका के लेखक सुकवि विहारीलाल जो चरखारी-नरेश राजा विजयबहादुर बिक्रमाजीत तथा उनके पुत्र महाराज रत्नसिह के दरबारी कवि थे, अपना वंश-परिचय रस-चन्द्रिका में देते हुए लिखते हैं—

*कुमायूं का इतिहास पृ० ३०३।

भूषण चिन्तामणि तहाँ कवि भूषण मतिराम ।
नृप हमीर सनमान तें कीन्हे निज निज धाम ।।
हैं पन्ती मतिराम के सुकवि बिहारीलाल ।
जगन्नाथ नाती विदित सीतल सुत सुभ चाल ।।
कस्यप-बंस कनौजिया बिदित त्रिपाठी गोत ।
कवि राजन के वृन्द में कोविद सुमति उदोत ।

ऊपर के छन्द मे कवि को "कनौजिया" बतलाया गया है । श्री शिवसिह सेंगर तथा मौलाना गुलामअली 'आज़ाद' भी उन्हें कान्यकुब्ज ही मानते है ।

जन्मकाल

भूषण के जन्म-काल के निश्चय का विषय सर्वाधिक विवादग्रस्त है । इस विषय में यद्यपि छान-बीन यथेष्ट हुई, परन्तु विवाद-रहित निश्चय अभी तक नही हो सका है। सबसे अधिक कठिनाई का विषय यह है कि भूषण जी की किसी कृति में जन्म-संवत् के सम्बन्ध मे कहीं कुछ भी उपलब्ध नहीं हुआ है। हाँ, उनके शिवराज-भूषण ग्रन्थ के अंत मे एक दोहा अवश्य मिलता है—

संवत् तेरह तीस पर, सुचि बदि तेरसि मान ।
भूषण शिव भूषण कियो, पढियो सकल सुजान ।

इस दोहे में पाठ-भेद भी बहुत है। मिश्रबन्धु इस दोहे को इस प्रकार मानते हैः—

शुभ सत्रह सै तीस पर, बुध सुदि तेरसि मान,
भूषण शिवभूषण कियौ, पढियो सुनो सु ग्यान ।❀

इस दोहे से पता चलता है कि भूषण जी ने इस ग्रन्थ को संवत् १७३० या १७३७ (पाठान्तर के हिसाब से) में समाप्त

❀काशिराज पुस्तकालय की हस्त-लिखित-प्रति, छन्द ३८० ।

किया। कदाचित् इसी तिथि को आधार मानकर हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ समालोचकों ने उनके जन्म-संवत् का अनुमान किया है। प्रसिद्ध आलोचक पंडित रामचन्द्र शुक्ल उनका जन्म संवत् १६७०† और मिश्रबन्धु संवत् १६७१ मानते हैं और इन दोनो आलोचकों के निष्कर्ष के अनुसार 'शिवराज भूषण' की समाप्ति के समय भूषण जी की अवस्था ६० और ५६ वर्ष की ठहरती है। जान पड़ता है कि इन महानुभावों ने इस निश्चय पर पहुँचते समय इस बात का भी ध्यान रखा है कि भूषण जी शिवाजी के दरबारीकवि तथा उनके समवयस्क थे। कारण, महाराज शिवा जी का जन्म सं० १६८४ (१० अप्रैल सन् १६२७) और निधन संवत् १७३७ (४ अप्रैल सन् १६८०) माना जाता है।※ भूषण शिवाजी के समकालीन थे, शताब्दियों से लोग यही मानते आ रहे हैं। इधर सन्त तुकाराम का महाराज शिवा जी के नाम लिखा हुआ। एक पत्र मिला है, जिसमे उन्होंने उनके दरबारी कवियो को नमस्कार लिखते हुए भूषण जी का भी उल्लेख किया है :—यथा—

"पेशवे सुरनिस चिटणीस डबीर,
राजाला सुमंत सेनापति।
भूषण पंडितराय विद्या - धन,
वैद्यराजा नमन माझे आसो।※

उधर श्री शिवसिंह सेंगर भूषणजी को छत्रपतिशिवाजी तथा महाराज छत्रसाल का समकालीन मानते हुए भी उनका

†हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २६७।

※डा० ईश्वरीप्रसाद:— "ए शार्ट हिस्ट्री आव मुस्लिम रूल इन इण्डिया" पृ० ५८५ तथा ६००।

※नवनीत (मराठी) पृ० ८८ अभंग १६६।

जन्म संवत् १७३८ ही मानते हैं। पं० भगीरथ प्रसाद जी दीक्षित का मत है कि सेंगरजी की निवास-भूमि काँथा तिकवॉपुर (त्रिविक्रमपुर) से १५-२० मील के ही अन्तर पर है। इसके अतिरिक्त भूषण तथा उनके वंशजो के सम्बन्ध में इतिहास-ग्रन्थो मे लिखे परिचयो मे अशुद्धियाँ देखकर उन्हें जब सहन न हुआ, तब भ्रम-निवारण के भाव को लेकर ही उन्होने 'शिवसिह-सरोज' की रचना की।* इसलिए भूषण जी के जन्मकाल के सम्बन्ध मे सेंगरजी का मत अन्य विद्वानों की अपेक्षा अधिक शुद्ध है।† परन्तु सेंगरजी के मतानुसार भूषण जी का जन्मकाल का संवत् १७३८ मान लेने पर वे महाराज शिवाजी के निधन के एक वर्ष पश्चात् जन्म लेते और साहू महाराज के दरबारी कवि ठहरते हैं। दीक्षित जी भी भूषण को शिवाजी का दरबारी नहीं मानते। वे भी उनको साहू महाराज का ही आश्रित मानते हैं।

दीक्षित जी के अनुसार भूषण के जितने भी आश्रयदाता है, वे सभी शिवाजी के जीवन के बाद ही इतिहास के रंगमंच पर आते है । इन आश्रयदाताओ की सूची इस प्रकार है :—

१—चित्रकूट-पति हृदयराम सुलंकी सं० १७५० वि० के लगभग।

२—कुमायूँ-नरेश उदोतचन्द्र सं० १७३१ वि० से १७५५ वि० तक।

३—श्रीनगर-नरेश फतहशाह सं० १७३३ से १७४१ वि० तक।

---

*शिवसिंह सरोज भू० पृ० १

†भूषण विमर्श—पृ० ८

४—रीवा नरेश अवधूतसिंह सं० १७७५ से १८१२ वि० तक।

५—जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह १७५६ से १८०० वि० तक।

६—सितारा-नरेश छत्रपति साहू १७६५ से १८०५ वि० तक।

७—दिल्ली-नरेश जहाँदारशाह सं० १७६६ वि०।

८—बूंदी-नरेश रावराजा बुधसिंह सं० १७६४ से १७६८ वि० तक।

९—मैंडू-नरेश अनिरुद्ध सिंह पौरच सं० १७७० वि० के लगभग।

१०—असोथर-नरेश भगवन्त राय खीची सं० १७७० से १७६२ वि० तक।

११—बाजीराव पेशवा सं० १७७७ से १७६७ वि० तक।

१२—चिमना जी (चिन्तामणि) सं० १७८० के लगभग।

१३—चित्रकूट-पति बसन्त राय सुलंकी सं० १७८० वि० के लगभग।

१४—पन्ना-नरेश सं० १७२८ से १७६१ वि० तक।

भूषण के जन्मकाल के सम्बन्ध में निश्चितरूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। जैसा कि ऊपर कहा गया है, भूषण के सम्बन्ध मे यही सदा से प्रसिद्ध है कि वे शिवाजी के समकालीन हैं। ऊपर उनके आश्रयदाताओं के जो संवत् दिये गये हैं, वस्तुतः उनकी जाँच तथा छान-बीन की आवश्यकता है।

जन्मभूमि

साधारण रूप से यही प्रसिद्ध है कि भूषण जी का निवासस्थान तिकवाँपुर है। यह स्थान कानपुर जिले में हमीरपुररोड पर स्थित घाटमपुर तहसील में, मौजा अकबरपुर-बीरबल से दो मील दूर है। भूषण ने इस सम्बन्ध में लिखा है "बसत

त्रिविक्रमपुर सदा।" यही त्रिविक्रमपुर कहा जाता है कि तिकवाँपुर है। किन्तु दीक्षित जी के अनुसार भूषण त्रिविक्रमपुर आकर बस गये थे। असल में वे वनपुर के निवासी थे। मतिराम ने अपने ग्रन्थ छन्दसारपिंगल (वृत्त-कौमुदी) में अपने निवास-स्थान का परिचय देते हुए लिखा है :

'तिरपाठी वनपुर बसैं, वत्स गोत्र सुनि गेह।
बिबुध चक्रमणि पुत्र तहं, गिरधर गिरधर देह ॥❋

अब प्रश्न यह उठता है कि वृत्त- कौमुदी की रचना सुकवि मतिराम ने किस समय की? वृत्त कौमुदी के निर्माण काल के सम्बन्ध मे निम्नलिखित दोहा उपलब्ध हैं :—

संवत सत्रह सौ बरस, अट्ठावन शुभ साल।
कार्तिक सुक्ल त्रयोदशी, करि विचार तिहि काल ॥

ऊपर के दोहे से स्पष्ट है कि कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी सं० १७५८ में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। इन सुकवि मतिराम के पंती कवि बिहारी लाल हुए। उन्होंने विक्रम-सतसई की रस-चन्द्रिका नामक टीका मे लिखा है।

बसत त्रिविक्रमपुर नगर, कालिंदी के तीर।
बिरच्यौ बीर हमीर जनु मध्यदेश को हीर।
भूषण चिन्तामनि तहाँ, कबि भूषण मतिराम,
नृप हमीर सम्मान ते, कीन्हो निज निज धाम।

इस टीका का रचनाकाल सं० १८७५ है। इन उद्धरणों से यह प्रमाणित हो जाता है कि वृत्त-कौमुदी की रचना के समय भूषण वनपुर में रहते थे किन्तु शिवराज-भूषण की रचना उन्होने त्रिविक्रमपुर में की थी।

❋भूषण-बिमर्श पृ० १७।

रचनाएँ

भूषण जी ने शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल-दशक नामक ग्रन्थ तथा कुछ फुटकर छन्द लिखे हैं। इनमें 'शिवराज-भूषण' एक स्वतंत्र ग्रन्थ है। यह शिवाजी की प्रशंसा में लिखित अलंकार-ग्रन्थ है। इसमे दोहा छन्द मे अलंकारो का लक्षण तथा सवैया और कवित्त-छन्दो मे उनके उदाहरण देकर शिवा जी की कीर्ति का वर्णन किया गया है। इसमें शिवाजी के युद्ध-जीवन की सं० १७१३ से १७३० तक की राजनैतिक घटनाओं, दुग-विजयो, उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की धाक, उदारता और निर्भीकता का सजीव-चित्रांकण किया गया है।

'शिवा-बावनी' भूषण जी की कोई स्वन्तत्र रचना नहीं है। शिवाजी की प्रशस्ति मे उनके जो ५२ फुटकर छन्द है, उन्ही का संकलन शिवा-बावनी के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में किवदन्ति प्रसिद्ध है कि भूषण को रास्ते मे अकस्मात् शिवाजी मिल गये किन्तु भूषण उन्हे पहचान न सके। तो भी वे शिवाजी की प्रशंसा में लगातार छन्द सुनाते चले गये। उन्ही बावन छन्दो को "शिवा-बावनी" के नाम से प्रसिद्ध कर दिया गया है। कदाचित् इसका संकलन भूषण के पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति ने किया हो।

छत्रसाल-दशक महाराज छत्रसाल पर लिखे छन्दों का संकलन मात्र है। कहा जाता है कि भूषण जब कभी इन महा-राज के यहाँ आकर ठहरते थे, तब जो छन्द लिख जाते थे, उन्ही का संकलन इस छोटे से ग्रन्थ में किया गया है।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त भूषण के कुछ फुटकर छन्द भी मिलते है। इन छन्दो की संख्या ६५ के लगभग है। इनमें ३६ पद्य, शिवाजी से सम्बन्ध रखते हैं, १० शृंगाररस के हैं, और

अवशिष्ट अन्य राजाओं के सम्बन्ध मे हैं। जो छन्द शिवाजी के सम्बन्ध में हैं, वे शिवाबावनी से मिलते-जुलते हैं। कुछ ऐसे भी है, जो शिवाजी के जीवन के अंतिमकाल की घटनाओं तथा युद्ध-वर्णन पर आधारित है।

भाषा

भूषण रीति-काल के कवि हैं और रीति-कालीन-काव्य की भाषा मुख्यतया ब्रजभाषा थी। जो कवि ब्रजभूमि से थोड़ा-बहुत दूर हटकर रहते थे, उनकी भाषा मे यत्किंचित परिवर्तन होना अवश्यम्भावी था। प्रेम-रहस्य के अनुसन्धान में रत जायसी आदि सूफी कवियों ने अवधी को अपनाया था। गो० तुलसी-दास जी की भाषा मुख्यतया अवधी थी। राजपूताने में उस समय जो काव्य-भाषा प्रचलित थी, वह डिंगल कहलाती थी। मुसलमानी राज्य-शासन के साथ-साथ उस समय के दरबारी कविगण भी मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क मे आकर फारसी-भाषा के शब्दो का प्रयोग करने लगे थे। भूषण की भाषा में भी इसी कारण विदेशी शब्द बहुत मिलते हैं। अपनी कविता मे 'खलक' 'नकीब', 'जशन', 'दराज' तथा 'तसबीह' जैसे क्लिष्ट फारसी शब्दो का प्रयोग उन्होंने स्वच्छन्दता पूर्वक किया है।

परन्तु भूषण विदेशी शब्दो के ग्रहण करने मे उनके तत्सम प्रयोग के पक्षपाती न थे। जहाँ तक सम्भव हुआ, उन्होंने फारसी शब्दों को तद्भव रूपो मे ही ग्रहण करने की चेष्टा की है, और इसके लिए जहाँ उन्हे आवश्यकता पड़ी है, वहाँ उन्होंने उन शब्दों की खराद भी कर डाली है। यहाँ तक कि कहीं-कहीं तो उन शब्दों के मूल रूप को उन्होंने अपने साँचे में ढाल दिया है। जैसे 'बेहत' से 'बिहद', 'सरजाह' से 'सरजा'।

अन्य बोलियों से शब्दों को ग्रहण करने में भूषण ने पूर्ण स्वाधीनता से काम लिया है। फारसी-शब्दों के साथ-साथ

उससे सम्बन्ध रखनेवाले कही-कहीं खड़ीबोली के प्रयोग भी उन्होंने ज्यो के त्यो रख दिए हैं। जैसे 'देखत में खान रुस्तम जिन खाक किया'। इसके अतिरिक्त अवधी, बुन्देलखण्डी तथा वैसवाड़ी शब्दों का भी अत्यधिक प्रयोग किया है। यथा—

खड़ीबोली	—	'तेरे द्वार आइयतु है'।
बुन्देलखण्डी	—	'बैयर बभारन की'।
बैसवाड़ी	—	'काल्हि के जोगी'।

इसप्रकार भूषण जी की भाषा, स्वरूप में ब्रजभाषा होते हुए भी वास्तव मे खिचड़ी है। शब्दों के तोड़ने-मरोड़ने मे सच पूछिए तो उन्होंने बड़ी उच्छृङ्खलता प्रदर्शित की है। परन्तु उनकी भाषा मे जहाँ दोष है, वहाँ उसमें ओज़ भी बड़े सजग रूप में विद्यमान है। जान पड़ता है, भाषा को सॅवारने की ओर उनकी दृष्टि ही नहीं थी। कवि-कल्पना और भावों के प्रवाह में उन्होंने केवल इस बात का ध्यान रक्खा है कि उनकी कविता के पाठको के सामने वीरता, आतंक और युद्ध-कालीन विप्लव का एक चित्र आ जाय। और इस दृष्टि से वे अपने प्रयत्न में यथेष्ट सफल हुए हैं।

कविता

भूषण जी राष्ट्रीय-भावों के गायक थे। अपने कार्य-कालीन परम्परागत काव्य-पद्धतियों में मर्यादित रहते हुए भी भावत: वे सर्वथा मौलिक थे। अपने आश्रयदाताओं का कीर्तिगान यद्यपि उन्होंने भी किया है तथापि उनकी प्रशस्तियों में प्राण-रूप से जो भावना निहित थी, वह थी हिन्दू-राष्ट्र के संगठन की। अपनी कविता में सबसे पहले उन्होंने हिन्दू-नरेशों के सहयोग और आपस की फूट के विनाशकारी परिणाम की ओर ध्यान आकर्षित किया था। वे वीरता के पुजारी थे और अपने

आश्रयदाताओ की प्रशंसा वे इसी दृष्टिकोण से करते थे। उनकी प्रशंसा मे प्रमुखरूप से देश की दशा, देश-द्रोहियो का दमन और वीर-पूजन के ही भावों का प्राकृतिक और शक्तिशाली रूप मिलता है। अपने आश्रयदातानरेश की विजय को उनकी व्यक्तिगत विजय न मानकर, वे हिन्दू आदर्श की विजय मानते थे। हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-राष्ट्र को लेकर गौरव और अभिमान की भावना उनके भीतर काम करती थी और इस अर्थ मे भूषण जी का स्वर सच पूछिए तो उस काल के सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र का स्वर है।

भूषण जी की कविता के मुख्य विषय है—युद्ध-वर्णन और वीरो के कीर्ति गान। युद्ध-वर्णन में उन्होंने अपने नायक के अदम्य साहस, उनकी सेना के अनन्त-उत्साह, तथा मारकाट-पूर्ण अत्यन्त लोमहर्षक-दृश्यों का चित्र खींचा है। इन युद्धों के वर्णन में सर्वाधिक प्रशंसनीय अगर कोई बात है तो यह है कि उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओ में सत्य-प्रियता का आदर्श परिचय दिया है। जिन घटनाओ को उन्होने ग्रहण किया है, उन्हे काव्योचित रूप देते हुए भी विकृत नही होने दिया। यहाँ तक कि प्राण रूप में ही उनका अधिकाधिक रक्षण किया है। मराठा इतिहास से उनके वर्णन इतने मिलते जुलते है कि दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध सा प्रतीत होता है। यहाँ तक यदि उनकी वर्णित घटनाओं को क्रमबद्ध कर दिया जाय तो वह शिवाजी महाराज का एक क्रमबद्ध कार्य-परिचय सा झलकने लगेगा।

कीर्तिगान में भूषण ने अपने पूर्ववर्ती-कवियों की परिपाटी का भी अनुसरण किया। वे लोग अपने आश्रयदाताओ की दान-वीरता तथा उदारता का अतिरंजित-वर्णन करने मे अपनी कवि-कल्पना का उपयोग करते हुए सकुचाते न थे।

भूषण भी इस पद्धति से पृथक नहीं जा सके थे। किन्तु इस विषय में पात्रापात्र का ध्यान उन्होंने अवश्य रखा है। जहाँ तक सम्भव हो सका है, उन्होने दान-शीलता का वर्णन उसी आश्रयदाता का किया है जो वास्तव मे उसका उपयुक्त अधिकारी रहा है। महाराज शिवाजी की दान-शीलता तो इतिहास प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्री यदुनाथ सरकार तक ने इस विषय मे महाराज शिवाजी को मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। राज्याभिषेक के समय एक लाख ब्राह्मण,स्त्री-पुरुष तथा बालकों को उन्होंने चार महीने तक बराबर नाना प्रकार के मिष्टान्न खिलाये और लाखों रुपये दान मे दिये थे।❀ मुसलमान इतिहासकार श्री कैफी तक का कथन है कि तीर्थयात्री का वेष धारणकर जब महाराज शिवाजी आगरा से भागकर काशी आये थे, तब उन्होंने घाट पर के पंडो को ९ हीरे, ९ अशरफी तथा ९ हून दिये थे इसके अतिरिक्त उनका यह भी कथन है कि महाराज शम्भा जी को रायगढ़ पहुँचाने के लिए जो ब्राह्मण लोग उनके साथ आये थे, उन्होंने उनको भीएक लक्ष सोने की मोहरें नकद देकर दस-सहस्र हून वार्षिक देने का वचन दिया था। इसप्रकार शिवा जी जैसे दानवीर की प्रशंसा में यदि भूषण की कविता में कुछ अतिरंजन भी हो, तो इसकेलिए उनकी कवि-जन्य-पद-मर्य्यादा पर किसीप्रकार का आक्षेप नहीं किया जा सकता।

रसपरिपाक

इसको काव्य की आत्मा माना गया है। अतएव काव्य कला की दृष्टि से भूषण की कविता की ओर जब हम देखते हैं तो सब से पहले हमें देखना यह होगा कि उसमें इस परिपाक कैसा हुआ है।

❀शिवाजी एण्ड हिज़ टायम पृ० १७१, १७२, १७४ तथा २४२।

भूषण जी वीररस के कवि है और वीर चार प्रकार के माने गये है—युद्धवीर, त्यागवीर, दानवीर और धर्मवीर। भूषण ने महाराज शिवाजी तथा महाराज छत्रसाल मे ऊपर लिखित वीरता के तीन लक्षणों का सुन्दर निर्वाह किया है। परन्तु वीररस के काव्य में सच पूछिए तो सर्वाधिक महत्व युद्धवीरता को ही दिया जाता है। भूषण ने महाराज शिवा जी की युद्ध-वीरता के जो चित्र खीचे है, वे वास्तव में बहुत ही लोम-हर्षक और उत्तेजना-पूर्ण है। यथा—

> छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
> मुसकिल होत मुरचान हूँ की ओट मै।
> ताहि समय सिवराज हुकुम के हल्ला कियो,
> दावा बाँधि परा हल्ला बीर बर जोट मैं।
> भूषन भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौ कहौ,
> किम्मत यहाँ लगि है जागी भट ओट मैं।
> ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
> अरि मुख घाव दै दै कूदि परैं कोट मै।

वीररस - वर्णन मे कवियो ने प्राचीन-काल से ही ऊहात्मक-पद्धति का अनुसरण किया है। भूषण ने परम्परा को ही पकड़ा है परन्तु चमत्कारवादी कवियों की भाँति अति-रंजित पद्धति को प्रचुरता से नहीं ग्रहण किया। सेना के चलने से शेष की दुर्दशा, समुद्र का हिलना, धूल से सूर्य का ढक जाना परम्परा-युक्त ही है। देखिए—

> (१) भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
> नदी-नद मद गैबरन के रलत हैं।
> ऐल-फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
> गजन की ठेल-पेल सैल उसलत हैं।

तारा सो तरनि धूरि धारा मैं लगत,
जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं।

(२) टूटिगे पहार बिकरार भुव-मंडल के,
सेष के सहस फन कच्छुप कचकि गे।

(३) दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेष के।

इतना होने पर भी कही कहीं ऐसे वर्णन भी मिलते हैं जो परम्परा-युक्त होने पर भी अतिरंजित होने के कारण अव्य-वहारिक हैं:—

(१) 'आयो आयो' सुनत ही, सिव सरजा तुव नाँव।
बैरि-नारि दृग जलन सों, बूडि जात अरि गाँव॥

वीर-रस के सहायक रस भयानक और रौद्र माने गये है। भूषण की कविता में इन दोनों रसों का पूर्ण-परिपाक मिलता है। महाराज शिवाजो का आक्रमण जहाँ कहीं भी होता है, वहाँ तक वातावरण कितना भयाक्रान्त हो जाता है, भूषण के अनेक छन्दों में इस स्थिति का अत्यन्त सजीव वर्णन मिलता है।

वाह्यदृश्यचित्रण

वाह्यदृश्य के निरूपण में कवि लोग दो प्रकार की योजनायें उपस्थित करते हैं—एक स्फुटयोजना और दूसरी संश्लिष्ट योजना। कहना नही होगा कि स्फुटयोजना केवल विभाव का चित्रण चलता कर देने के लिए है। केशव आदि ने अधिकांश में स्फुट योजना से ही काम लिया है। हिन्दी के पिछले खेवे के कवियों ने दृश्य-निरूपण की अनेकरूपता पर अधिक ध्यान नही दिया। प्रकृति के नाना रूपों में उनकी वृत्ति केवल रम कर ही रह गई। उसके भीतर पैठकर उसके अंग प्रत्यंग का

माधुर्य प्रत्यक्ष करने में मग्न नहीं होने पाई। इसीलिए हिन्दी में संस्कृत के कवियों की भाँति वर्ण्य-विषय के सम्बन्ध में संश्लिष्ट-योजना बहुत कम मिलती है। भूषण इसके अपवाद नहीं थे। रायगढ़ का वर्णन करते हुए आप लिखते है:—

कहुँ बावरी सर कूप राजत बद्धमनि सोपान हैं।
जह हंस सारस चक्रवाक बिहार करत समान हैं।
कितहूँ बिसाल प्रवाल जालन जटित अंगन भूमि है।
जहँ ललित बागन द्रुम लतनि मिलि रहे झिलमिल झूमि है।
चंपा चमेली चारु चंदन चारिहू दिसि देखए।
लवली लवंग यलानि केरे लाख हो लग देखिए।
कहुं केतकी कदली करौंदा कुंद अरुक रवीर हैं।
कहुँ दाख दाडिम सेब कटहल तून अरुक जंभीर हैं।
कितहू कदम्ब कदम्ब कहुँ हिताल ताल तमाल हैं।
पीयूष तें मीठे फले कितहूँ रसाल रसाल हैं।

काव्याभ्यासियों को यह बतलाने की आवश्यकता नही कि इस वर्णन में केवल परम्परा की लीक भर पीटी गई है। ऊपर के चित्रण मे केवल योजना ही स्फुट नहीं है, वरन् दाख, दाड़िम, सेब आदि के पेड़ भी उत्तर से लाकर दक्षिण मे लगाये गये है।

भूषण का वर्णन सरासर संश्लिष्ट-योजना से शून्य भी नहीं है। इन्होंने केवल उसमे अपनी रुचि नही दिखलाई है। देखिए—

(१) मुकुतान की झालरिन मिलि मनि माल छज्जा छाजहीं।
सन्ध्या-समै मानहु नखत-गन लाल अंबर राजही।
जहँ तहाँ ऊरध उठे हीरा-किरन घन समुदाय हैं।
मानो गगन तबू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं।

(२) महत उतंग मनि-जोतिन के संग आनि,
कैधौं रंग चकहा गहत रवि रथ के।

इसप्रकार की योजना पुस्तक भर में नहीं है। भूषण का अभिप्रेत-रस वीर था। इसमें भी संश्लिष्ट-योजना हो सकती थी। वीररस की अनेकरूपता को परिपूर्ण करने के लिए इसमें भी संश्लिष्ट-योजना का सहारा लेना चाहिये था। परन्तु सब स्थानों पर स्फुट-योजना ही दिखलाई पड़ती है। हिन्दी में संश्लिष्ट-योजना की ओर कवियों ने कम रुचि दिखलाई है। यह योजना केवल प्रबन्ध-काव्य के भीतर ही नहीं, स्फुट पद्यों में भी दिखलाई जा सकती है। वीररस की जो परम्परा चली थी उसमें रासो की पद्धति ही पहले मुख्य थी। इन ग्रन्थों में ऐसी योजना बहुत कम मिलती है, यद्यपि ये ग्रन्थ महाकाव्यों एवं प्रबन्ध-काव्यों के रूप में ही लिखे गये हैं। आगे चलकर कविगण केवल स्फुट वीर-काव्य में ही लगे रहे, इससे उनकी योजना एकदम स्फुट हो गई। भूषण ने भी केवल परम्परा-युक्त-शैली का ही अनुकरण किया, उसमें नवीन-योजना कहीं नहीं की।

अलंकार

'शिवराज-भूषण', भूषण का रीति-ग्रन्थ माना जाता है। रीति-ग्रन्थ में काव्य के लक्षण, रस और अलंकारों का जो निरूपण किया जाता है, उसमें निरूपक अपनी रचना के प्रति जितना ही निर्लिप्त रहता है, उतना ही वह सफल होता है। काव्य का उद्गम है मनोवेग और मनोवेग अलंकार-निरूपण के लिए नहीं हुआ करता। वह आत्मीय-प्रेरणा का विषय है। अलंकार तो प्रकरण से आ जाते हैं। उनकी उपयोगिता गौणरूप में मानी जाती है। अतएव रीति-ग्रंथकार वही सफल हो

सकता है, जो उदाहरण देते समय इस विषय की प्राप्यसामग्री का पूर्ण उपयोग करता है। परन्तु जब रीति-ग्रन्थकार, काव्य निरूपण के उदाहरणों में ऐसे उत्तरदायित्व-पूर्ण-कार्य के निर्वाह में भी, अपनी रचना का मोह नहीं त्याग सकता, तब वह दलदल में फँस जाता है। तब उसको अलंकार का उदाहरण देने के लिए ही रचना करनी पड़ती है, और ऐसी दशा में उसकी रचना स्वाभाविकता के अभाव के कारण प्रायः शिथिल हो जाती है। सन्तोष की बात है कि भूषण ने अलंकार-निरूपण-मात्र के लिए छन्द रचना नहीं की। उनके छन्दों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये छन्द समय-समय पर लिखे गये हैं और अलंकार-ग्रन्थ-निर्माण के समय यथास्थान जोड़ दिये गये हैं। यह बात और स्पष्ट हो जाती है, जब हम देखते हैं कि भूषण ने सम्पूर्ण अलंकारों का निरूपण नहीं किया, कुछ अलंकार उन्होंने छोड़ भी दिये हैं।

इसके अतिरिक्त एक कारण और भी है और वह यह कि यदि भूषण ने अलंकार-निरूपण के लिए ही रचना की होती तो उदाहरणों में काल-क्रम में कोई बाधा नहीं पड़ती। अलंकार-क्रम के अनुसार घटनाओं का क्रम-भंग होना ही यह सिद्ध करता है कि ये रचनायें घटनाओं को आधार मानकर हुई हैं, न कि क्रम को आधार मानकर।

अलंकार-निरूपण करते हुए भूषण ने अलंकारों के रूप-लक्षण के भेदों का जहाँ उल्लेख किया है वहाँ कहीं तो वे उदाहरण दे भी नहीं सके। बात यह है कि भूषण ने तब तक जो छन्द लिखे होंगे उनमें तद्विषयक अलंकारों का अभाव रहा होगा।

अलंकारों का निरूपण भूषण ने कैसा किया है, इस विषय पर अब तो स्पष्ट शब्दों में यह कहना पड़ता है कि भूषण

कवि थे न कि अलंकार-शास्त्री। कवि होना एक बात है और काव्यशास्त्री होना और बात। भूषण की रचना में जिस व्यक्ति की आत्मा बोलती है, जान पड़ता है, वह वीरतापूर्ण मनोवेगों का कवि है। रीति-ग्रन्थ का निर्वाह तो वह एक परम्परा के निर्वाहार्थ ही कर रहा है। और कविता में अलंकार की उपयोगिता क्या है, भूषण ने इस विषय का अपनी कविता में कहीं स्पर्श नहीं किया। इसके बाद आगे चलकर जब हम उनके अलंकार-निरूपण की ओर देखते हैं तो विवश होकर हमें यही कहना पड़ता है कि उनके वर्णित लक्षणों में से अनेक अपूर्ण और अशुद्ध हैं। यथा—

विरोध

द्रव्य क्रिया गुन में जहाँ, उपजत काज विरोध।
ताको कहत विरोध हैं, भूषन सुकवि सुबोध॥

बिरोधाभास

जँह विरोध सो जानिये, साँच विरोध न होय।
तहाँ विरोधाभास कहि, बरनत हैं सब कोय॥

विषम

कहाँ बात यह कहँ वहै, यों जंह करत बखान।
तहाँ विषम भूषन कहत, भूषन सुकवि सुजान॥

यहाँ विचारणीय यह है कि द्रव्य क्रिया और गुण में जहाँ कार्य-विरोध हो और वहाँ विरोध अलंकार मान लिया जाय, तो फिर 'विषम-अलंकार' की स्थिति क्या होगी? इसके अतिरिक्त वह विरोध यदि बाह्य है और केवल ऊपर से देख पड़ता है, भीतर उसका कोई अस्तित्व नहीं है, तो वह विरोधाभास अलंकार का रूप धारण कर लेगा। यही कारण है कि कुछ अलंकार-शास्त्री विरोध को एक स्वतंत्र अलंकार के रूप में स्वीकार नहीं करते।

राष्ट्रीय-दृष्टिकोण

'राष्ट्रीय' शब्द आज हम जिस अर्थ में प्रयुक्त करते है, भूषण जी के समय मे उसका वह अर्थ लगाया ही नहीं जाता था। बात यह थी कि हमारे यहाँ उस समय सांस्कृतिक एकता की ही भावना प्रमुख थी, आज-कल की राजनीतिक एकता का स्वरूप उस समय खड़ा नहीं हुआ था। मौर्य-साम्राज्य के बाद एक-छत्र राज्य हमारे यहाँ किसी सम्राट् का स्थिर नहीं हो सका था। अरब के लोग जब इस देश मे आये और उन्होंने राज्याधिकार प्राप्त किया, तब भी सामाजिक व्यवहारों में उनका कोई राजनैतिक विरोध नहीं हुआ। हिन्दू-नरेश अपनी सेना में बराबर मुसलिम सैनिकों को सम्मिलित करते थे और मुसलमान बादशाह अपनी फौज मे हिन्दुओं को बराबर जगह देते थे। यहाँ तक कि उनके प्रान्तीय-अधिकारी तक हिन्दू रहा करते थे। अनेक हिन्दू-नरेशों ने अपने राज्य मे खुले हृदय से मुसलमानो का स्वागत करते हुए उनका पूर्ण आदर-सत्कार किया था। सुलेमान, मसऊदी, इब्नहौकल और आबूजैद ने गुजरात नरेश बल्हार की बड़ी प्रशंसा की है, क्योंकि उसने मुसलमानों के साथ बड़ा सौहार्द्र प्रदर्शित किया था। सुलेमान ने लिखा है कि हिन्दू-नरेशों मे ऐसा कोई नहीं है जो बल्हार की अपेक्षा अरबों को अधिक चाहता हो। उसकी प्रजा की भी वही नीति है। मसऊदी ने देखा कि उसके सहधर्मी अपने धर्म का खुले रूप मे प्रचार कर रहे है। गुजराज के एक नरेश से बातचीत करते हुए वह कहता है—आपके राज्य में इसलाम समाहृत और सुरक्षित है। चारो ओर अनेक मसजिदे है, जिनमे मुसलमान लोग अपनी नमाजें पढ़ते हैं। खम्बायत के हिन्दुओं ने जब मुसलमान व्यापारियों पर आक्रमण किया, तो सिद्धराज (१०९४-११४३) ने सारे मामले की जाँच की, आक्र-

मगाकारियों को दंड दिया और मुसलमानों को नई-नई मसजिदें बनाने के लिये रुपये दिये।*

महाराज शिवाजी भी मुसलमानों के सम्बन्ध में इसी प्रकार की उदारनीति के पोषक थे। वे मुसलिम धर्म को सदैव सम्मान की दृष्टि से देखते थे। मुसलमानों के लिए उनके हृदय में किसीप्रकार का द्वेष या घृणा का भाव कतई नहीं था। मुसलमान-इतिहासकारों ने इस विषय में खुले हृदय से उनकी प्रशंसा की है। श्री खफी खाँ ने लिखा है—उन्होंने एक नियम बना दिया था कि जब कभी उनके अनुयायी अधिकारीगण लूट-पाट करें, तब वे मसजिद के धर्मग्रन्थ और स्त्रियों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचायें। जब कभी उनको पवित्र कुरान की कोई प्रति मिली, उन्होंने उसे सम्मान पूर्वक रक्खा और अपने मुसलमान अनुयायियों को उसे दे दिया। जब कभी किसी मुसलमान की कोई स्त्री उनके आदमियों द्वारा क़ैद कर ली गई और उन्होंने उसकी रक्षा करने वाला कोई मित्र नहीं देखा, तो स्वतः उन्होंने उस पर दृष्टि रक्खी।†

यहाँ पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब महाराज शिवाजी की नीति मुसलमानों के सम्बन्ध में इतनी उदार थी, तब उनके प्रशस्तिकार भूषण ने औरंगज़ेब की निन्दा क्यों की? इस विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि भूषण जो सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक सूत्र में आबद्ध देखना चाहते थे। सम्राट बाबर, हुमायूँ और अकबर इस विषय में एक मर्य्यादा स्थिर कर गये थे और उसके फलस्वरूप हिन्दू और मुसलमान

---

*डा० ताराचन्द—इन्फ्लुएन्स आफ इसलाम आन इन्डियन कल्चर पृ० ४४-४५।

† शर्मा—मुग़ल एम्पायर इन इन्डिया पृ० ५५८-५५९

प्रजा सदियों से मित्र-भाव से रहती आ रही थी। सम्राट औरंगजेब ने उस मर्य्यादा को नष्ट करने की चेष्टा की थी। उसने हिन्दू-मुसलमानो के धार्मिक विद्वेष के भाव को भड़का दिया था। भूषणजी इसमें देश का अहित स्पष्ट रूप से देख रहे थे। यथा—

"बब्बर अकब्बर हुमाऊं हद्द बाँधि गये,
हिन्दु और तुरक की कुरान वेद ढब की।
और बादशाहन मैं दूनी चाह हिन्दुन की.
जहाँगीर शाहजहाँ शाखपूरैं तन की।

बाद मे औरंगजेब की यही नीति मुगल-साम्राज्य के विनाश का कारण हुई। भूषणजी के कुछ छन्दों मे म्लेच्छ-वंश के प्रति एक आध स्थल पर कुछ असम्मान-पूर्ण भाव प्रकट हुए है। पर ध्यान से देखा जाय तो वहाँ म्लेच्छ शब्द से भूषण जी का अभिप्राय समस्त मुसलमान जाति से न होकर उस विशिष्ट-वर्ग से था, जिनका औरंगजेब और उसकी तानाशाही से सम्बन्ध था। उसके राजकीय-अधिकारी-वर्ग मे केवल मुसलमान ही लोग थे, यह बात भी नही है। क्योकि इसी सिलसिले में भूषण ने राजा जसवंतसिह तथा उदयभान की भी निन्दा की है। यदि जातिगत विद्वेष भावना से प्रेरित होकर उन्होने औरंगजेब की निन्दा की होती तो कोई कारण न था कि वे उपर्युक्त हिन्दू-नरेशों की भी निन्दा करते।

भूषण और हिन्दीसाहित्य

भूषण जी रीतिकालीन धारा के कवि होते हुए भी वीररस के कवियों में एक प्रकार से अग्रणी हैं। अपने आश्रय-दाताओं से अतुल धन उन्होंने प्राप्त किया। इसप्रकार आर्थिक

दृष्टि से वे अपने जीवन में पूर्ण सफल थे। अपने काव्य में वीरभावों की सृष्टि में उन्हें बड़ी सफलता मिली। छत्रपति महाराज शिवाजी के नाम का स्मरण आते ही भूषण का स्मरण अनिवार्य सा हो जाता है। हिन्दू-राष्ट्र के निर्माण के लिए महाराज शिवाजी का नाम भारतीय-इतिहास में जिस प्रकार अमर रहेगा, उसीप्रकार उनके कीर्तिगायक सुकवि भूषण की कविता हिन्दी-काव्य के पाठकों के लिए सदा वीर भावों की प्रेरणा और स्फूर्ति की उपकरण भी बनी रहेगी।

शिवराज-भूषण

कवित्त मनहरण

तेरो तेज सरजा समत्थ! दिनकर सोहै,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सो।
भौंसिलाभुआल! तेरो जस हिमकर सोहै,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो।
भूखन भनत तेरो हियो रतनाकर सो,
रतनाकरो है तेरो हियो सुख कर सो।
साहि के सपूत सिव साहि दानि तेरो कर,
सुरतरु सोहै, सुरतरु तेरो कर सो॥ १॥

सिंह थरि जाने बिन जावली-जंगल-भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
भूषन भनत, देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मति हिये मैं धरि काहुवै न हठक्यो।
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजले पजाबल पटक्यो।
ता बिगिरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआंकुस लै सटक्यो॥ २॥

कवि कहै करन, करनजीत कमनैत,
अरिन के उर माहि कीन्हों इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो
और धरा धरन को मेव्यो अहमेव है।
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज काज देखि कोई पावत न भेव है।
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहैं,
बहरी निजाम के जितैया कहै देव है॥ ३॥

कवित्त मनहरण

लूट्यो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु,
लूट्यो मारि तलबखाँ मानहुं अमाल है।
भूषण भनत लूट्यो पूना में सइस्तखान,
गढ़न में लूट्यौ त्यों गढ़ोइन को जाल है।
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूट्यो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है॥ ४॥

अटल रहे हैं दिगअंतन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि कै।
राना रह्यौ अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि, भूषन भनत, गुन भरि कै।
हाड़ा, रायठौर, कछवाहे, गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै।
अटल सिवाजी रह्यौ दिल्ली को निदरि धीर,
धरि, ऐंड धरि, तेग धरि, गढ़ धरि कै॥ ५॥

मैदनक धरन द्विरद बल राजत है,
बहुजल-धरन जलद छबि साजे है।
भूमि के धरन फन-पति अति लसत है,
तेज ताप धरन ग्रीषम रबि छाजे है।
खग्ग के धरन सोहे भट भारे रन ही में
भूषन लसत गुन-धरन समाजै है।
दिल्ली के दलन देस दच्छिन के थंभन ही,
ऐंड के धरन सिव सरजा बिराजै है॥ ६॥

लूट्यो है हुलास आम खास एक संग छूट्यौ,
हरम सरम एक, संग बिनु ढंग ही।

नैनन तें नीर धीर छूट्यौ एक संग छूट्यौ,
सुख रुचि मुख रुचि त्यौंही बिन रंग ही।
भूषन बखानै, सिवराज, मरदाने तेरी,
धाक बिललाने, न गहत बल अंग ही।
दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव आस एक संग ही॥ ७॥
उत्तर पहार बिधनौल खण्डहर झार,
खण्डहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गौर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मार रद्द की।
भूषन जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो अपनी उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की॥ ८॥
बचैगा न समुहाने, बहलोल खाँ अयाने,
भूषण बखाने, दिल आन, मेरा बरजा।
तुझ तें सवाई तेरा भाई सलहेरि पास,
कैद किया, साथ का न कोई बीर गरजा।
साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हे गढ़,
जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिल्ली दल का दलन,
अफजल का मलन सिवराज आया सरजा॥ ९॥

मालती सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सपेत लखे कुनबा नृप सारे।
साहि तनै तव कोप कृसानु ते बैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओंठ गहे अरि जान न जारे॥ १०॥

कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत है खरी अखिल खल की।
कियो दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कट नाक सिगरेई दिल्ली-दल की।
सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी ॥११॥

सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्बय से पील देत नाहि अकुलात है।
भूषन भनत, महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है।
सरजा सवाई कासों करि कविताई तब,
हाथ की बड़ाई को बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खण्ड महि,
मंडल की कहा ब्रह्मंड न समात है॥ १२॥

बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाँधि,
बारिधि को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले-द्रोन भीषम से लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी बिराट में बड़ाई है।
भूषन भनत, है गुसलखाने में खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महराज सिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है॥ १३॥

साहि तनै सिवराज भूषन सुजस तव,
बिगरि कलंक चंद उर आनियतु है।

पंचानन एक ही बदन गनि तोहि,
गजानन गज-बदन बिना बस.नियतु है ॥
एक सीस ही सहसकीस कहा करिबे कों,
दुहूँ दग सों सहसदग मानियतु है ।
दुहूँ कर सों सहसकर मानियतु तोहि,
दुहूँ बाहु सों सहसबाहु जानियतु है ॥ १४ ॥
इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल-राज है ।
पौन बारिबाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहसबाहु पर राम द्विजराज है ॥
दावा द्रुम-दंड पर चीता मृग-झुंड पर,
भूषन बितुंड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तम-अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है ॥ १५ ॥

शिवा-बावनी

कवित्त मनहरण

साजि चतुरंग बीर रंग मे तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है ।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है ।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठैल पैल सैल उसलत है ।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥ १६ ॥
बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के ।

नग भहराने ग्राम-नगर पराने सुनि,
बाजत निसाने सिवराज जू नरेस के ।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के ।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के ।।१७।।

प्रेतिनी पिसाचरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है ।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जुरि आई है ।
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है ।
सिवा पूछैं सिव सों समाजु आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा-नरेश भृकुटी चढ़ाई है ।।१८।।

सबन के ऊपर ही ठाढो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियौ छै हजारिन के नियरे ।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न वचन बोले सियरे ।
भूषन भनत महाबीर बलकन लागो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे ।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ।।१९।।

केतकी सो राना और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर लेत रस नित यह काज है ।
सिगरे अमीर भये कुन्द मकरंद भरे
भृङ्ग से भ्रमत लखि फूल के समाज है ।
भूषन भनत सिवराज बीर तेहीं देस,

देसन मैं राखी सब दच्छिन की लाज है।
आगे सदा पटपद पद अनुमान यह,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है ॥२०॥
कूरम कमल कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी बिराज है।
पाँडर पंवार जूही सोहत है चंदावत,
सरस बुंदेला सो चमेली साजबाज है।
भूषन भनत मुचुकुंद बड़गूजर हैं,
बघेले बसन्त सब कुसुम-समाज हैं।
लेइ रस एतेन को बैठ न सकत अहै,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज हैं ॥२१॥
छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हू की ओट मैं।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरबर जोट मैं।
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहां लौं कहौं,
किम्मति इहां लगि है जाकी भट झोट मैं।
ताव दै मूछन कंगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट मैं ॥२२॥

मालती सवैया

केतिक देस दल्यो दल के बल, दच्छिन चंगुल चापि कै चाख्यो।
रूप गुमान हर्‌यो गुजरात को, सूरत को रस चूसि कै नाख्यो।
पंजन पेलि मलिच्छ मले सब, सोइ बच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रंग है सिवराज बली, जिन नौरंग में रंग एक न राख्यो ॥२३॥

कवित्त मनहरण

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को।

दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को।
भूषन अखंड नवखंड महि मंडल मैं,
तम पर दावा रवि किरन समाज को।
पूरब पछांह देस दच्छिन ते उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को ॥२४॥

वारिधि के कुंभभव घन बन दावानल,
तरुन तिमिर हूँ के किरन-समाज हौ।
कंस के कन्हैया, कामधेन हूँ के कंठकाल,
कैटभ के कालिका विहंगम के बाज हौ।
भूषन भनत जग जालिम के सचीपति,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छिराज हौ।
रावन के राम कातबीज के परसुराम,
दिल्लीपति-दिग्गज के सेर सिवराज हौ ॥२५॥

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नीचे रुंड मुंड फरके।
भूषन भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके।
मारे सुनि सुभट पनारे वारे उद्भट,
तारे लगे फिरन सितारे गढ़ धर के।
बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके ॥२६॥

मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन,
सहर सिरोज लौं परावने परत हैं।
गोड़वानो तिलंगानो फिरगानो करनाट,
रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत हैं।
साहि के सपूत सिवराज, तेरी धाक सुनि,

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेद विधि सुनी मैं ।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं ।
भूषन सुकवि जीति हद मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं ।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं ॥३१॥

बद्दल न होहिं दल दच्छिन उमंडि आयो,
घटा ये न होय इभ सिवाजी हँकारी के ।
दामिनी-दमक नाहिं खुले खग्ग वीरन के,
इन्द्रधनु नाहिं ये निसान हैं सवारी के ।
देखि-देखि मुगलों की हरमैं भवन त्यागैं,
उझकि-उझकि उठैं बहत बयारी के ।
दिल्लीपति भूल मति गाजत न घोर यान,
बाजत नगारे ये सितारे-गढ़धारी के ॥३२॥

सक्र जिमि सैल पर अर्क तम-फैल पर,
बिघन की रैल पर लंबोदर देखिए ।
राम दसकन्ध पर भीम जरासंध पर,
भूषन ज्यों सिंधु पर कुंभज बिसेखिए ।
हर ज्यों अनंग पर गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग पर पारथ ज्यों पेखिए ।
बाज ज्यों बिहंग पर सिंह ज्यों मतंग पर,
म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिए ॥३३॥

छत्रसाल-दशक

रैया राव चंपति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
भूषन भनत गजराज जोम जमकैं ।

भादों की घटा सी उड़ि गरद गगन घिरे,
सेलैं समसेरैं फिरैं दामिनी सी दमकैं ।
खान उमरावन के आन राजा-रावन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन कैसी घमकैं ।
बैहर बगारन की, अरि के अगारन की,
लाँघती पगारन नगारन की धमकैं ॥३४॥

चाकचक-चमू के अचाकचक चहूँ ओर,
चाक सी फिरत धाक चंपति के लाल की ।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की ।
सुनि सुनि रीति बिरुदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की ।
जंग जीति लेवा तेऊ ह्वै कै दाम देवा भूप
सेवा लागे करन महेवा-महिपाल की ॥३५॥

साँगन सों पेलि पेलि खग्गन सों खेलि खेलि,
समद सा जीता जो समद लौं बखाना है ।
भूषन बुंदेला-मनि चंपति-सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मियाँना है ।
जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा,
महमद अमीखाँ का कटक खजाना है ।
बीर-रस मत्ता जाते काँपत चकत्ता यारा,
कत्ता ऐसा बाँधिये जो छत्ता बाँधि जाना है ॥३६॥

देस दहपट्टि आयो आगरे दिली के मेंड़े
बरगी बहुरि मानो दल जिमि देवा को ।
भूषन भनत छत्रसाल छितिपाल मनि,
ताके ते कियो बिहाल जंग जीति लेवा को ।
खंड खंड सोर यों अखंड महि-मंडल में,

मंडित बुंदेलखण्ड मंडल महेवा को ।
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहसबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को ॥३७॥

अत्रगहि छत्रसाल खिझ्यो खेत बेतवै के,
उत ते पठानन हू कीन्ही झुकि झपटें ।
हिम्मति बडी कै कबड़ी के खिलवारन लौं,
देत से हजारन हजार बार चपटें ।
भूषन भनत काली हुलसी असीसन कों,
सीसन कौ ईस की जमाति जोर जपटें ।
समद लौ समद की सेना त्यों बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भई बाड़व की लपटैं ॥३८॥

भुज भुजगेस की वैसंगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दोह दारुन दलन के ।
बखतर पाखरिन बीच धँसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के ।
रैया राव चंपति को छत्रसाल महाराज,
भूषण सकन करि बखान यों बलन के ।
पच्छी-पर छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छींने हैं खलन के ॥३६॥

राजत अखण्ड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को ।
जाहि के प्रताप सो मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को ।
साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें,
भूषण भनत ऐसा दीन प्रतिपाल को ।
और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊं अब,
साहू को सराहौ कै सरोहौं छत्रसाल को ॥४०॥

गोरेलाल

गोरेलाल उपनाम लाल कवि के जीवनवृत्त के विषय में अधिक नहीं ज्ञात है। अंतर्साक्ष्य से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि कवि का उपनाम लाल था और वह महाराज छत्रसाल का समकालीन था तथा उन्ही की आज्ञा से उसने "छत्र-प्रकाश"-नामक ग्रंथ की रचना भी की। इस कथन की पुष्टि "छत्र प्रकाश" के निम्नलिखित दोहे से ही हो जाती है—

> "धनि चंपत के औतरौ, पंचम श्री छत्रसाल।
> जिनकी अज्ञा सीस धरि, करी कहानी लाल॥"
>
> [छ० प्र० पृ० ६६]

इनके जीवन के सम्बन्ध मे कुछ बाते उनके प्रपौत्र के प्रपौत्र बीकानेर-निवासी श्री उत्तमलाल गोस्वामी से ज्ञात हुई है जिसका उल्लेख मिश्र-बन्धुओ ने अपने इतिहास में किया है। इस सामग्री के अनुसार लाल का जन्म सं० १७१५ के लगभग हुआ था* तथा उनके पूर्वजों का निवासस्थान आंध्र देश में राजमहेंद्री जिले के नृसिंहक्षेत्र धर्मपुरी मे था। इनके एक पूर्वज काशीनाथ की कन्या का विवाह महाप्रभु श्रीबल्लभाचार्य से हुआ था। काशीनाथ के पुत्र जगन्नाथ के छः पुत्र थे जिनके नाम क्रमशः ये हैं—(१) गिट्टा (२) लम्बुक (३) जोगिया (४) तिधरा (५) गिरधन तथा (६) भरस। इनमे से

---

*शिवसिंहसेंगर इनका जन्म १७३८ वि० मानते हैं। प० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इनके जन्म की कोई तिथि नहीं दी है।

गिट्टा के पुत्र नागनाथ हुए जिनकी दसवी पीढ़ी मे गोरेलाल जी हुए।

प्रसिद्ध दाक्षिणात्यविद्वान पं० गंगाधर शास्त्री तैलंग के पुत्र कृष्णशास्त्री ने "वल्लभ-दिग्विजय" नामक ग्रंथ मे अपना परिचय देते हुए निम्नलिखित श्लोक दिया है, जिससे उक्त कथन की पुष्टि हो जाती है—

"बद्धक् मौद्गलय गोत्रे प्रथिततरयशा नागनाथान्वये भूत्।
बुंदेलाधीशपूज्यः कविकुल तिलको गौरिलालाख्य भट्टः ॥
शास्त्री गंगाधरस्तत्कुल जनिरभवत् तत्कुले शास्त्रि कृष्णः।
तेनेदं लिख्यते श्री गुरुवरचरितं सुग्धरायां मतेन ॥"

सरांश यह है कि मुद्गलगोत्रीय नागनाथ के वंश में कवि-कुल-तिलक गोरेलाल हुए जिन्हें बुंदेलखण्ड के अधीश्वर बड़ी पूज्य-दृष्टि से देखते थे।'

कविवर गोरेलाल की मृत्यु के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चय नही है❋। "छत्रप्रकाश" मे सं० १७६४ वि० तक की घटनाओं का वर्णन है, इसके पश्चात् अचानक ग्रंथ की समाप्ति हो गई है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि या तो यह ग्रन्थ अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है अथवा लाल कवि का परलोकवास संभवत. छत्रसाल के पूर्व ही सं० १७६४ के ही आसपास हो गया था। अथवा संभवत किसी विशेष कारणवश ग्रन्थ-रचना का कार्य समाप्त कर देना पड़ा।

इनके एक मात्र आश्रयदाता छत्रसाल ही थे तथा इनके द्वारा रचित ग्रंथ प्रायः छत्रसाल की ही आज्ञा से उनके मनोरंजन के लिए लिखे गयेथे और अधिकांश उन्हीं से संबंधित हैं। छत्रमाल

❋शिवसिंहसेंगर सं० १७९० वि० तक इनका जीवित रहना मानते हैं

ने इन्हें बड़ईपठारा, अमानगंज, सगेरा, तथा दुग्धा नामक पांच गाँव दान में दिए थे। इनके वंशज अब भी दुग्धा में वर्तमान हैं।

इनके निम्नलिखित ग्रन्थ कहे जाते हैं—

(१) छत्र-प्रशस्ति (२) छत्रछाया (३) छत्रकीर्ति (४) छत्र-छन्द (५) छत्रसालशतक (६) छत्रहजार (७) छत्रदण्ड (८) छत्रप्रकाश (९) राजविनोद तथा (१०) विष्णुविलास। इनमें "छत्रप्रकाश", "राजविनोद" तथा "विष्णुविलास" ही प्रकाशित हुए हैं जिनमें "छत्रप्रकाश" ही मुख्यत लाल की कीर्ति का स्तम्भ है।

"छत्रप्रकाश" का सर्वप्रथम प्रकाशन मेजर प्राइस द्वारा कलकत्ते के फोर्टविलियम कालेज से हुआ था किन्तु वह प्रति अब अप्राप्य है। वर्तमान संस्करण काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित हुआ है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

गोरेलाल कृत "छत्रप्रकाश" के नायक महाराज छत्रसाल बुन्देला हैं, जो बुन्देलखण्ड में राज्य करते थे।

भारतवर्ष के मध्यवर्ती-भाग में यमुना के दक्षिण, नर्मदा के उत्तर, टौंस के पश्चिम और कालीसिंध नदी के पूर्व का प्रदेश बुन्देलखण्ड कहा जाता है। प्राचीनकाल में इसके दशार्ण, वज्र, जेजाकभुक्ति, जुझौती, जुझारखण्ड, आदि अनेक नाम मिलते हैं। 'बुन्देलखण्ड' इसका नाम क्यों पड़ा, इस सम्बन्ध में अनेक अनुमान किये गये हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार विन्ध्य-पर्वत की शाखाओं से समाच्छादित होने के कारण इसका नाम विन्ध्येलखण्ड पड़ा, जिसका अपभ्रंश रूप बुन्देलखण्ड

हो गया। किन्तु वास्तव में बुन्देलों का निवासस्थान होने के कारण ही इस प्रदेश का नाम बुन्देलखण्ड पड़ा।

बुंदेलों की उत्पत्ति के विषय में भी कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं जिनमें से एक जगदास उपनाम 'पंचम'* के सम्बन्ध की अधिक प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि उसके पिता की मृत्यु के पश्चात उसके अन्य चार भाइयों ने पंचम का राज्य छीनकर परस्पर बाँट लिया। निस्सहाय पंचम निराश होकर बन में चला गया और वहाँ उसने तपस्या करके विंध्यवासिनी देवी को प्रसन्न कर लिया। देवी ने उसे राजा होने का वरदान दिया। इस पर पंचम ने उससे दर्शन देने की प्रार्थना की. किन्तु जब कोई रूप प्रकट न हुआ तो वह स्वयं खड्ग लेकर शिरच्छेदन करने को प्रस्तुत हुआ। इस पर देवी ने उसे तत्काल दर्शन दिया और उसे विजयी होने का वरदान भी दिया। किन्तु खड्ग थोड़ा लग चुका था अतः रक्त की एक बूंद पृथ्वी पर गिर पड़ी। इस पर देवी ने उसे बुंदेला नाम से अभिहित किया। इसप्रकार बुंदेलों की उत्पत्ति हुई। पंचम ने वहाँ से आकर सैन्य-संगठन किया और अपने भाइयों से अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त कर लिया।

गोरेलाल ने "छत्रप्रकाश" में इस घटना का निम्नलिखित रूप से उल्लेख किया है—

> "पंचम बाल बहिक्रम जान्यौ। लोभ चहूँ बंधुन उर आन्यौ॥
> पंचम की पुहुमी उनछीनी। बाँटि चारि हींसा करि लीनी॥
>
> × × × ×
>
> यह संसार कठिन रे भाई। सबल उमंडि निर्बल को खाई॥
>
> [छ० प्र० पृ० ५]
>
> × × × ×

*कहीं-कहीं उसका नाम हेमकरन भी मिलता है।

मृदु मूरति जगमाइ की रही ध्यान ठहराइ ।
एक पाइ पचम खड़े, भूख-प्यास बिसराइ ॥
[छ० प्र० पृ० ६]

× × × ×

तब पंचम नृप करवर काढ़यौ । निजसिर देत भगतिरस बाढ़यौ ।
तातैं रुधिर बुंद एक छूटयौ । मनहुं गगन तें तारा टूटयौ ॥
[छ० प्र० पृ० ७]

इस जनश्रुति में ऐतिहासिक तथ्य जो भी हो इससे इतनी ध्वनि तो अवश्य ही निकलती है कि बुंदेला-राज्य का संस्थापक कोई हेमकरन उपनाम पंचम नामक व्यक्ति था, जो प्रतापी क्षत्रिय था। इसका उल्लेख "ओरछास्टेट गजेटियर" में भी मिलता है।

बुंदेले गहरवार क्षत्रिय है।* गोरेलाल ने "छत्रप्रकाश" में इनकी वंशावली इस प्रकार से दी है:—

मनु के अनेक वंशजो मे क्षत्रिय हुए जिन मे श्री रामचन्द्र जी सब से प्रतापी राजा हुए। उन्हीं से क्रमशः कुश, हरिब्रह्न, महिपाल, भुवपाल, कमलचन्द, चित्रपाल, बुद्धिपाल, विहंराज, काशिराज, गहिरदेव, विमलचन्द, नाहुचन्द, गोपचन्द, गोविन्दचन्द, टिहनपाल, विन्ध्यराज, सोनिकदेव, बीझलदेव,

*गहरवारों की राजधानी कन्नौज थी। मध्ययुग में पूरब में बनारस को संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के केन्द्र बनाने का बहुत कुछ श्रेय गहरवार राजाओं को ही है। इसके लिए उन्होंने काशी के आस पास के सरयूपारीण-ब्रह्मणों को अनेक गाँव दान में दिये। गहरवार राजा गोविन्दचन्द्र की बौद्धपत्नी कुमारदेवी ने सारनाथ के विहार का अन्तिम बार जीर्णोद्धार कराया था।

अर्जुनदेव, तथा वीरभद्र हुए। इन्हीं वीरभद्र के पुत्र पंचम हुए जो बुंदेलों के आदि पुरुष थे, जिनके सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख हो चुका है। पंचम के पश्चात् क्रमशः वीर बुंदेला, करनपाल या करनतीर्थ, अर्जुनपाल, सोहनपाल, सहजेन्द्र, नानकदेव, पृथ्वीराज, रामसिंह, मेदिनीमल्ल, अर्जुनदेव, मल्लखान, प्रतापरुद्र, भारतीचन्द्र तथा मधुरकरसाहि हुए। मधुरकरसाहि के भाई उदयाजीत को महेबे में जागीर मिली। इसप्रकार एक वंश ओड़छा तथा दूसरा महेबे में राज्य करने लगा। वीर छत्रसाल इस महेबे वाली शाखा में ही हुए। 'छत्रप्रकाश' के अनुसार महेबा-शाखा का वंश वृक्ष इस प्रकार है:—
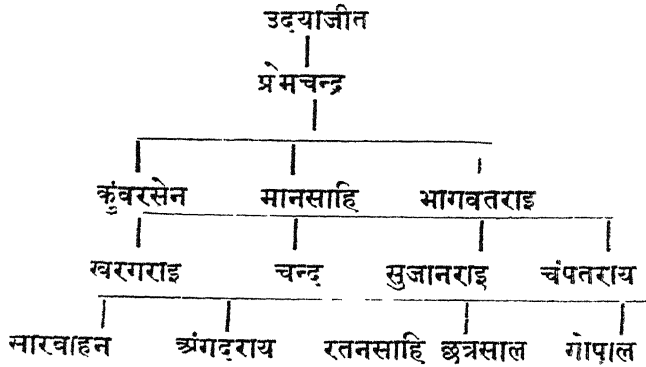
ओड़छावाली शाखामें क्रमशः मधुरकरसाहि, वीरसिंहदेव तथा जुझारसिंह हुए। जुझारसिंह ने अपने कनिष्ट भ्राता हरदेव सिंह को विष दिलवाकर मार डाला। इसके पश्चात् अराजकता फैल गयी जिससे लाभ उठाकर शाहजहाँ ने बुंदेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। इस अवसर पर चंपतराय ने जुझारसिंह की सहायता करके बुंदेलखण्ड की रक्षा की। चंपत-

राय की वीरता का वर्णन लाल ने अत्यन्त ओजपूर्ण भाषा में किया है। यथा:—

चंपति के परताप तें, पानिप गयो ससाइ।
पौसेरी भरि रहि गयौ, नौसेरी उमराय।
[छ० प्र० पृ० ३२]

× × × ×

चौंकि चौंकि चौंकी उठौ, दौंकि दौंकि उम राइ।
फाके लसकर में परे, थाके सबै उपाइ।
[छ० प्र० पृ० ३३]

इन्हीं महाराज चंपतराय के पुत्र बुंदेलखण्ड केसरी महाराज छत्रसाल हुए जो इस काव्य के चरित्र नायक हैं।

लाल ने महाराज छत्रसाल को चंपतराय का अवतार माना है, यथा—

"चितचीते साँचे भये, सुपन माइके चारु
प्रगट्यौ चम्पतराय के, छत्रसाल अवतारु॥
[छ० प्र० पृ० २२]

उनके शरीर में चक्रवर्ती के लक्षण वर्तमान थे। उनके आरंभिक जीवन के चार वर्ष माता के साथ ननिहाल ही में व्यतीत हुए, तत्पश्चात् वे अपने पिता के पास महेवा चले आये। सात वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन प्रारम्भ किया और ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही शस्त्रास्त्र चलाने की कला में वे पूर्णतया निपुण हो गए। इनकी तेजस्वी मुद्रा तथा असाधारण क्षत्रियोचित गुणों के ही कारण इनका नाम "छत्रसाल" पड़ा।

पिता की मृत्यु के पश्चात् वे अपने भाई अंगदराय के यहाँ चले आए और उन्हीं के परामर्श से उन्होंने अब औरंगजेब की सेना में सेवा भी स्वीकार करली। एक बार उन्हें शिवाजी के विरुद्ध भी युद्ध में जाना पड़ा। बहादुरखाँ का सेनापतित्व था, किन्तु छत्रसाल की ही युद्ध सञ्चालनकला का यह परिणाम

था कि देवगढ़ ऐसे सुरक्षित-दुर्ग में मराठों को पराजित होना पड़ा। विजय का समाचार पाने पर औरंगज़ेब ने प्रसन्न होकर बहादुरखाँ के मनसब में वृद्धि कर दी, छत्रसाल को किसी ने पूछा तक भी नहीं। इस कृतघ्नता से वीर-क्षत्रिय के आत्मसम्मान की ज्वाला भड़क उठी। अब उन्होंने स्वतंत्र होने का दृढ़ निश्चय कर लिया। "छत्रप्रकाश" में इसी भावना का निम्नलिखित रूप में चित्रण है—

> "हितू जानि सेयो अबिबेकी। तातै कहौ होइ क्यों नेकी॥
> ताकौ हम ऐसौ फल पायौ। याके संग कमालौ खायौ॥
> हमतौ छत्रधर्म प्रतिपारयौ। रीझ न याको माथौ डारयौ॥
> मूरख के आगे गुनगायौ। भैंसा बीन बजाइ रिझायौ॥"
>
> [छ० प्र० पृ० ७७]

इसप्रकार छत्रसाल भी वीर शिवाजी के सिद्धान्तों के अनुयायी हो गये और मुगलराज्य के विध्वंस में प्रवृत्त हो गए। आपने हिन्दू-शक्ति का संगठन प्रारम्भ किया तथा 'सिरोज' नामक स्थान पर मालवा के सूबेदार मुहम्मदहासिम को पराजित किया। इसके पश्चात् औड़ेरा, धौरी, सागर, पिथरहट, हनूटूक तथा धमौनी इत्यादि स्थानों पर भी क्रमशः अधिकार प्राप्त किया।

'छत्रप्रकाश' में मुगलों के पक्षपाती केशवराय दुरंगी से भी छत्रसाल से युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में दुरंगी पराजित हुआ और मार डाला गया। इसीप्रकार धूमघाट नामक स्थान पर सैदबहादुर तथा रणदूलह को तथा तहवर में अनवर खाँ और सदरुद्दीन को एवं बेतवा के तट पर हमीद खाँ तथा सैयद लतीफ को महाराज ने पराजित किया। भेलसा के सूबेदार बहलोल खां को भी छत्रसाल की अधीनता स्वी-

कार करनी पड़ी और अब्दुल समद को हराकर महाराज ने उससे चौथ वसूल की। इसप्रकार शत्रुओं को पूर्ण रूप से पराजित करके वीर-छत्रसाल ने पन्ना को अपनी राजधानी बनायी।

महाराज छत्रसाल बड़े गुणग्राही थे। कवियों और गुणियों की आपके दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा थी। कविवर गोरेलाल ने उनकी आज्ञा से ही "छत्रप्रकाश" की रचना और भूषण ने भी उनकी प्रशंसा में "छत्रसालदशक" की रचना की। वह स्वयं भी कवि थे। उनकी रचनाओं के तीन संग्रह प्राप्त हुए हैं। वे हैं—

(१) "छत्र-विलास" (२) "नीति-मञ्जरी" और (३) "महराज छत्रसालजू का काव्य"

उनके स्फुट छंदों में से दो उदाहरण यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

(१)

"ध्यानिन में ध्यानी और ज्ञानिन में ज्ञानी अहो,
पंडित पुरानी प्रेमवानी अरथाने का।
साहब सो सच्चा, क्रूर कर्मनि में कच्चा, छता,
चंपत का बच्चा, सेर सूरबीर बाने का।
मित्रन को छत्ता, द्रोह सत्रुन को कत्ता,
सदा, ब्रह्मरसरत्ता एक कायम ठिकाने का।
नाहिं परवाही, न्यारा नौकिया सिपाही,
मैं तो नेही चाहचाही एक स्यामास्याम पाने का।

ऊपर के छंदों में छत्रसाल ने अपना परिचय दिया है।

(२)

"चाहनैं न बुद्धि बड़ी, सुद्धि अंग-अगनि की,
जोग-जाग रगनि में रगनै न राई, रे।

कहै छत्रसाल, कछू सीखनै न सीख बड़ी,
दीखनै न दीख तुक-अच्छर-दखाई रे।
महत मुनीस सुरईस ईस ईसन नैं,
जाकी कलकीरति कबीसन न नै गाई रे।
सूधो मग सुनाम, बमुयाम है अराम धाम
राम जपि, राम जप, राम जप भाई, रे ॥

गोरेलाल ने जिन ऐतिहासिक-घटनाओं का उल्लेख किया है उनकी पुष्टि प्रामाणिक-इतिहासों से भी हो जाती है। उदाहरण स्वरूप "छत्रप्रकाश" में जुझारसिंह पर शाहजहाँ के आक्रमण का वर्णन इसप्रकार आया है—

"एक समय दिल्ली पति कोप्यौ। पग न जुझारसिंह ने रोप्यौ॥
अरब खरब लौं हुते खजाने। सो न जानिये कहाँ बिलाने॥

× × +

साहि जहान देस सब लीनौ। कियौ बुंदेलखण्ड बलहीनौ॥
[छ० प्र०, पृ० २८]

प्रायः इसीप्रकार का वर्णन डा० ईश्वरी प्रसाद के "भारतवर्ष का इतिहास" नामक ग्रन्थ में है। उन्होंने अब्दुल लाहोरी द्वारा लिखित उद्धरण भी इस घटना की पुष्टि में दिया है। अब्दुल लाहौरी लिखता है—

"जो संपत्ति वीरसिंह बुंदेला ने बिना परिश्रम और कष्ट के अर्जित की उसके फलस्वरूप उसके अयोग्य उत्तराधिकारी जुझारसिंह का मस्तिष्क पलट गया और शाहजहाँ के राज्यारोहण के अवसर पर बिना उसकी आज्ञा लिए ही वह आगरे से ओरछा चला आया और बादशाह के विरुद्ध सैन्य-संगठन में लग गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि शाहजहाँ ने

उस पर आक्रमण कर दिया और जुझारसिंह पराजित हुआ।*

"छत्रप्रकाश" में अब औरंगजेब के विरुद्ध चम्पतराय के विद्रोह का भी वर्णन है। चम्पतराय को चारों ओर से यावनी-सेना ने घेर लिया था और अन्त में उन्हें आत्महत्या करनी पड़ी। इस घटना का वर्णन "छत्रप्रकाश" में निम्नलिखित रूप में है—

मारे सुभट दुइक उन संगी। चरति पै उमडे जुग जंगी॥
रोगन चंपतराय दबाये। कछु उपाय चले न चलाये॥

× × × ×

दै दै घाउ मरी ठकुरानी। चंपतिराइ दगा तब जानी॥
यह संसार तुच्छ निरधारयौ। मार कटारिन उदर विदारयौ॥

[छ० प्र० पृ० ६४-५]

जुझारसिंह की मृत्यु के पश्चात् शाहजहाँ ने अपनी ओर से देवीसिंह नामक एक क्षत्रिय को ओड़छा के सिंहासन पर बैठाया, किन्तु चम्पतराय ने उसके विरुद्ध आंदोलन किया।*
गोरेलाल ने 'छत्रप्रकाश" में इन सूक्ष्म-घटनाओं तक का भी उल्लेख किया है। इस घटना का उल्लेख उनके ग्रन्थ में इसप्रकार है—

"राजा देवीसिंह कौं, ओरौदीनौ देस।
उमड्यौ चंपतिरायपै, श्री सुभकरन नरेस॥

[छ० प्र०, पृ० २]

---

*डा० ईश्वरी प्रसाद:— भारतवर्ष का इतिहास, (अंग्रेजी संस्करण) (पृ० ५३३-३४)

* डा० ईश्वरी प्रसाद—"भारतवर्ष का इतिहास" (अंग्रेजी संस्करण) पृ० ५४२।

छत्रसाल की राष्टीय-भावना का "छत्रप्रकाश" में अत्यन्त सुन्दर-वर्णन है। यह अत्युक्ति नहीं, प्रामाणिक इतिहास भी इसकी पुष्टि करते हैं। सरकार के इतिहास में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख है:—

"छत्रसाल मुगल सेना मे भरती हुए किन्तु उनके परिश्रम की मुग़लों ने लेशमात्र भी प्रशंसा न की। इस तिरस्कार से उनके विचारों मे प्रतिक्रिया हुई और वह भी शिवाजी के समान साहसमय-जीवन व्यतीत करने का स्वप्न देखने लगे। तथा मुगल शक्ति के विद्रोह मे अग्रसर हो गए ······ ··वह सन्* १७३१ ई० मे बुंदेलखण्ड को मुग़लों के अधिकार से पूर्णतया मुक्त करके मरे।†

ऊपर "छत्रप्रकाश" मे उल्लिखित ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है; किन्तु इस संबंध में इस बातपर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि "छत्र-प्रकाश" कोई ऐतिहासिक-ग्रंथ नहीं है। यही कारण है कि कतिपय ऐतिहासिक घटनाये "छत्रप्रकाश" मे नहीं दी गई है और कुछ प्रामाणिक इतिहासों की घटनाओं के प्रतिकूल भी पड़ती है।

उदाहरणस्वरूप "ओड़छा - स्टेट - गजेटियर" और छत्र-प्रकाश" की वंशावली मे थोड़ा अन्तर मिलता है। गजेटियर मे हेमकरण उपनाम पंचम को पिता और वीरभद्र को पुत्र लिखा गया है। लाल ने वीरभद्र को पिता तथा हेमकरन उपनाम पंचम को को पुत्र लिखा है। "छत्रप्रकाश" में पंचम के पुत्र का नाम वीरभद्र नहीं प्रत्युत वीर बुंदेला दिया गया है।

*प्रतापरूद्र बुंदेला पर काफ़ूर का आक्रमण हुआ था।

---

* एम० सी० सरकार, माडर्न इंडयन हिस्ट्री। पृ० २०४।

† डा० ईश्वरीप्रसाद, भारतवर्ष का इतिहास (अं० स०) पृष्ठ २६७।

पहले तो बुंदेलों ने उसे दुर्ग में बन्दकर बड़ा कष्ट दिया किन्तु अंत में मुग़लों की विशाल-शक्ति के आगे बुंदेलों के पाँव उखड़ने लगे और प्रतापरुद्र को आत्मसमर्पण करना पड़ा। उसको अपना सारा कोष और अन्यप्रकार की संपत्ति भी देनी पड़ी। डा० ईश्वरी प्रसाद ने अपने इतिहास में लिखा है कि काफ़ूर के सहस्रों ऊट विशाल-सम्पत्ति के भार से दबे हुए दिल्ली पहुँचे।

इस घटना का उल्लेख "छत्रप्रकाश" में नहीं है। संभव है, वर्ण्य-विषय का सीधा सम्बन्ध महाराज छत्रसाल से न होने के कारण इस घटना का उल्लेख गोरेलाल ने जानबूझ कर न किया हो।

छत्रप्रकाश में जुझारसिंह के द्वारा अपने कनिष्ठ-भ्राता हरदेवसिंह को विष देने की कथा नहीं है, यद्यपि इस कथा का निर्देश केवल "बुंदेलखण्ड के संक्षिप्त-इतिहास"* को छोड़कर अन्य किसी प्रामाणिक-इतिहास में नहीं, तथापि जनश्रुति इतनी प्रबल है कि इस घटना के ऐतिहासिक होने में कोई संदेह नहीं। अब भी हरदेवललाला के नाम से कई चबूतरे 'बुंदेलखण्ड' में मिलते हैं जो जनता द्वारा बड़े सम्मान से पूजे जाते हैं। इस घटना का महत्व इस बात से और भी है कि इसी समय शाहजहाँ का आक्रमण हुआ और हिन्दुओं ने मुग़लों के विरुद्ध चम्पतराय के नेतृत्व में पूर्ण संगठन किया।

प्रामाणिक-इतिहासों के अनुसार जुझारसिंह ने दो बार विद्रोह किया था और दोनों बार वह पराजित हुआ। दूसरी पराजय में उसका वध भी गक्खरों के द्वारा हुआ।† छत्रप्रकाश

*गोरेलाल तिवारी, 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' पृ० १४९।
†ईश्वरी प्रसाद, भारतवर्ष का इतिहास [अंग्रेजी] पृ० ५४२।

में इसका तो कोई उल्लेख नहीं है किन्तु चम्पतराय द्वारा मुग़लों को पराजित किये जाने का विस्तृत वर्णन है।१

प्रामाणिक-इतिहासों मे कहीं भी इस अवसर पर मुग़लों की पराजय का वर्णन नहीं।

"बुंदेलखण्ड के संक्षिप्त-इतिहास"२ मे छत्रसाल का जन्म मोर पहाड़ी के जंगल मे दिया गया है, जहाँ चम्पतराय अपनी पत्नी के साथ बड़े कौशल से युद्ध-क्षेत्र से सुरक्षित भाग आए थे। किन्तु "छत्रप्रकाश" मे उनका जन्म राजमहल में दिखलाया गया है।३

"छत्रप्रकाश" में अपने चाचा शुभकरन के यहाँ छत्रसाल का एक मास तक रहने का उल्लेख है। 'बुंदेलखण्ड के संक्षिप्त-इतिहास' मे लिखा है कि शुभकरन ने छत्रसाल को राजविद्रोही समझकर तुरन्त ही अपने घर से निकाल दिया।४ किस साक्ष्य के आधार पर इतिहास लेखक ने ऐसा उल्लेख किया, यह ज्ञात नहीं।

सभी प्रामाणिक-इतिहासों से ज्ञात होता है कि छत्रसाल को अपनी वृद्धावस्था में एक बड़े भयंकर आक्रमण का सामना करना पड़ा था। अब औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् मुग़ल राज्य के अनुशासन के बंधन ढीले पड़ने लगे और सूबेदार लोग यत्रतत्र स्वतंत्र होने लगे थे। इसी बीच में मुहम्मद खाँ

---

१ फौज फारि चपति रन जीत्यौ। अरि पर प्रलै काल सम बीत्यौ।
[छ० प्र० पृ० ३०]

२ गोरेलाल तिवारी, पृ० १६३।

३ उमग भरे नर नारी गावैं। पिता तुरग नग कोष लुटावै।
[छ० प्र० पृ० २४]।

४ गोरेलाल तिवारी, पृ० १७८।

वंगश ने एक बड़ी विशाल-सेना के साथ बुंदेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। छत्रसाल ने अपनी शक्ति को अपर्याप्त समझ कर वाजीराव पेशवा के पास यह दोहा लिखा—

"जो गति ग्राह गजेंद्र की सो गति पहुंची आय।
बाजी जात बुंदेल की राखौ बाजीराय ॥"

अंत में छत्रसाल की विजय हुई। इस प्रसिद्ध घटना का उल्लेख "छत्रप्रकाश" में नहीं। इस सम्बन्ध में एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि "छत्रप्रकाश" की समाप्ति अचानक अप्रत्याशित ढंग से हो गई है। कारण अज्ञात है। सम्भव है इस घटना के पूर्व ही ग्रन्थ की समाप्ति हो चुकी हो।

छत्रसाल की रानियों अथवा उनके पुत्र के सम्बन्ध में "छत्रप्रकाश" में कोई उल्लेख नहीं है। "बुंदेलखण्ड के संक्षिप्त इतिहास" में उनको १७ रानियों और ६९ पुत्रों तथा वियोगी-हरि द्वारा सम्पादित "छत्रसाल-ग्रन्थावली" नामक ग्रन्थ में उनकी १३ रानियों और ५२ पुत्रों का उल्लेख है। इन कथनों का ऐतिहासिक आधार ज्ञात नहीं फिर भी एक प्रबन्ध-काव्य में नायक के पुत्रों आदि का किंचिन्मात्र भी उल्लेख न होना खटकता अवश्य है। ग्रंथ की अचानक समाप्ति इसका कारण हो सकती है।

सारांश

छत्रप्रकाश की रचना महाराज छत्रसाल की आज्ञा से हुई थी। इस ग्रन्थ में छब्बीस अध्याय हैं और सारी रचना दोहें चौपाइयों में ही हैं। आरम्भ में गणेश तथा सरस्वती की बन्दना के अनन्तर बुंदेलों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। इसमें श्री रामचन्द्र जी से लेकर हेमकरन उपनाम पंचम

तक तथा इसके पश्चात् छत्रसाल तक समस्त बुंदेला राजाओं का वर्णन किया गया है। तृतीय अध्याय में छत्रसाल के पूर्व-जन्म की कथा और चतुर्थ में उनके बाल्य-जीवन का चरित्र चित्रित किया गया है।

इसके पश्चात् चम्पतिराय तथा मुगलसेना से अनेक युद्धों का वर्णन है। एक समय शाह की कुटिलता से चम्पतिराय को विष भोजन कराया जा रहा था, किन्तु उसके एक सरदार ने स्वयं उस अन्न को खाकर उसकी रक्षा की। शाहजहाँ की मृत्यु के अनन्तर चम्पतिराय ने अब औरंगजेब से संधि कर ली, किन्तु उसकी धार्मिक कट्टरता से दुखी होकर इन्होंने उससे सम्बन्ध तोड़ दिया। फलतः औरंगजेब का आक्रमण हुआ। चंपतिराय के ऊपर विपत्ति के बादल घहराने लगे; उनकी सेना ने युद्धस्थल में उनके साथ विश्वासघात किया और अन्त में इन कठिन परिस्थितियों में पड़कर चम्पतिराय ने अपनी पत्नी के साथ आत्मघात कर लिया।

इसके पश्चात् छत्रसाल ने अपने भाई अंगदराय के कहने पर औरंगज़ेब की सेना में नौकरी कर ली। वीरता के अनेक कार्य करने पर भी बादशाह को प्रसन्न होते न देखकर छत्रसाल असंतुष्ट हो गये और नौकरी छोड़कर शिवाजी से जा मिले। शिवाजी ने इन्हें बुंदेलखण्ड में स्वाराज्य-स्थापन करने की राय दी। दोनों वीर केसरियों के सम्मिलन का अत्यंत सुन्दर वर्णन छत्रप्रकाश में है।

छत्रसाल ने बुंदेलखण्ड आकर सैन्य-संग्रह प्रारंभ किया और सर्वप्रथम धंधेरगढ़ पर विजय की। फिर तो विजय पर विजय प्राप्त कर उन्होंने मुग़लों का नाकों दम कर दिया। उन्होंने केशवराय के ऊपर आक्रमणकर उसका वध किया, कारण कि वह यवनों का पक्षपाती था। इसके पश्चात् सैद-

बहादुर, रनदूलह, तहव्वर खाँ मदरूद्दीन, हमीद खाँ, सैद लतीफ, अब्दुल समद, बहलोल खाँ आदि मुसलमान सरदारों को क्रमश: पराजित करके उन्होंने अपने राज्य का बड़ा विस्तार कर लिया।

केवल एक सरदार—शेरअफगान—के सामने उन्हे पीछे हटना पड़ा। पुन: शक्ति अर्जित करके उसको भी उन्होंने पराजित किया।

अंतिम चार अध्यायों मे क्रमश: प्राणनाथ द्वारा दिये गये ज्ञानोपदेश, कृष्ण-जन्म, प्राणनाथ-वरदान, तथा छत्रसाल के दिल्ली से मऊ आगमन का वर्णन है। इसी अवसर पर अचानक ग्रंथ की समाप्ति हो जाती है।

आलोचना—

कविवर गोरेलाल की सभी रचनाओं मे "छत्रप्रकाश" की रचना सर्वाधिक प्रौढ़ तथा काव्यगुणोपेत है। लाल ने इसकी रचना छत्रसाल की ही आज्ञा से की थी, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से 'छत्र-प्रकाश' एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसमे सं० १७६४ वि० तक की बुन्देलखण्ड-सम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का वर्णन है। इनमें से कुछ घटनाओं को छोड़कर शेष सबकी पुष्टि प्रामाणिक-इतिहासों से हो जाती है। जिन घटनाओं का इसमें उल्लेख नहीं है, वे कदाचित् प्रसंग के प्रतिकूल होने से छोड़ दी गई हैं। यह भी संभव है कि ग्रन्थ की समाप्ति के पश्चात् वे घटित हुई हैं। गोरेलाल जी ऐतिहासिक घटनाओं को यथातथ्य रूप में वर्णन करने मे इतने सत्यनिष्ठ हैं कि शेरअफगन के विरुद्ध, जिस

युद्ध मे महाराज छत्रसाल को भागना पड़ा था, उसका भी उल्लेख आपने 'छत्र-प्रकाश' मे किया है। यथा'—

"कह्यौ सबनि समुझाइयौ, जिन भजिवे पछिताउ।
भजे कृष्ण अवतार जे, पूरन प्रगट प्रभाउ॥"

[छ० प्र० पृ०, १४७]

इससे कवि की सत्य-प्रियता तो स्पष्ट रूप से प्रमाणित ही होती है साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि उनको इस बात की चिन्ता न थी कि चरित्रनायक के विरुद्ध लिखने से उनकी जीविका मे बाधा पड़ेगी।

साहित्यिक-पक्ष मे इनकी सब से बड़ी विशेषताये है वर्णन की विशदता तथा प्रसाद-गुण की प्रधानता। छब्बीस अध्यायों के एकसौ तिरसठ पृष्ठों मे वीर-रस के उद्रेक के लिए कहीं भी बलात् टकार-डकारादि लोमहर्षक वर्णों को अस्वाभाविक रूप में प्रयुक्त करने का प्रयत्न नहीं दिखाई पड़ता, सरल से सरल और स्वाभाविक से स्वाभाविक रचना द्वारा भी भावो का समुचित उत्कर्ष दिखाने मे गोरेलाल जी पूर्णरूप से सफल हुए है। निम्नलिखित पंक्तियाँ जितनी ही सरल हैं, उतनी ही प्रभावोत्पादक भी है:—

"ऐडे एक सिवराज निवाही। करै आपने चित की चाही॥
आठ पातसाही झकझोरै। सूबनि बाँध डाँड़ लै छोरै॥"

इस सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। इस प्रकार की सफलता कवि को चौपाइयों की अपेक्षा दोहों में अधिक मिली है। दोहों में भाषा और भाव दोनो की प्रौढ़ता अधिक निखर उठी है। उदाहरण के लिए चम्पतिराय के प्रताप-वर्णन सम्बन्धी निम्नलिखित दोहे कितने प्रौढ़ और भावोत्कर्षक है —

"छत्रपति के परताप ते पानिप गयों सुखाइ ।
पौसेरी भर रहिगयों नौसेरी उमराइ ।।"

× × × ×

"चौंकि-चौंक चौकी उठ, दौंक दौंकि उमराइ ।
फाके लसकर में परे, थाके सबै उपाय ।।"

[छ० प्र० पृ० ३३]

"नौसेरी" के स्थान पर "पौसेरी" भर रह जाना, यह उक्ति कितनी सरल, किन्तु साथ ही कितनी प्रभावोत्पादक है। भयभीत उमराव कंकाल रूप में उपस्थित हो जाता है।

केवल वीर-रसात्मक-स्थलों में ही नहीं, अन्य स्थलों पर भी सरल भावाभिव्यञ्जन में लाल समान रूप से सफल हुए हैं। छत्रसाल की बालक्रीड़ा के निम्नलिखित वर्णन में भक्त सूरदास के सूक्ष्म निरीक्षण का दर्शन होता है—

"घुटुनुन चलत घूँघुरू बाजै। सिंजित सुनत हंस हिय लाजै ।।
गहि पलका की पाटी डोलै। किलिकि किलकि दसन ने दुति खोलै ।।"

[छ० प्र० पृष्ठ २४]

वस्तुओं की सूची गिनाने की प्रथा का प्रयोग प्रायः सभी रीति-कालीन कवियों ने किया है। कहीं कवियों की लम्बी सूची के दर्शन होते हैं तो कहीं घोड़े हाथियों की विभिन्न जातियों के। इस सूची-परिगणन के अनावश्यक वर्णन-विस्तार से पाठकों की अरुचि को ही प्रोत्साहन मिलता है। गोरेलाल जी इस अंधानुकरण से बचे हुए हैं। जहाँ कहीं ऐसी सूची मिलती भी है वह ऐसी लम्बी नहीं होती, जिससे किसीप्रकार की कुरुचि उत्पन्न हो। यथा—

नारि बिलखुरा रमपुरा, इसैदी परजार।
चेइढ़ डौंगरु ब्यासपुर, ज्ञानाबाद उजार ।।

[छ० प्र० पृ० ११६]

हाँ, कहीं-कहीं युद्धक्षेत्र में कई व्यक्तियों के नाम थोड़े-थोड़े अन्तर पर ही आने लगते हैं उससे अवश्य कुछ अरुचि उत्पन्न होती है।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को भी इन्होंने उसी सरल शैली में स्पष्टरूप से रख दिया है। यदि कहा जाय कि रीति-कालीन-कवियों में इसप्रकार की सरल, सुस्पष्ट और प्रौढ़-शैली के उन्नायक केवल गोरेलाल ही थे तो कोई अत्युक्ति न होगी? "नतो कहीं कल्पना की ऊँची उड़ान दिखाई देती है और न ऊहा की जटिलता।"* निम्नलिखित पदों में औरंगजेब के समय की धार्मिक परिस्थिति का कितना सरल चित्रण है—

"हिन्दू तुरुक दीन द्वै गाये। तिनसों बैर सदा चलि आये॥
लेख्यौ सुर असुरन को जैसो। केहरि करिन बखान्यौ तैसो॥
जब तें साह तखत पर बैठे। तबतें हिंदुन सों उर ऐंठे॥
महँगे कर तीरथन लगाये। बेद देवाले निदरि ढहाये॥"
घर घर बाँधि जंजिया लीनै। अपने मन भाये सब कीनै॥"

[छ० प्र० पृ० ७८]

शिवाजी का जो स्वराज्य का सिद्धांत था, उसी का अनुकरण महाराज छत्रसाल ने भी किया। इसके पूर्व वे शाही सेना में एक साधारण पद पर थे। असाधारण उत्साह के साथ बादशाह की सेवा करने पर भी जब कृतघ्नी शासकने इन पर किंचिन्मात्र भी ध्यान न दिया तो वीर क्षत्रिय को यह अपमान असह्य हो गया। उनके तत्कालीन मनोभावों का लाल ने कितना सुन्दर चित्रण किया है—

---

*पं० रामचन्द्र शुक्ल:— 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (परिवर्द्धित संस्करण) पृ० ३६६।

"हमतौ छत्रधर्म प्रतिपाल्यौ । रीझ न याकौ माथौ हाल्यौ ॥
मूरख के आगे गुनगायौ । भैंसा बीन बजाइ रिझायौ ॥
× × × ×
खर के अंग सुगंध चढायौ । बायस कौ घनसार चुनायौ ॥
बधिर कान में मंत्र सुनायौ । सूरदास को चित्र दिखायौ ॥
× × × ×
अविवेकी को सेइ कै, को न हिये पछिताइ ।
बीजा बवै बबूर के, कहा दाख फल खाइ ॥२॥"

[छ० प्र० पृ० ७७]

रीतिकालीन-कवियों ने युद्ध-वर्णन मे शब्दनाद का भी अत्यधिक परिमाण मे प्रयोग किया है । "धड़धद्धरं' धड़धद्धरं' भड़भब्भरं भड़भब्भरं" ऐसी पंक्तियों से पृष्ठ के पृष्ठ रँग दिये जाते थे । शब्दनाद के ऐसे प्रयोगो से केवल कौतूहल के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त होता । लाल ने ऐसे निम्म-कोटि के शब्द-नाद का प्रयोग केवल वैचित्र्य लाने के लिए नहीं किया है । ग्रन्थ भर में केवल दो एक पंक्तियों मे शब्दनाद के ऐसे प्रयोग मिलते हैं किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उनसे किसीप्रकार की कृत्रिमता नहीं प्रकट होती यथा—

"छुटे बान कुहु कुहु कुहु बोला । नभ गजनाइ उठे गुरुगोला"

[छ० प्र० पृ० १,१]

अथवा—'झिलझिल फौज ठिलाठिल धावै ।"

[छ० प्र० पृ० ५६]

यत्र-तत्र प्रसिद्ध संस्कृत-कवियो के भावो की छाया इनके ग्रन्थों मे मिलती है । इससे इनकी बहुज्ञता भी प्रकट होती हैं । उदाहरण के लिए "छत्रप्रकाश" की निम्नलिखित पंक्तियाँ ले सकते हैं—

चाहत है एते पर तैसी । मत कवि मति की पदवी जैसी ।
"अगम पंथ कौ बुधि बिलसाई । ह्वै है जग इहि भाँत हँसाई ॥
ज्यौं बामन ऊँचे फल चाहै । चरननि उचकि उठावै बाहैं ॥

दोहा

उचकै हू पहुँचै नही बाहैं उच्च उठाइ ।
लोग हँसी के रस भरे, देखत कौतुक आइ ॥

[छ० प्र० पृ० १८]

यह कालिदास के निम्न-लिखित-श्लोक का हिन्दी अनुवाद है—

"मन्दःकवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः ॥"

[रघुवंशमहाकाव्यम्, प्रथमसर्ग श्लोक ३]

इन सब गुणों के होते हुए भी उनकी रचना में कुछ दोष भी है। सब से बड़ा दोष तो यह है कि वर्णन-विस्तार के लोभ मे पड़कर उन्हे कभी-कभी रोचकता और सरसता का त्याग करना पड़ा है। अनेक व्यक्तियो के नामो और कोरी इतिवृत्तात्मक-पंक्तियो के भार से इनकी रचना ऐसे स्थलों पर शिथिल हो गई है। उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित वर्णन में कही रोचकता के दर्शन नही होते—

"यौं कहि ताकैं तुरत ही, सुतरदीन की ओर ।
जे ईरानी निसवती, काबिल काम अमोर ॥
सुतरदीन त्यों करनिम कीनी । तिन्है साह धामौनी दीनी ।
देसनि देसनि लिखे पठाये । क्यों फिसाद ऐसे फैलाये ॥
× × × × × ×
त्यौं मिरजा धामौनी सामै । बंदबस्त कीनै मनभाये ॥"

[छ० प्र० पृ० १२१]

इनकी शिथिलता का दूसरा कारण उनके छन्दों का चुनाव भी है। सारा ग्रन्थ केवल दोहे चौपाइयों में लिखा गया है, अन्य किसी छन्द का प्रयोग कवि ने नहीं किया है। छन्दों की विविधता से इसप्रकार की शिथिलता बहुत कुछ कम हो सकती थी।

यह सब होते हुए भी लाल की प्रबन्ध-पटुता निस्संदेह उच्च कोटि की है। उसमें सम्बन्ध का भी निर्वाह उचित मात्रा में है और साथ ही वर्णन-विस्तार के लिए मार्मिक-स्थलों का चुनाव भी। इस कवि की प्रसिद्धि उतनी नहीं हुई जितनी आवश्यक थी।

दोहा-चौपाई, पद्धति पर रचना करने वाले सब कवियों ने अवधी-भाषा को ही अपनाया है परन्तु लाल ने उसमें ब्रज-

भाषा

भाषा तथा बुन्देली का भी पर्याप्त मिश्रण कर दिया है। कदाचित् भाषा को सरल करने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया है, परन्तु उनकी रचनाओं का गाम्भीर्य इस सरलता के कारण कहीं भी घटने नहीं पाया। अपनी मिश्रित-भाषा की सरलता में भी गोरेलाल ने गम्भीर विचारों को मनोहर ढंग से उपस्थित किया है। निम्निलिखित पंक्ति से जहाँ एक ओर कवि की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय मिलता है वहाँ दूसरी ओर यह कथन भी प्रमाणीत हो जाता है कि कवि सरल-पदावली के माध्यम से किसी भी तथ्य को अत्यंत मनोहर ढंग से उपस्थित करने में सिद्ध-हस्त है।

महोबे के पुराने पान में किसी नुकीली वस्तु का खोंचा लगने से उस के रेशे छितरा जाते हैं। वज्र के समान तीक्ष्ण बाणों के आघात से कवच, पान के रेशे की तरह टूट कर छितरा गये :—

तीछन तीर बज्र से छूटे।
बखतर पोस पान से फूटे ॥

मुहावरों के प्रयोग में गोरेलाल को पूर्ण सफलता मिली है। थोड़ी थोड़ी दूर पर प्रचलित लोकोक्तियों के आ जाने के कारण इस कवि की भाषा में आकर्षण आ गया है :—

(क) तिहिकुल छत्रसाल तुम आये।
दई दिखाई नैन सिराये ॥

(ख) अभै देहु निज बंस कौं, फते लेहु फरमाह।
छत्रसाल तुम पै सदा, करै विसंभर छाँह॥

(ग) यों असीस नरपति जब दीन्ही।
माथे मानि छतारे लीन्हीं ॥

(घ) छत्रसाल पंचम त्यों बोले।
मंत्र विचार हिये के खोले ॥

(ङ) त्यों हम तुम मिलि दोनों भाई।
तुरकन पै कजे बनवाई ॥

गोरेलाल की भाषा के संबंध में खटकने वाली बात केवल एक है। अनेक स्थलों पर उन्होंने शब्दों को अत्यन्त विकृत रूप में रख दिया है। 'गढ़ कुण्डार' का 'कुठार' कर देना शब्दों के साथ खिलवाड़ करना ही है। 'मौलाना' का 'मुलना' और 'मसजिदें' का 'मसीदें' साधारणतः कर दिया गया है। मुसलमानीनामों के साथ भी कवि का व्यवहार इसीप्रकार का है।

छत्रप्रकाश

छत्रसाल को शिवा जी का उपदेश

दोहा

सिवा किसा सुनि कै कहीं, तुम छत्री सिर ताज।
जीत आपनी भूम कों, करौ देश कौ राज।

छन्द

करौ देश कौ राज छतारे। हम तुमतें कबहूँ नहि न्यारे॥
दौरि देस मुगलन के मारौ। दबटि दिल्ली के दल संहारौ॥
तुरकन की परतीत न मानौ। तुम केहरि तुरकन गज जानौ॥
तुरकन में न बिबेक बिलोक्यौ। मिलन गये उनकौ इन रोक्यौ॥
हमको भई सहाय भवानी। भय नहि मुगलन की मनमानी॥
छलबल निकसि देश में आये। अब हम पै उमराइ पठाये॥
हम तुरकनि पर कसी कृपानी। मारि करेंगें कीचन घानी॥
तुमहू जाइ देस दल जोरौ। तुरक मारि तखारनि तोरौ॥

दोहा

राखि हियै ब्रजनाथ कौं, हाथ लेउ करवार।
ये रच्छा करिहैं सदा, यह जानौ निरधार।

छन्द

छत्रनि की यह बृत्त बनाई। सदा तेग की खाइ कमाई॥
गाइ वेद बिप्रन प्रतिपाले। घाउ एड़धारिन पै घाले॥
तेगधार में जौ तन छूटै। तै रबि भेद मुकत सुख लूटै॥
जैतपत्र जौ रन में पावै। तौ पुहुमी के नाथ कहावै॥
तुम हौ महाबीर मरदानै। करिहौ भूमि भोग हम जानै॥
जौ इतही तुमकौ हमराखैं। तौ सब सुजस हमारे भाखैं॥
तातैं जाइ मुगल दल मारौ। सुनिये श्रवननि सुजस तिहारौ॥
यह कहि तेग मंगाइ बंधाई। बीर बदन दूनी दुति आई॥

दोहा

आदर सो कीन्हें बिदा, सिवा भूप सुख पाइ।
मिली मनौ उर उमग में, भूमि भावती आइ।

छत्रसाल-सैदबहादुर-युद्ध

छन्द

मधु दिन तहाँ मुकाम बजायौ। सुरह्यौ बाउ चाउ चित आयौ।
छरी भार छत्रसाल बुंदेला। सुभट छ सातक आपु अकेला।
सहज सिकार खेल रस पागे। बन बराह मृग मारन लागे।
सैदबहादुर हिम्मत कीनी। खबर जसूसनि सौं सब लीनी।
दल सजि उचकि आनि हंकारयौ। खलभल सहज खेल में डारयौ।
ज्यौं हरिनन को होत हँकाई। उचकि उठे बाघ बिरझाई।
त्योंही सैदबहादुर धायौ। डंका निकट नगीच बजायौ।
सुनि डंका छत्रसाल रिसानै। छत्र धरम को बाँधे बानै।

दोहा

फौज बहादुर सैद की, परी फन्द में आइ।
वाके थल बीरन दई, गोलन गोल गिराइ।

छन्द

गिरी गरज गाजै सो गोली। डग डग चमू अरिन की डोली।
मुगल पठान खेत में जूझे। बैरिन जीत चाल के सूझे।
चमकि चाल तुरकनि त्यौं दीनौ। जीत पत्र छत्ता तहँ लीनौ।
ह्याँते उमड़ि बरावा मारयौ। धूमघाट पर डेरा पारयौ।
गोपाचल में खलभल माच्यौ। सैदमनौवर त्यौं रिस राच्यौ।
जोरी फौज निसान बजाये। धूमघाट पर उमड़त आये।
त्यौं छत्रसाल बीररस बाढ़े। सनमुख भये जूझ कौ ठाढ़े।
माची मार रुद्र अनुराग्यौ। बाजन सार सार सौं लाग्यौ।

दोहा

सेल्ह डकेलन ठेल दल, पिले बुंदेला बीर।
महा भयानक भाँति लख, पगनि डगमगे मीर।

छन्द

डगे मीर तजे खेत पराने। पले बुंदेला रन सरसाने।
मुगल पठान हने जे जूटे। सद सहर भीतर लौं लूटे।
सहर लूट कीनी मन भाई। गढ़ के गेरत रहटो लाई।
लूटि ग्वालियर मुलक उजारयो। हाँ ते दौर कजियौं मारयौ।
गिरिवर मारि करे अरि हीनै। कटया केनच डेरा कीनै।
त्यों महमद हाशिम चलि आये। संग अनन्द चौधरी धाये।
पिले उमड तीन सजि गोलै। तीन्यौ ओर खग्ग झक झोलैं।
ते आवत छत्रसाल निहारे। अख न उमडि तिहूँ दल मारे।

दोहा

तीन्यों गोल बिदार कैं, फतै लई छत्रसाल।
सुध करि त्रिपुर संहार की, नाचे भूत बिताल।

छन्द

छौते हनूटूक कौ आये। भयौ व्याह त्यौं बजे बधाये।
अति आतंक चहूँ दिशि फैले। भये बदन बैरिन के मैले।
होन फतूह लगी मनमानी। चली चौथ चुकि जग में जानी।
सुनत चाह कुंवरन मन कीना। सबन संग छत्रसालहि दीनौं।
रतनसाह त्यौंही चलि आये। अमर दिवान खबर सुनि धाये।
सबलस्याह हितु आये कीनै। केसौराइ मिले मनु लीनै।
धारू अरु कीरति मन भाये। दाम दीवान दीप छवि छाये।
मिले रामजू संगर सूरे पृथ्वीराज बल विक्रम पूरे।

दोहा

माधोराइ बसन्त अ, उदैभान त्यों बर्न।
अमरसिंह परताप तह मल चन्द अरु कर्न।

छन्द

अब सब सुनौ साहिगढ़ बारे। जिन रन मध्य अस्त्र कुक झारे।
आइ इन्द्रमनि मिले अगाऊ। उग्रसेन सम काहि गनाऊ।
जगतसिंह बानैत बुंदेला। रन में करत प्रथम बगमेला।
सकतसिंह त्यों गुननि गरूरे। दान कृपान बुद्धि बल पूरे।
जामसाह अङ्गद मरदानै। मनसिब छाँडि मिले जग जानै।
आये परवतसिंह प्रबीनै। रूपसाह त्यों रन रस भीनै।
देव दिवान प्रेम उर बाढ़े। भारतसाह समर अति गाढ़े।
चन्द्रहंस अरिकुल कौ घाती। मिलौ सुजानराइ कौ नाती।

दोहा

दूजे भारतसाह त्यों, राइ अजीत बलन्त।
बलि दिवान के नंद द्वै, चित्रांगद जसवन्त।

छन्द

रामसिंह जैसिंह बखानै। जादोराई करनजू जानै।
गाजीसिंह कटेरा बारे। दै करनाल दुवन जिन मारे।
जगत सिंह मुनि कबिन प्रमानैं। त्यौ गुपालमनि परम सयानै।
और अनेक कहाँ लगि गाऊं। गनतो सत्तर कुंवर गनाऊं।
केते सगे सोदरे सारे। और पमार अधेरे भारे।
नाते ममा फुफू के जेते। मिले आइ छत्रसालहि तेते।
उच्च निसान दलनि फहरानै। धौंसा धुनि घन से घहरानै।
उमड़ि चली गोलन पर गोलै। दल के भार फनी फन डोलै।

दोहा

लगन लगे कुल कटक में, तंबू तुंग कनात।
झंडा गड़े बजार में, अति ऊचे फहरात।

रनदूलह-पराजय

छन्द

लागी चमू चढ़न चतुरंगै। ज्यों जलनिधि की तरल तरंगै।
ऐंडदार जितही मुनि पावै। फौजें उमडि तहाँ को धावै।
बासा अरु वृन्दावन बार्यौ। प्रलै पथरिया ऊपर पार्यो।
दीनी लाइ निदर निदराई। फौज बहुत राई पर आई।
पहिली पसर रवेड़ी टूट्यौ। कोटा कूट दमोयौ लूट्यौ।
धामौनी मैं धूम मचाई। जब न और की बचै बचाई।
तब खालिक ऐसी मति कीनी। वाकन खबर साह कौ दीनी।
लिखी बहादुरखाँ को ऐसै। बादर फट्यो ढाकियै कैसे।

दोहा

चहूँ चक्क गमड़े फिरत, बड़े बुंदेला बीर।
अमल गए उठि साह के, थके जुझ करि मीर।

छन्द

कोका खबर हजूर जनाई। वहै लिखी वाकन में आई।
सुनत साह मन में अनखानै। भेजे रनदूलह मरदानै।
संग बाइस उमराइ पठाये। आठक लिखे महतो ठाये।
बिदा भये मुजरा करि ज्यौंहीं। बजे निसान कूच करि त्यौंही।
दतया अरु ओंडछौ बगौनी। सजी सिरौंज कौंच धामोनी।
उमडि इंदुरखी चढ़ी चदेरी। पिलि पाडौर जुद्द की टेरी।
ये सुदती उमड़ि चढ़ आये। मनसिबदार तीस ठिक ठाये।
कर्यो गढ़ा कोटा पर पेला। जहाँ सुनै छत्रसाल बुंदेला।

दोहा

उमड्यौ रनदूलह सजे, तीस हजार तुरंग।
बजे नगारे जूझ के, गाजे मत्त मतंग।

छन्द

दिन के पहर तीन तब बाजे। लागी लाग मीर गल गाजे।
त्यो छत्रसाल चढ़ाई भौहैं। अड़े बंब दै भये भिरौहैं।
उमड़ि रारि तुरकन त्यौं माँड़ी। छूटे तीर उड़त ज्यों टांडी।
त्यों रन उमड़ि बुंदेला हाँके। रंजक धुंवन घामनिधि ढाँके।
बाजन लगी बंदूखे सोई। गिरे तुरक जे लगे अगोई।
गिरत हरौल गोल के साऊ। कढ़ि कतार तें ठिले अगाऊ।
लगे खान गोलिन की चोटें। नट ज्यों उछल लाग लै लोटें।
समर बिलोकि सुरन भय कीनो। सूरज सरकि अस्तगिरि लीनो।

दोहा

जोत जामगिन में जगी, लागे नखत दिखान।
रन असमान समान भौ, रन समान असमान।

छन्द

पहर रात लौ भई लराई। गोलिन सर सैथिन झर लाई।
खाइ घाइ सब खान अघाने। लोह मानि तजि कोह पराने।
डेरा कोस द्वैक पर पारे। हिम्मत रही हियैं सब हारे।
अड़े बुंदेला टरै न टारे। जीते जूझ बजाइ नगारे।
रनदूलह रन तै बिचलाये। ह्वाँ तें हनूटूक कौ आये।
मारि गुनाह-मरोरी टोरी। खग्ग झार झागर झखझोरी।
फिरि मवास रतनागर मार्यौ। ओंड़ेरा में डेरा पार्यौ।
दुज दौरन हरथौन उजारी। धामौनी में खलभल पारी।

दोहा

चौंकि चौंकि चहुँ दिस उठै, सूबा-खान खुमान।
अबधौ धावै कौन पर, छत्रसाल बलवान।

तहवर-युद्ध

छन्द

त्यौंही दौर करकरा कूद्यौं । आस पास नरवर कों लूट्यौ ।
सौ गाड़ी सकलात सलोनी । पातसाह कों जात पठौनी ।
सो ताकी छत्रसाल बुंदेला । लई लुटाइ फौज सों पेला ।
सब ही लूट छूट कर पाई । लुंगो मोल मोधुबन लाई ।
लूटी रसद साह की ज्यौंही । वाकन लिखी हकीकत त्यौंही ।
सुनी दिलीस खबर ठिकठाई । सूबा दल को नालस आई ।
रनदूलह डाँडे रएऊमी । पठये साह रोस करि रूमी ।
ल मुहीम रूमी रिस कीनी । मोट उठाई अरे की लीनी ।

दोहा

फौज जोरि रूमी बढ्यो, बाजे तबल निसान ।
छत्रसाल तासों करयौ, बाँसिया मे घमसान ।

छन्द

बसिया में माच्यौ रनखेला । उत रूमी इत बीर बुंदेला ।
तुपक तीर सैथी तरवारे । खात खवावंत बीर हंकारे ।
उमगे भिरत जुद्ध रस पागे । कटि कटि गिरन परस्पर लागे ।
कढ्यौ कल्यानसाह मन आछै । पग परिहार न दीनै पाछै ।
मीर बहबहे उमड़त आये । सनमुख कुटै हटै न हटाये ।
गना रूम के नके बुंदेला । कियौ तुपक्दारनि कों पेला ।
तिन चोटै कीन्ही चितचौती । साखै भई सबनि की रीती ।
गनी रूम कों समर पहारू । बाटन लग्यौ सबनि कौ दारू ।

दोहा

भई भीर गलबल मच्यौ, दारू बाटत लेत ।
लग्यो पलीता सीढरन, उड्यौ धूम उहि खेत ।

छन्द

त्योंही हल्ला बुंदेलनि बोले। समर खेत खगनि के खोले।
लागे मुंह न मारि गिराये। पिलिवन बीर धुंवा पर धाये।
डार उड़े उड़े अरि ज्योंही। मारे बीर बुंदेलनि त्योंही।
रुमी बिडरि खेत तें भाग्यो। छत्रसाल जस जग में जाग्यो।
ज्यों रंग मच्यौ दिल्ली में औरे। दुदिलि भये साह कित दौरे।
नृप जसवन्तसिंह के बेटा। कढ़े दिल्ली को मारिव बेटा।
फिरि जोधापुर धनी अन्यारे। अतिसाह अजमेर पधारे।
त्यो अकबर सहिजादो साऊ। राठौरन पर पिल्यौ अगाऊ।

दोहा

त्यो प्रपंच रचि बुद्धि बल, दुरगदास राठौर।
सहिजादे सो मिलि किये, तखत लैन के डोर।

छन्द

तख्त लैन के लोभ बढ़ाये। पुत्रहिं पितहिं बैर उपजाये।
सहिजादो संगी कर पायो। तब दच्छिनको वाहि चलायो।
ताकी पीठ साह उठ लागे। दच्छिन को उमग रिस पागे।
रुमी भगे साह. त्यो जानै। कारी परी कुल्ल तुरकानै।
बल व्यवसाइ सबनि कै थाके। तब दिलीस तहवर मन ताके।
जानि जुद्ध अमनैक अठायो। तहवरखाँ इहि देस पठायो।
चढ़ी चमू तहवर की बांकी। दिसा धूर धंधरि सो ढाँकी।
ज्यो तहवर की सुनी अवाई। त्योंही लगन ब्याह की आई।

दोहा

साबर तें आई लगन, मिले बोल बंधान।
दवादबे बीरा दियो, अब हितु भयौ निदान।

छन्द

जब दिन निकट व्याह के आये। मगल गीत दुहूँ दिस गाये।
तब दल बलदाऊ संग राखे। लागे करन काज अभिलाषे।

छुरी बरात ब्याह को साजी। तीस सवार बंब अरु बाजी।
दूलह छत्रसाल छबि छाये। करन ब्याह सावरहि सिधाये।
तहँ बिधि सों आगौनो कीनी। बांध्यौ मौर इन्द्रछबि लीनी।
लागो परन भाँवरें ज्यौंही। परी फौज तहवर की त्योंही।
अनी बनी दोई बनि आई। दोऊ बरी करी मन भाई।
इतहि भाँवरें सजी सुहाई। उत तुरकनि सों मची लराई।

दोहा

रन रुपि तहवर खान को, मुह मुरकायो मारि।
पूरन वेद विधान सों, लइ भाँवरें पारि।

छन्द

मारी फौज तुरक मुरकाये। तँह सब धाये बजे बधाये।
ब्याही बरी जीति अरि लीनी। ककन छोडि तुरंगम दीनो।
धामौनी दौरन झकझोरी। फिरि पछौरि सब खरी पिछौरी।
बारी बार मवासी कूटें। गाँउ कलींजर के सब लूटें।
रामनगर मार्‌यौ करि डेरा। कालिंजर को पार्‌यौ घेरा।
रोज अठारह गढ़ सों लागे। चौकिन तहाँ द्यौस निसि जागे।
बाहिर कढ़न न पावै कोई। रहे संक सकराइ गढोई।
लई रोकि चारिउ दिस गैलें। गढ़ पर परें रैन दिन फैलें।

दोहा

चिंतामनि सुर की तहाँ, कीनी आइ सुदेस।
अति आदर सौं लै चले, न्योतौ करि निज देस।

छन्द

न्योतौ करि कीनी महिमानी। धन्य घरी सबही वह मानी।
तातैं तुरी तिलक में दीनो। उर आनन्द परस्पर लीनो।
ह्वाँ तै कूच बिदा ह्वै कीनौ। कालिंजरहिं दाहिनो दीनो।
लरैं उमड़ि तहं सुभट अन्यारे। घाटी रोकि बीर गढवारे।

छत्रसाल त्यों हल्ला बोल्यो। खगगन खेल बुंदेलन खोल्यो।
समर भूमि अरि-छोथिन पाटी। रोकी रुकै कौन की घाटी।
बारि बनहरी लूट मचाई। धामौनी सों लई लराई।
पटना अरु पारौलि उजारे। तहवरखाँ पै परी पकारे।

दोहा

फौज जोर तहवर तहाँ, ठने जूझ के ठान।
गौने में छत्रसाल के, दल कौ परयौ मिलान।

छन्द

परयौ मिलान जाइ जब गौने। करकैं तंबू तनै सलौने।
दहिनी दिसि उतरे बलदाऊ। जहँ गोली पहुँचे पहुँचाऊ।
थम्है अपनी अपनी पाली। परयौ पहार पीठ तन खाली।
ऊपर सिखर चौपरा जान्यौ। सौ देखन छत्ता उर आन्यौ।
छरी भीर कौतुक मन बाढै। चढ़ि करि भये शिखर पर ठाढ़े।
ज्यौं यह खबर जसूसन दीनी। त्यौं तहवरखाँ बाग लीनी।
बखतरपोस सहस दस धाये। प्रलै मेघ से उमड़त आये।
निकट आइ धौंसा वहराने। हयखुरथार छटा छहराने।

दोहा

बड़ी फौज उमड़ी निरखि, रच्यौ छता घमसान।
चढ़ि सनमुख रनमुख तहाँ, बरषन लाग्यौ बान।

छन्द

बरषन लाग्यौ बान बुंदेला। कियौ तुरक दै ढ़ाल ढ़केला।
बखतर पोस बान सों फूटे। नल से छतज छांछ के छूटे।
कौतुक देखि जोगिनी गाई। खप्पर जयनि माजती धाई।
बिसुनदास तहं मार मचाई। ओप कटेरहि भली चढ़ाई।
गह्यो पहार बुंदेला गाढे। त्यौं पठान पैठे मन बाढ़े।
चंड लेहु दुहूँ दिसि ठहराने। सूरज गगन मध्य, ठहिराने।

दोहा

कहुर जूझ द्वै पहर भौ. झरय सार सो सारु ।
तेज अरिन कौ त्यों घट्यौ, लोथन पर्यो पहारु ।

छन्द

बारह बीर खेत इत आये । सत्ताइस घाइल छवि छाये ।
तुरक तीन मै खेत खपाये । वाइल द्वै सै बीस गनाये ।
मारि तुरक को मुंह मुरकायौ । रन में बिजै बुंदेला पायौ ।
मुरके तुरक खगा फिर खोल्यो । बल दिवान पर हल्ला बोल्यौ ।
बजे नगारे फेर जुझाऊ । रन मे रूप्यौ उमड़ि बलदाऊ ।
पहर राति भर मार मचाई । मुरक्यो तुरक उहां खम खाई ।
ओड़ि अरिन के ढाल ढकेला । भलौ लर्यौ बलकरन बुंदेला ।
खभरि खेत तहवर बिचलायौ । सूबन के उर साल सलायौ ।

दोहा

सले सात सूबानि के, धक्कनि हले पठान ।
दियो भाल छत्रसाल कै, राजतिलक भगवान ॥

श्रीधर (मुरलीधर)

श्रीधर का ही दूसरा नाम मुरलीधर था। कुछ विद्वान् दोनों नामों से भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का तात्पर्य लेते हैं। शिवसिंह-सेंगर तथा डा० ग्रियर्सन का मत है कि श्रीधर तथा मुरलीधर भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे और दोनों मिलकर कविता करते थे। किन्तु 'जंगनामे' के एक दोहे से इस भ्रम के लिये स्थान नहीं रह जाता। वह दोहा निम्नलिखित है—

परिचय

"श्रीधर मुरलीधर उरुफ, द्विजवर बसत प्रयाग।
रुचिर कथा यह शाह की, बरन्यौ कथन अनुराग।३॥"

[जं० ना०, पृ० १]

इनके परिचय के संबंध मे विशेष ज्ञात नहीं है। उक्त दोहे से केवल यही निश्चय होता है कि वे प्रयाग निवासी थे। इन के द्वारा रचित एक अन्य ग्रन्थ—'कविविनोदपिंगल' भी बतलाया जाता है, जैसा कि निम्निलिखित दोहे से सिद्ध है—

"श्रीधर मुरलीधर कियो, निजमति के अनुमान।
कविविनोद-पिंगल सुखद, रसिकन के मनमान॥"

इनकी रचनाओं का एक संग्रह "रत्नाकर" जी ने प्रकाशित कराया था। उसमे "जगंनामा" तथा "कविविनोद-पिंगल" के अतिरिक्त एक संगीत-ग्रन्थ, एक नायिकाभेद संबंधी ग्रन्थ तथा एक जैनसाधु-सबंधी-ग्रंथ और मिलते हैं। किन्तु श्रीधर की ख्याति का स्तंभ "जंगनामा" ही है। इन्होंने श्रीकृष्णचरित्र तथा चित्रकाव्य-सम्बन्धी कुछ स्फुट कविताओं की भी रचना की थी। 'जंगनामा' के सम्पादक

स्व० श्री राधाकृष्णदास ने इनके एक अन्य ग्रंथ की भी चर्चा की है, जिससे कवि के जीवन पर कुछ और भी प्रकाश पड़ता है। आप भूमिका मे लिखते हैं—

"प्रयाग मे एक कवि मुरलीधर मिश्र भी हुए है।... ... इनका बनाया 'रामचरित्र' नामक ग्रंथ (हस्त लिखित) प्रयाग के 'भारती-भवन' मे संरक्षित है।....यह ग्रंथ सं० १८१८ मे बनाया था। कवि ने लिखा है कि सब जन्म स्वार्थ मे बिता कर अब यही निश्चय करके कि अंत मे राम के गुण गाकर परमार्थ सिद्ध करना चाहिये, इस ग्रंथ को बनाया।... . इन्होने अपनी वंशावली का वर्णन इस प्रकार से किया है कि यमुना गंगा के बीच (प्रयाग ?) एक गॉव है, वहाँ परमानन्द नामक बड़े पंडित थे। उन्हें अकबर ने अपने दरबार मे स्थान दिया था·· ...। उनके बेटे कपूरचंद, उनके पुरुषोत्तम (शाहजहॉ के समय मे) उनके प्रेमराज, उनेक पृथ्वीराज, उनके दिनमणि, उनके कई बेटों मे यह मुरलीधर हुए।❀

यदि श्रीधर और मुरलीधर दोनो एक ही व्यक्ति हैं तो श्रीधर की वंशावली भी यही मानी जानी चाहिये और "राम-चरित्र" उनकी एक अन्य रचना।

उनके जीवन-काल तथा कविता-काल के सम्बन्ध मे भी कुछ ज्ञात नहीं: केवल अनुमान का आधार शेष रह जाता है। डा० ग्रियर्सन ने इनका समय सन् १६८३ लिखा था; किन्तु "जंग-नामा" की रचना सं० १७६६ अर्थात् सन् १७१२-१३ मे हुई। अतः यह तिथि अशुद्ध है। "जंगनामा" के एक अन्य सम्पादक विलियम अरविन ने जंगनामा की तिथि के आधार पर श्रीधर का समय उससे तीस वर्ष पूर्व अर्थात् सन् १६८३ निश्चित

❀ जंगनामा, भूमिका पृ० २२।

किया। पं० रामचन्द्र शुक्ल को भी कदाचित् यह अनुमान ठीक जंचा, इसीलिये उन्होंने अपने इतिहास में लिखा है—

"श्रीधर या मुरलीधर प्रयाग के रहने वाले ब्राह्मण थे और सं० १७३७ के लगभग उत्पन्न हुए थे।"*

"इनका कविता-काल सं० १७६७ के आसपास माना जा सकता है।"†

जंगनामा

जगनामा की रचना सं० १७६६ वि० में हुई। इसमें जहाँदार-शाह तथा फर्रुखसियर के बीच हुए तीन युद्धों का वर्णन है।

सारांश — गणेश की वंदना के पश्चात् कवि बहादुर-शाह के परलोक-वास के बाद की घटना से कथा का आरम्भ करता है। बंगाल में महाजनों की आपस की चिट्ठी से फर्रुखसियर को बहादुरशाह की मृत्यु का समाचार विदित हुआ। उसने सैन्य-संग्रह करना आरम्भ कर दिया, किन्तु इसीबीच में उसको समाचार मिला कि जुलफिकारखाँ तथा अन्य अमीर उमरा मुईजुद्दीन से मिल गए हैं और उसे उन्होंने जहाँदारशाह के नाम से दिल्ली का सम्राट घोषित कर दिया है। फर्रुखसियर ने जहाँदार के साथ युद्ध करने के लिए बंगाल से कूंच किया। बादशाह ने भी यह सुनकर अपने पुत्र को ५०००० सिपाहियों की सेना देकर आगरे की ओर भेजा। फर्रुखसियर ने सैयद अब्दुल्ला खाँ (इलाहाबाद के सूबेदार) को पत्र लिखा, जिसके अनुसार सैयद ने सराय आलमचन्द में डेरा डालकर शत्रु का रास्ता रोक लिया।

---

*हिन्दीसाहित्य का इतिहास (नवीनतम संस्करण) पृ० ३२४।

† हिन्दीसाहित्य का इतिहास (नवीनतम संस्करण) पृ० ३६८।

दोनों सेनाओं की पहली मुठभेड़ सराय आलमचन्द में ही हुई जो इलाहाबाद जिलेमें भरवारी स्टेशन के पास है। शाही सेना की ओर से अली असारखाँ, जुलफिकारखाँ, जैनदीखाँ, फतह अलीखाँ आदि उमराव सम्मिलित थे और फर्रुखसियर के पक्ष में सैफुद्दी अलीखाँ, निजामुद्दी अलीखाँ; सिराजुद्दी अलीखाँ, राजा रतनचन्द, दरवेश अलीखाँ आदि कितने ही वीर थे। इसयुद्ध में फर्रुखसियर के पक्ष की विजय हुई और शैफुद्दी अलीखाँ तथा निजामुद्दी अलीखाँ दोनों विजयी सरदार इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्लाखाँ के पास पहुँचे। सैयद ने सैनिकों को पारितोषिक-वितरण किया और इस विजय का समाचार तुरन्त फर्रुखसियर के पास भिजवाया जो उस समय पटने में था।

द्वितीय युद्ध फतेहपुर जिले के विदकी नामक स्थान में हुआ। इसमें जहाँदारशाह के पक्ष में लड़ने वाले मुख्तार खाँ को पराजय हुई और वह मारा गया। शाही सेना तितर-बितर हो गई। फर्रुखसियर के सैनिकों ने खूब लूटमार की।

दूसरे दिन फर्रुखसियर ने दरबार किया और अपने सहायकों को ऊँचे ऊँचे पद तथा खिताबों से विभूषित किया। इधर सैयद अब्दुल्ला खाँ ने अपने बुद्धिमान वजीर को दिल्ली भेज कर वहाँ की सच्ची परिस्थिति का पता लगा लिया। ज्ञात हुआ कि जहाँदारशाह रात-दिन नशे में चूर रहता है और उसका दरबार भी चंडखाना बन रहा है। रात-दिन ढोल-मृदंग, शराब-अफीम, रंडी-छोकरों की ही धूम है।

परिस्थिति अनुकूल देखकर फर्रुखसियर शीघ्रता से आगे बढ़ा। अंतिम युद्ध आगरे के पास सिकन्दरे में पूस सुदी १५ सं० १७६९ को आरम्भ हुआ जिसमें जहाँदारशाह स्वयं उपस्थित

था। घोर युद्ध हुआ जिसके अंत में जहाँदारशाह पूर्णरूप से पराजित हुआ और दिल्ली की ओर भागा।

इन्हीं तीनों युद्धों का वर्णन विस्तार से जंगनामे में किया गया है। यह ग्रंथ ६६ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। यद्यपि इसमें तीन जंगों का वर्णन है किन्तु इसको अध्याय इत्यादि में विभाजित नहीं किया गया है। प्रस्तुत-संस्करण स्व० राधाकृष्णदास तथा किशोरीलाल जी द्वारा संपादित है और नागरी प्रचारणी सभा की ओर से प्रकाशित हुआ है। विलियम अरविन साहब को श्रीराधाकृष्णदास की ही कृपा से इसके कुछ अंश प्राप्त हुए थे, जिनको उन्होंने सन् १९०० में अपनी टिप्पणियों के साथ बंगाल-एशियाटिक-सोसाइटी के तत्वावधान में प्रकाशित कराया था।

ऐतिहासिकता

बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों में सिंहासन के लिये जो परस्पर संघर्ष हुआ, जंगनामे में उसी का वर्णन है। बहादुरशाह के चार पुत्र थे—(१) मौइजुद्दीन (जहाँदारशाह) (२) अजीमुश्शान (३) रफीउश्शान (४) शाहजहाँ बादशाह का विशेष प्रेम द्वितीय पुत्र अजीमुश्शान से था। उसकी मृत्यु के समय उसके पास लाहौर में अजीमुश्शान ही था। किंतु उसपर शेष तीनों भाइयों ने मिलकर आक्रमण कर दिया।[१] उसका हाथी एक गोला खाकर ऐसा बिगड़ा कि पीलवान तथा अजीमुश्शान के साथ रावी में कूदकर डूब गया। तीनों भाइयों में बराबर राज्य बाँटने का विचार जहाँदारशाह को पसंद न आया और उसने दोनों भाइयों पर आक्रमण कर उन्हें

१ स्मिथ, हिस्ट्री ऑव इन्डिया, पृ० ४१२।

मार डाला और अपने को दिल्ली का सम्राट घोषित किया।❀ इस कार्य में आसदखाँ के पुत्र जुल्फिकारखाँ ने बड़ी सहायता पहुँचाई।† जंगनामा में इसका उल्लेख निम्निलिखित रूप में है—

"फेरि खबरि दिन दसक मैं, साँची पहुँची आइ।
जुलफिकार उमराव सब, मिले मौजदिहि जाइ ॥१८॥
× × × ×
मौजदीन सिर छत्रधरि, कुतबा कुटिल पढ़ाइ।
चल्यौ दिली को चहुँ दिसा, लिखि फरमान पठाइ ॥२०॥
[जं० ना०; पृ० १]

फर्रुखसियर अज़ीमुश्शान का पुत्र था। उसको जब अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला तो दलबल के साथ वह दिल्ली पर आक्रमण करने के विचार से चला। जहाँदारशाह ने भी अपने पुत्र को ५०००० सैनिकों के साथ सामना करने के लिये भेजा। श्रीधर ने इस युद्ध के प्रसंग मे जितने नाम गिनाए हैं वे सब तो किसी इतिहास में नहीं मिलते (मिल भी नहीं सकते कारण कि वे प्रायः २५० से अधिक ही हैं) किन्तु उनमें से अधिकांश, ऐतिहासिक है। उदाहरण के लिये जुलफिकारखाँ (वज़ीर) सैयद अब्दुल्लाखाँ, "कुतबुल्मुल्क" (सैयद भाइयों में से एक तथा इलाहाबाद का सूबेदार) हुसेन अलीखाँ, (दूसरा सैयद भाई और पटना का सूबेदार) कोकिल ताशखाँ, आज़मखाँ तथा कुली अलीखाँ इत्यादि के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

इतिहासों मे जहाँदारशाह को बड़ा विलासी तथा अयोग्य चित्रित किया गया है। वह दिन-रात शराब में मस्त रहता था

❀ सरकार और दत्त; मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री; पृ० २२०।
† वही; पृ० २२०।

और उसका दरबार भी ऐसे ही दुष्ट व्यक्तियों से भरा रहता था। उसने "लाल कुंवर"* नामक एक वेश्या को महल में रख लिया था। वह सारे कार्य उसी के संकेत पर करता था। फल यह हुआ कि सच्चे ईमानदार आदमियों को हटाकर उनके स्थान पर लालकुंवर से सम्बन्धित व्यक्तियों को ऊँचे-ऊँचे पद दिये गए।†

श्रीधर ने यद्यपि लालकुंवर का नाम नहीं दिया है फिर भी जहाँदारशाह का चरित्र-चित्रण वैसा ही किया है जैसा इतिहासों में मिलता है। निम्न-लिखित पंक्तियों से यह बात सिद्ध हो जाती है :—

"इत मौजदीं मगरूर मस्त अलस्त अमलैं खाइकै।
सिगरे कलाँवत है अमीर भरे रहे चित चाइकै॥
× × × ×
दारू सु दारू भरत गोली अमल गोली रंग की।
मिरदंग ढोलक तोप औसुर नाइ रीति तुफंगकी॥
× × × ×
कहुं छोकरे बागे बने दरबार कुंअरिन राहकी।
यह मौजदीं की मौज है गति और नाहि निबाह की॥"

[जं० ना० पृ० २८]

अरविन साहब ने "बंगाल-एशियाटिक-सोसाइटी" वाले लेख में जंगनामा की कुछ घटनाओं को अनैतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

सैयद अब्दुल्ला इलाबाद का सूबेदार था, इसका पहले ही निर्देश किया जा चुका है। किन्तु जंगनामे में उसे पटना के

---

* लाल कुंवर, प्रसिद्ध गायक तानसेन की वंशज थी।

† अरवेन; 'दि फाल ऑव दि मुगल इम्पायर; पृ० १३३, सरकार और दत्त; मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री, पृ० २२१।

युद्ध में उपस्थित दिखलाया गया है। उसमें मीरजुमला को जहाँदारशाह के विरुद्ध लड़ते हुए चित्रित किया गया है और युद्ध की तिथि पूस सुदी १५ सं० १७६६ दी गई है। अरविन के अनुसार ये तीनो अशुद्ध हैं। किन्तु यह उनका भ्रम था।

पहली घटना के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि पटना और इलाहाबाद मे इतना अंतर नही है कि सैयद अब्दुल्ला का दो चार दिन के लिये पटने मे पहुँच जाना असम्भव कहा जा सके। सम्भव है फर्रुखसियर की सहायता करने के निमित्त वह दो-एक दिन के लिए वहाँ पहुँच गया हो।

दूसरी घटना के सम्बन्ध मे सम्पादक महोदय (अरविन) को अर्थ समझने में ही भ्रम हो गया है। जिस दोहे से यह भ्रम उत्पन्न हुआ वह इस प्रकार है—

"तहँ मोर जुमला वीर बुद्धि गम्भीर बाहु विशाल।
मड़िरह्यो मौजुद्दीन को कटक गहि करबाल॥"

यहाँ उन्होने "मड़ि" का अर्थ विरोध में युद्ध करना लिया है। जब कि वास्तविक अर्थ है 'मिल जाना'।*

तिथि के सम्बन्ध मे अरविन साहब का मत अवश्य मान्य है। जंगनामे मे तीसरे युद्ध की तिथि निम्निलिखित रूप मे दी गई है—

"सम्वत् सु सत्रह सै औन्हत्तरि पूस पून्यो बुधतहीं।
सन् सो इग्यारह तेंतिसा माहे मुहर्रम चौदहीं।"

[जं० ना०; पृ० ४५]

इसप्रकार श्रीधर के अनुसार यह तिथि पूस सुदी १५ सं० १७६६ बुधवार, चौदहवीं मोहर्रम सन् ११३३ हिजरी को पड़ती है। अरविन साहब ने दूसरे इतिहासो के साक्ष्यो तथा गणित

* जंगनामा, भूमिका; पृ० २३-२४।

के आधार पर इस तिथि को माघ वदी १०, सं० १७६९ अथवा १३ जुलहिज्ज, सन् ११२४ हि० (ता० ११ जनवरी सन् १७१३ ई०) को पड़ना निश्चित् किया है।*

आलोचना

धन-प्राप्ति के लोभ मे पड़कर फर्रुखसियर को काव्य का चरित्र-नायक चुनने के कारण 'जंगनामा' एक साधारण कोटि की रचना हो गई है। ग्रन्थ भर मे केवल थोड़ा सा अंतिम अंश, जिसमे कवित्त और छप्पय ही अधिक है, सरस हो पाये है, अन्यथा अनावश्यक नामो तथा नीरस-पंक्तियो से ही खीच तान कर ग्रन्थ लम्बा करने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। ग्रंथ के आरंभिक १६ पृष्ठो (पृ० ७-२२) मे केवल नामो की ही भरमार है। गणना करने पर २५० से अधिक नाम मिलते है। ६६ पृष्ठों के ग्रन्थ मे सोलह पृष्ठ केवल नामो से ही रंगे हुए है। कुछ स्थल तो ऐसे है जहाँ चार शब्दो की पंक्तिवाले छन्दो मे निरन्तर एक-एक पंक्ति मे एक-एक नाम मिलता चला जाता है। एक स्थान पर चार पृष्ठो (१८-२३) की १२० पक्तियों मे १०० से अधिक नाम आ गए हैं। उदाहरण के लिये नीचे कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

> "फतेह अली सैद संगी।
> सैफ सैफुल्लाह जंगी॥
> असद अलीखाँ वीर धाया।
> अस्व आतश खाँन पाया॥
> सज्यौ रहमत खान बलहद।
> मुत्तहौवर खान जेहि पद॥

---

*जगनामा, भूमिका; पृ० १४।

सैद अनवर खाँ धनुद्धर।
मीर मुहलनखाँ सज्यो फिर ॥'

[जं० ना०, पृ० १८]

इन मीरों और खानों की धृ-धकड़ में हंसवाहिनि के दर्शन कहाँ? फिर बीच-बीच में कहीं-कहीं डिंगल कविता की संयुक्ताक्षरों वाली परंपरा का भद्दा अनुकरण भी मिल जाता है।

यथा—

"सजे पक्खरां भक्खरो लक्ख वोरे।
मनो भान जूके रथी जोर जोरे॥
करें पौन सी पौन की पायदारी।
अरब्बी गरब्बी खुरीले खंभारी॥"

[जं० ना०; पृ० २३]

दूसरी त्रुटि छंदों के चुनाव के सम्बन्ध में है। इन्होंने ग्रंथ भर में बारह प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है, जिनमें केवल छप्पय कवित्त तथा भुजंगप्रयात ही वीर-रस प्रधान काव्य के उपयुक्त है, शेष ६ प्रकार के छन्दों में वीर-रस की सफल-कविता करना प्रतिभाशाली कवियों के लिये भी कठिन है। पादाकुल, अधमा, मधुमार, अर्द्धक, हरिगीतिका, हुलास, आदि ऐसे ही छंद है। कहीं-कहीं एक छंद के बीच में असावधानी के कारण दूसरे प्रकार का छंद अकारण ही घुस पड़ा है। उदाहरण के लिये हुलास के बीच में अकेला भुजंगप्रयात आ गया है।

[जं० ना०; पृ० ४०]

इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं 'यति-भंग' तथा 'छंदोभंग' दोष भी मिल जाते हैं।

जैसे—

"अति दलभर दबत पुहमिस पबत, उदभट सबत धकनि सकें॥"

इसमें दव्वत, पव्वत, सव्वत करके पढ़ने से यति ठीक बैठती है। इसीप्रकार एक अन्य उदाहरण देखिए—

"गिरिधर लाल बहादुर बीर समसेर गाहि कर पातसाही का पनास्वो।"

इसमें 'सम' को 'सेर' से पृथक करके पढ़ने से छन्द ठीक बैठता है।

जंगनामा के कवि की विशेषता यह है कि सूदन, मान आदि की भाँति इन्होंने शब्द-नाद का अधिक प्रयोग नहीं किया है। फिर भी कहीं-कहीं निरर्थक-शब्दों का उपयोग मिलता है। जैसे—

> "भराभरी गोलन की झराझरी तेगकी।
> कटारिन की कराकरी तरातरी तीरकी॥"
>
> [जं० ना०, छं० ६८]

इन त्रुटियों के रहते हुए भी कहीं-कहीं घटनाओं का बड़ा सजीव-चित्रण मिल जाता है। उदाहरणस्वरूप एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है। यह पद्य उस समय का है जब जहाँदार शाह का शराबी दरबार जमा हुआ था और इसीके बीच उसकी सेना के पराजय का समाचार एक दूत द्वारा मिलता है। उस समय के रंग में भंग का वर्णन कितना सुन्दर है—

> "यह सुनत एजुद्दीन भाग्यो फौज सङ्ग सबै भगी।
> वह सकल मजलिस मौज में इक बारगी दुखसों पगी॥
> तब लगी मुख विष सी बिरी अरु गीत गारी सी लगी।
> अंग अमल की लालीवटी तदबीर औडर रिस जगी॥
> कहुँ परी ठिनगत ढोलकी सुधि ताल घुघुंरू की गई।
> सब गयो मद छुटि छाकसो रहि ऊहि आहि दई दई॥"
>
> [जं० ना० पृ० २६]

भय का कितना सजीव-चित्रण है। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसे स्थल बहुत कम है। जैसा पहले कहा जा चुका है, ग्रंथ का अंतिमअंश (१५ पृष्ठ) साहित्यिक-दृष्टि से उत्तम है। कारण यह है कि उसमें कवित्त और छप्पय ही अधिक है, जो वीर-रस के लिए सर्वथा उपयुक्त है उदाहरणस्वरूप एक कवित्त नीचे उद्धृत किया जाता है—

"भालनि सों भाला भिर्‌यौ बरछासों बरछनि,
　　सरे समसेर समसेरेंनि सुखंग मैं।
तीरन को कीनो तन तीरनि तुनीर तोर,
　　तोरादार जोरन न पावत सुफंग मैं।
जंग सुलतानी मैं कानी कैसौ कीनो काम,
　　श्रीधर • छबीलेराम राजा रन रंग मैं।
साढे तीन हाथ कद दसहथा हाथी चढ्यो
डोई हाथ होत है हजार हाथ जंग मैं॥'

[ज० ना०; पृ० ६२]

सारांश यह कि श्रीधर में उत्तम काव्य-रचना की प्रतिभा वर्तमान थी अवश्य, किन्तु मुद्रा के लोभ में पड़कर कवि को उसे कृत्रिमता का बाना पहनाना पड़ा। मुद्रा-प्राप्ति के लोभ में उसे फर्रुखसियर जैसे बादशाह की विरुदावली गानी पड़ी और जैनसाधुओं को ब्रह्मा-विष्णु-महेश तक बनाना पड़ा तथा अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए नायिकाभेद-ग्रन्थ लिखना पड़ा।

भाषा

जंगनामा की भाषा परिष्कृत तथा व्याकरण सम्मत ब्रजभाषा है; परन्तु जैसा कि उसकाल के अन्य कवियों

ने किया है, श्रीधर ने भी कहीं-कहीं डिंगल और बुंदेली के शब्दों का प्रयोग किया है। वस्तुतः ऐसे प्रयोग अपवाद स्वरूप ही आये हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित-पद्य में डिंगल के रूप रखे गये हैं—

परी पक्खरैं झालरा झूल झाँपै।

× × × × ×

सजे पक्खरो अक्खरो लक्ख घोरे॥

इसीप्रकार बुंदेली के शब्द भी यत्र-तत्र स्वतंत्रता पूर्वक रखे गये हैं। 'मिले ओपची तोपची यों घनेरे' में 'ओपची' शब्द कुछ विद्वानों की दृष्टि में केवल तुक मिलाने के लिए कवि द्वारा गढ़ा गया है। परन्तु यह कथन निर्विवाद नहीं। कारण यह है कि यह शब्द पद्माकर और लाल जैसे बुंदेलखण्डी कवियों की रचनाओं में भी आया है। वास्तव में यह शब्द बुंदेली का ही है और यहाँ के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है।

डिंगल की द्वित्त-वर्णों वाली पदावलियाँ भी अधिक प्रयुक्त हुई हैं—

भट्ट ठट्ट ढट्ट भट्ट भट्टहरि आमट्टे हरि।
उद्धत जुद्धत क्रुद्ध सुद्धगज्जत जिमि केहरि॥

अथवा

कोपप्पर्कारे प्यानप्पथि वन ध्वानद्धलकन।
लच्छच्छहरि वरच्छच्छवि वर स्वच्छच्छलकत॥

इनकी भाषा में अवधी का पुट भी पाया जाता है—

दुहुँ ओर फौजै साजि यों गलगाजि भट ठाढ़े भये।
खुर धार भार दुधार सो धरि छार सूरज झंपये।

लाल, मान आदि की भाँति लम्बी सूचियाँ गिनाने की प्रवृत्ति से बचे रहने के कारण श्रीधर की भाषा अधिक गम्भीर और प्रभावशाली हो गई है ।

कवि ने शब्दालंकारों में यमक का प्रयोग विशेषरूप से किया है ; कहीं-कहीं ये प्रयोग सुन्दर बन पड़े हैं—

'संग के तन खान दौरा । मनहुँ उनको खान दौरा ।'

में 'खान' शब्द का प्रयोग ऐसा ही है । इसीप्रकार निम्न-लिखित पद में 'दान' शब्द के प्रयोग से यमकालंकार की सुन्दर छटा है ।

जे सुमन दान देत है । जिय देत भागे ठगठगे ।
जे दन निरखे दान में । जिय दान हू में जगमगे ।

अनुप्रास के भी कहीं-कहीं सुन्दर उदाहरण मिलते है परन्तु कवि उसके लिए प्रयत्नशील नहीं दिखाई पड़ता । निम्न-लिखित पंक्तियों मे अलंकार का निर्वाह स्वाभाविकरूप से हुआ है ।

खोपरा लौं खोपरनि फोरें गन कत गद,
पोरी लौं पलासी खाल खैंचि खैंचि खात है ।
पाखर मे खापरनि चहुवा चुरैलनि के,
चाइ भरे चर चर चपरि चबात है ।

जंगनामा

फर्रुखसियर-जहांदारशाह

युद्ध-वर्णन

छप्पय

फर्रुकसियर समत्थ शाहजहाँ दल सज्जयो ।
पक्खर पक्खरि बहुल बार बारन दल गज्जयो ।
श्रीधर धोंसा धमक घोर दमहूँ दिसान भर ।
चमकत नेजे फहर बान बैरख निसान बर ।
भुव दलत मलत जेहि दिग्गि चलत, सक सोर चहुँ श्रक हुव ।
अति श्रक धुंधरित धूरि मढ़ि आफताब ध्रुव लोक धुव ।

कौन सबल बल उथपि निबल बलकाहि सुथप्पिहि ।
केहू महीप को मुलुक मीडि अब काहि समप्पिहि ।
काहि पाँय गज रज्ज करिहि केहि पील पीठि पर ।
खग्ग धर्निहि केहि थर्रिहिं ढरिहिं केहि नमकि तेग तर ।
अबहि मँडहि खँडहिं सों केहि, बड बाढ गढ़पति थरथर्‌यो ।
सजि शहंशाह फर्रुकसियर, सो अब और हम पज्जरयो ।

भुजंगप्रयात छन्द

दुहू ओर साजे महा मत्त दंती ।
सजे पक्खरों लक्खकी पूर पन्ती ।
गडादार घेरें तिरी कट्ठ बंटा ।
गजें मेघ मानो बजें घोर घंटा ।
घटा स्याम सी दीहता बिंधिमा पै ।
परी पक्खरें झालरा झूल झाँपै ।

सजे दक्खनी भक्खरी लक्ख घोरे ।
मनो भानुजू के रथी जोर जोरे ।
चले चाइ सों चंचले चाल बाँकी ।
दरयाई तुरकी तजीले इराँकी ।
करें पौन सी पौन की पायदारी ।
अरब्बी गरब्बी खुरीले खंभारी ।
नचै नाटकी से पटी के चन्हावी ।
कछी पीठ पूठौ पले नीर रावी ।
सजे मंदली और समुंदे सुरंगे ।
कबूतो बने फूलवारी सुअंगे ।
सजे ओज सजाफ नीले हरीले ।
मुसुकी सजे पञ्च कल्यान पीले ।
बड़े ढोल के कान छोटे नवीने ।
सुचौरी खुरी चाकरी जासु सीने ।
बड़े चंचलें नैन के, मुक्ख साँचे ।
खुरी पाल भूमै घनी दोप बाँचे ।
सजे साजियों चारिहूँ ओर योधा ।
सजे साज लोहा बँटो क्रुद्ध क्रोधा ।
पिले चारिहूँ ओर सूबे गरूरी ।
जिन्हों बार कै शत्रु की फौज चूरी ।
कहाँ लौं कहौं फौज मे सूर राजे ।
कितेको बली लै बंदूखैं गराजें ।
सबै सूरवाँ बीर बाँके बनैते ।
सजे साज बाजी चढ़े हाँक दै ते ।
कढ़े फौज सों डाँक घोरें धपावे ।
कितै कूद कै कै सु भाले फिरावै ।
लख्यो दूसरी ओर गाढ़ो अनी को ।

चढ़ो कोपि के पूत दिल्ली धनी को।
दुहूं ओर ठाढी चमू वाहि राकै।
दुहूं ओर की फौज ठाढी बिलोके।
सुफरुकसियर शाहि के जोर सूबे।
पिले चारिहूं अर मार्ने अजूबे।
बजी दीह धौंसानि आवाज अच्छी।
चहूंघा लखीजै बरच्छी बरच्छी।
छुटैं त्यों अरावे उठी धूरि भारी।
धुवाँ की उठी धुंधुरारी अँध्यारी।
बड़े राशनी ऊपरी बान छूटैं।
मनो आसमानी महा लूक टूटैं।
पिले चट को खट के चारि फेरे।
मिले ओपची तोपची यों घनेरे।
चहूं फौज की वीरता की बडाई।
चमूँ शत्रु की चूर कै कै हटाई।
बली उत्तरी फौज के गर्व ऐंठे।
महा मोरचा भीड़ि के पेलि पैठे।
लख्यो एजुदी बार छूटो दुवारो।
परी भाग भाग्यो तकै कोइ नारो।
सँभारे न घोरे रथी हेम हाथी।
सँभारे न कोऊ कछू संग साथी।
किहूँ छाँडि घोरैनि डारयो हथ्यारो।
किहूँ भाग सों आगेही पथ धारो।
करे कोऊ हाहा परै कोऊ पैयाँ।
चले रामरे गाँव झेंका बकैयाँ।
घुसे बीहरो भागि केते निकामी।
किते को करे बन्दि नामी निनामी।

कितै को गुमानी गरूरे निछाए।
बड़े हांमिला कै तिया संग लाए।
तिन्हैं छोडि भागे छुटी चाल बाँकी।
गये छूटि ताले फटो होस नाकी।
सु रोवै असीले फसीले सहेली।
पुकारें खुदा आय है कौन मेली।
गरोढ़ा बरो झांकि झौके मुरोमै।
सबै मौजदी कों भरे नैन कोसै।
कहूं बैदरा को बडी धूम धाई।
चढ़ें बुच्च लुच्चानि लै आग लाई।
बरैं छावनी छांह डेरा मुभारी।
महाभीम फैली धुवाँ की अँध्यारी।
कहूं आँच के तेज सों लाल फूटैं।
कहूं बैदरा बीर बाजार लूटैं।
कहूं बाँस की गाँठ फूटैं पटक्कै।
चटापट्ट पाषान भारी पटक्कै।
लुटै केसरी दाख दारयो छुहारो।
लुटै चारु कस्तूरिका बद्ध सारो।
कहूं होत मोती बरैं चूर चूना।
कहूं जै लुटेरे करैं मोट दूना।
जरैं चार आचार जूरी चिरौंजी।
कहूं कौलगट्टे कसेरू करौंजी।
जरैं औ लुटैं चीर चीरा जरी के।
परे मोट के मोट लूटैं परी के।
भये बैदरा जौहरी लूटि लूटैं।
छिटे ज्वारि लौं मोट मुक्तानि छूटैं।
किती तो जरैं हाय हा रट्ट लागी।

किती कामिनी दामिनी रूप भागी।

हरिगीता छन्द

दुहूँ ओर फौजें साजि यों गल गाजि भट ठाढ़े भए।
बाजे नगारे फीलवारे धम्म धुनि धुव कम्पए।
खुर थार भार दुधार सों छुटि छार सूरज झंपए।
तहवहलकी झुकि मेरु हहलत पहल सम भुव कंपए।
दुहुँ ओर फौजनि ओज सों रन मौज देखा देख भो।
हथ नाल तोपे बान जाल विशाल गरज अलेख भो।
घोर नाल अँदोर दुहुँ दल रह कलास विशेष भो।
फर बजी बहकि बदूख अगनित तित बनैतनि नेख भो।
कड कडाकड सों अरावे छुटत टपकनि टाप की।
चहुँ ओर घोर घटा मढ़ी धुंवधार तोप तराव की।
बर बान बगरत, बीजुरी सन गोल ओला थाप की।
नहि पहर एक पिछानि काहू रही पर की आपकी।
छुटि गयो सो धुंधुकार र्या भिनुसार सों दुहुँ दिसि भयो।
ललकार बीर अमीर सांवत चॉप सरकर बर लयो।
दप करत आगे बाजि बागे मौन मोद मने भयो।
बज उठे मारू मारु मारु अँदोर रनमण्डल छयो।
तहँ नीर तर तर बान सर सर सुभट भर गोला चले।
पग पिलत आँगहि आंगही सांवंत भूप भले चले।
भट लालमुख सुख भरे पीरे रंग कायर हलहूले।
जिमि देखि जाचक दानि सुखमुख सूम दुखमुख वे कले।
इत उत दुहूँ दल के जिजे जे बीर बीर बीरी बिरे।
ते करन साके बलिक बांके हांकि भट भट सों भिरे।
शमसेर सरकि सिरोह बार सँभार सांवत सिर चिरे।
दीनी झमाझम झमकि झर झर झूमि झूमि किते गिरे।

तहं दौरि अगवर ह्वै सिधारयो धनी मुशरफ मीर है।
निन मीर बुजरुक मीर अशरफ नाम्नु वीर सुबीर हैं।
तब जुलफिकार गह्यो महाबल जुलफिकार अमीर हैं।
झमकी दुधारनि सार सार दुधार वीर धीर है।
तहं अलीअसगरखां महाबल महति पहुँचो जाइ कै।
फिर जैनदीखां बीर पहुंचो तेग अंग अंगाइ कै।
फत्तहअलीखां सफशिकिनखां भये शामिल आइ कै।
पहुँचो हुसेनअलीयखां धौंसे हिरौल बजाइ कै।
सरदार तितहि हुसेनलीखां लै अमीरन संग है।
रन भिर्‍यो जुल्लफिकारखां हमराह गाढ़े अंग है।
फर मैं फकाफक होत तेग कटार कटकतु फंग है।
तहं तीर तरकस सबै खाली भये लाख निखंग है।
सावंत सैद हुसेनली खां जोर जैतक सत्थ ह्वै।
तहं हत्थहत्थनि मत्थमत्थनि बरति लत्थनि पत्थ ह्वै।
गहि जबर हत्थर करे तत्थर परे बिरथ वितत्थ ह्वै।
उहि सत्थ बार समत्थ हे एक मत्थगे बिन मत्थ ह्वै।
तब सैद अशरफ अगहरौ भाई मुशर्रफ मीर को।
समसार तासु अंगावतो अंग अंग हो रन धीर को।
हेरो सुहूरनि हाथ प्यालो हरखियो हिय बीर को।
लीनी शहादति साहिबी सुरलोक बुद्धि गंभीर को।
पेलयो मुशर्रफ मीर पालनि पीलवान जुझाइ कै।
तब अली असगरखां पिल्यो फर फार अंग अंगाइ कै।
सुबजैनदीखां गहि जुनब्बी कर कमान चढाइ कै।
फत्तहअलीखां शफशिकिनखां भये अगहर आइ कै।
इन सबनि जाइ अंगाइ धायनि लखि लगाई जूझियो।
रिखान गहि गहि जात रहि रहि एक एक अरूझियो।
फैली फुलंगैं सार सारनि बजत परत न सूझियो।

फत्तहअलीखां शफर्शिकनखां जैनदीखां जूझियो ।
उन जुल्फिकारहि खान के सग के अमीर किते गिरे ।
ठहराइ सकत न पाइ लखि दल आपु आइ किए थिरे ।
हुस्सैनअली खा भी उतारु पिले जंग मुंड चिरे ।
उन भी उतारु जुल्फिकार दुधार दोऊ भट भिरे ।
दोऊ अमीरल उम्मराव भिरे दोऊ तेहा भरे ।
हातिम दोऊ रुस्तम दोऊ कायम दुऊ रन करकरे ।
शमशेर सरकि सिरोइ की सांवत ये दोऊ लरे ।
घन घाइ खाइ अंगाइ अंगनि अटल ह्वै दोऊ लरे ।
मुखत्यारखां जाबांजखां जांनिसारखां आटोप कै ।
सादिक सु लुतफुल्लाहखां आयो महाबल चोप कै ।
फिर दिल दिलेर अलीय खां उमराव केतक कोप कै ।
जिहि ओर आजमखां तहां फर लियो फौजनि छोप कै ।
तब मारु मारु संघरु हां हां हां दुहूं दल ह्वै रह्यो ।
राजा छबीलेराम आजमखां वली कर वह गह्यो ।
सुलतां कुलीखां सैदशेखर सूखियतखां रिन भरयो ।
फिर नेक कदम फतेह कर श्रीधर सुकवि जग जस लह्यो ।
तहं पिले बखतर-पोस भरे महा धमकी मही ।
गिरवान गहि गहि जात रहि रहि हह हाहंरि ह्वै रही ।
कागने तरफन तोर की बर बान बरखन झर सही ।
तरबारि ते तह वार त्यों अगवत चलावत हरखही ।
तहं कंपत कायर गात कदली पात बात मनो लगे ।
जे सूम दान न देत हे जिय देत भागे ठग ठगे ।
जे दान निरखे दान मे जिय दान हूँ मैं जगमगे ।
मुख लाल रंग प्रसन्नता हिंगु लाल रंग मनो रंगे ।
राजा छबीलेराम को जंगो महावत जूझियो ।
मैं मेत मुख रुख फिरत लखि बर बीर मन मंह बूझियो ।

तब आपु दै कल दै अंगूठा जोर चरत असूझियो ।
रनथंभ पीलहि थाँभि पेखि लगाइ राखी लूझियो ।
राजा छबीलेरामजू को ग्रेश सजि फौजें भली ।
रन मड्यो रैयाराय राव गुलाब राव मही हली ।
मुखत्यारखाँ बलवान की चतुरंग पृतना दलमली ।
मुखत्यारखान समेति हाथी साथ जूझ्यो तेहि थली ।
तब राज श्रीगिरधर बहादुर सुव बहादुर आ फबै ।
फर फील हलि हला कियो दौरे महादल कै सबै ।
दृप कियो रैयाराय राव गुलाब राव जहाँ जबै ।
सरदार सिगरे हांक दै दौरे दिलेर तहाँ तबै ।
भगवन्तराय दिवान कायथ बीरबर काकौरिया ।
तसु नंदराय सुवंस गहि किरवान दर बर दौरिया ।
दूर कियो बेनीराम नागर नौनिहाल अगोरिया ।
फिरि शुजा सैद इमाम सेख सुपीर महमद पौरिया ।
नर सूर सर बानी बली अफगाँ वतन चिहि टौलिया ।
किरवान अहमदखाँ गही वह फौज फर बागै लिया ।
फिरि सैद सुव शाकिर महम्मद मीर जिहिं रन लै लिया ।
जसु वतन ओलमगोट रो सफजंग में जस फैलिया ।
दौर्यो गुलाब मोहैयुद्दीखाँ बीर आजम खान को ।
दौर्यो बली सुलताँकुलीखाँ जिनै जस किरवान को ।
रन मड्यो शेख रसूखियतखाँ जाहि सम बलवान को ।
हरी कदम फत्तह नेक कदम जु देग तेगरु बान को ।
नव्वाब आजम खाँ तहाँ फर भूमि हाँकि हला कियो ।
सुलताँकुलीखाँ बागबीर रसूखियतखाँ हूलियो ।
भनि सुकवि श्रीधर नेक कदम सु फौज गुर गाढ़ो हियो ।
तहँ जबर जानीखान पर झर झरनि कै बर बरखियो ।
नव्वाब आजमखाँ महाबल जबर जानीखाँ भिरो ।

रह सत्थ आजम खां बली अंग अंग घन घायनि घिरो ।
समसेर मर सर तीर तर तर मुख न काहू को फिरो ।
तहं हस्ति साथी सरथ हाथी जूझि जानीखां गिरो ।
इतके भये सरदार साथी सहित सेर सुघाइ कैं ।
उनके कितै जूझे अरूझे रहे लोह अघाइ कै ।
नहि लरत चलत न बर पर दोऊ अरे अरराइ कें ।
वे लाख ये न हजार पूरे रहि रहे ठहराइ कें ।
तब सैद कुतुबुलमुलुक बीर अमीर मनि रेला कियो ।
बंगश महम्मदखान शादीखान कर कर बर लियो ।
रन काज राजा रतनचन्द महाबली हिय हरखियो ।
जे कृष्णदास दिवान निज मुहो अलीखां को बियो ।
पुनि सैद अनबरखां समुद्दर खां संभारी तेग है ।
मजू तेयब तरब अरबनि यादगारो बेग है ।
सरदार बारहे बार रुस्तमदस्त सद अनेग हैं ।
ये सैद अबदुल्लाहखांन रिकाब तेग फते गहैं ।
इत कियो हांक हलात दूनौ आन उन आगी लियो ।
बलवान कोकलताशखां तसु बीर आजम खां कियो ।
नौ शेरखान जुझार अबुल गफार हांक तहां दियो ।।
कल नेन देत न रहकले हथनाल घन घुरनाल है ।
तूफान कहर तुफंग की फहरान बान बिशाल है ।
तहं तीर सलभ समूह सम सुरलोक तर सर जाल है ।
असमान भानु बिमान गो रुकि भयो धुंधूकाल है ।
तब बीर बीर बिरी बिरे मनु गहबरे भट भट भिरे ।
बजि उठो मारू मारु मारु पुकार करि करि मुरु भिरे ।
बानैत गब्बी हैं अरब्बी बीर गब्बी कर थिरे ।
तहं होत हूह फकाफकी फर मुख न काहू के फिरे ।
तब गहे कुतुबुलमुलुक के बर उतरि कोकिलताश खां ।

बंगश महम्मदखाँ इतै उत बीर आजमखान खाँ।
इत सूर सादीखान उत नौशेरीखाँ उनकीकलाँ।
भट भिरे एकहि एक जे.बबिरी बिरे दुहुँ पलाँ।
उत सेद राजे खान अबदुस्समुद अली बागे लियो।
इहि ओर राजा रतनचन्द गयंद चढ़ि रेला कियो।
सरदार इत उत के भिरे रन लत्थ पत्थनि के बियो।
तरवारि तीर तुफंग साँगि कटार कै बर बरछियो।
जय कृष्णदास दिवान निजमुद्दीअली ख ाँ को बढ़ो।
तबसैद अनवर खाँ समुदर खान अगहर ह्वै कढ़ो।
मजर तैयब तरब साहब राय रोस महा मढ़ो।
लखि पिलनि कुलबुल मुलककी सब पिलत रनरस रुचि चढ़ो।
चहुँ ओर फौजनि फौज सो मन मौज मारु महा परी।
हथियार भार दुधार भर मनु मघा मेघन की झरी।
झिरि झिलम कुंडि कुरी कुरी करिगई बखतर की करी।
करि मारु मारु संभारु यार सभारु सुनियत ललकरी।
घन-घटा घोर घमंड सो सम घुमड़ि कर फौजैं रही।
धौंसे धोकारत गाज गहि तरवीर चमकि छटा सही।
झर तीर गोलिन बार गेला परत ओला से तही।
महि मची मेदन गूद कीच कृपान सैयद जब गही।
मद भरे भ्रमत खरे अघाइ अघाइ करिवर थरि अरे।
सिर सरत श्रोनितधार मनहु पहार सो झरना झरे।
बढ़ि चली लोहुन की नदी लहरैं लखैं कहि को तरे।
तेहि तीर दलदल मास का बलठान काहू का परै।

कवित्त

फौजबल भुजबल मन मन सूबाबल,
श्रीधर हरीफन हरषि हहलावतो।

साहेब सर बुलंदखाँ नवाब करि करि,
　　पत्थ के से हत्थ महाभारथ मचावतो।
जहाँ शाह मौजदी रफोउलकदर कूटि,
　　जेबर जुलफिकार खानैं बाँधि ल्यावतो।
होता हम राह लाहानूर के समर तो।
　　अजीम सों अजीम पातशाही कौन पावतो।
सनमुख शाह जू के साजि सेन चारों अंग,
　　सैद अबदुल्लाखां बीर आयो बल में।
बाजि उठ्यो मारू मारु मारु भो अँदोर जोर,
　　हाँके फील बाँके पेलि पैठे रेलि पल में।
श्रीधर भनत दोसतअलीखां अगाइ धाइ,
　　सुन कै चलाए भट वैसे चलाचल में।
वाह वाह कहैं पातशाह औ सिपाही सबै,
　　वाह वाह रह्यो है सचत दुहूँ दल में।

छप्पय

श्रीधर दलबल प्रबल लखि लोकपाल रह लज्जि।
महमद सालेह बोरजू चढत कटक बर सज्जि।
सज्जदल रनकज्ज जनप्प समज्जजयबर।
बंगग्गहनि मतंगग्गर्जनि, उतुंगगिरवर।
रंगग्गात सुकुरंगग्गवन तुरंगग्गति गुर।
पच्छद्दभर थिर कच्छक्करब सुलच्छभ्भर पुर।
लच्छ भट्ट टट्टिय चढ्यो महमद सालेह ज्वान।
धुजा बान झलकैं बजैं उद्ध धुनि धुर ध्वान।
उद्धद्धुनि धुर ध्वान द्धुकि सज युद्धज्जै भर।
लक्खब्भटरग दक्खक्खुम सुबियक्खक्कै कर।
बार व्वलिय उछ्धारम्भपिक्खग बाहब्बल किय।
बानब्बिकट कमानक्कठिन कृपानड्ढुर लिय।

कर लिय खग कोप्या बली महमद साले ज्वान ।
अरि के बढि गढ मदनि पर कियेउ सुकोपि पयान ।
कोपप्पकरि पयानप्पथि घन ध्वानद्धलकत ।
लच्छच्छहरि वरच्छच्छवि वर स्वच्छच्छलकत ।
युद्धज्जुरत सक्रुद्धभ्भटरण उद्धद्धर किय ।
बाहक बलिव उछाहभ्भरि खग बाहब्बल किय ।
खग्गबाह बलकिय बली महमद सालेह बीर ।
टुवन ठट्ट कट्टिय भखो श्रोनन्नद भरि नीर ।
श्रोनन्नद भरि नीरभ्भरित गंभीरम्भलकत ।
लुत्थन्नि उलत्थ जलजिय जत्थत्थलकत ।
वीचच्चलन नगीचच्चलहर बीचच्चमकत ।
मुंडम्मरि करि कुम्भम्भरत सुभ्रम्मम्भमकत ।
महमद सालेह बीर कोपि भारी रन मंडेउ ।
अरि की प्रतन प्रचंड खंड खडन करि खडेउ ।
गीध गूढ बेताल मास हर मुड-माल लिय ।
रुहिरय रुहिर अपार पाइ भैरव गलगज्जिय ।
तकि शत्रु सूर को ग्रास कर श्रोन सिन्धु मज्जन कियो ।
लखि परब कृपानी रावरी मनहुँ दान उत्तम दियो ।

कवित्त

फौजनि की घटा की घमंड घोर घेरु करि,
मौज दीन मघवा के मत मे उछाह भो ।
तोप गरजत तरवारि बीजु तरजत,
बरषत बाननि अचल चार्‌या राह भो ।
तब गिरिवर कर धरि गिरिवरधर,
श्रीधर भनत ब्रज-मण्डल की छाँह भो ।
अब गिरिधरलाल बहादुर बीर,
समसेर गहि कर पातसाही को पनाह भो ।

माच्यो जोर जंग रंग आजम अजीम जू सों,
गालिब गनीम आयो महमद गरूर है।
श्रीधर सरबुलन्दखाँ नवाब दौर के,
हिरोल ही हटायो कीनों चमू चकाचूर है।
मारि खानि खालि मैं बिदारि राउ दलपति,
गंजेउ जुलफिकारखान को गरूर है।
वाह वाह करे पातसाह औ सिपाह रही,
सही समसेर तेरी शाहि के हजूर है।
जहाँदारशाह शमशेर जोरे जेर करि,
जहाँ शाह रफीसान की ही कौन सी तथा।
आजम के संगन मे जग मे हरायो त्यों,
जुलफिकारखाँ को फेर लावतो वहै पथा।
श्रीधर सरबुलन्दखान किरवान धनी,
रुस्तम के काम कै बढ़ावतो बडी कथा।
बार बार कहे पातशाह अफसोस करि,
हाय हमराह यो अजीमशाह के न था।
श्रीधर फरूकसाहि मौजदीं भिरे हैं दोऊ,
पूरो नेक कदम कों करम अल्लाह को।
कीनों खग बाह मोगलनि के दलनि भो,
हिरोल की पनाह जाके कोप की पनाह का।
गालिब गनीम गाज गंज मगरूर न को,
गरब को दलिक गजब गुमराह को।
देखे पातशाह उत शाह पायो निज दले,
वाह वाह करत सिपाह पातशाह को।
भारी पातशाह दोऊ अगारे अगारी लरे,
धौंसन की दुहूँ ओर श्रीधर धुकार है।
बाजै बीर बीर गोला बान तरवारि तीर,

बाजे सार सार होत सोर मार मार हैं।
शेख खैरुल्लाह अलेख रन कीनो वेई दिनो,
जुगनि के जूखे मसहारिन अहार हैं।
बाय खा ये बेसुमार पैठि दल अरि कै सु,
मार ते गिराये बीर बांके बेसुमार है।
बखतरपोस पखरैत फीलस्वारन को,
कारी घटा भारी ज्यों पयोद प्रलैकाल को।
श्रीधर भनत गोला बान सर झर भर,
बरखत थाँभे को करैरी तरवार को।
दिलाजाक झपटि हलीमखाँ बरग जाइ,
दल मिडि मार्‍यो मौजदीन विकराल को।
श्रोनित सलिल तट नांचै प्रेत पहपट,
घट घट घूंटै कर खप्पर कपाल को।
इत गल गाजि चढ्यो फ़रुकसियर शाहि,
उत मौजदीन करि भारी भट भरती।
तोप की डकारनि सों बीर हहकारनि सों,
धौसा की धोकारनि धमकि उठी धरती।
श्रीधर नवाब फरजंदखाँ सु जंग जुरे,
जोगिनी अघायो जुग जुगनि की बरती।
हहर्‍यो हिरौल भीर गोल पै परी ही तूँ न,
करतो हिरौली तौ हिरौले भीर परती।
मार्‍यो मौजदीनै फर विफारे पलक बीच,
कीनो मौजदीन को कटकु अढ़ अढ़ है।
मीडि गढ आजम अजीम अजमत गढ,
कूद्यो जटवारे के सकल मढ़ी मढ़ है।
श्रीधर भनत महाराज श्री छबीलेराम,
तेरे बैरी बांची काहू सूर की न सढ है।

जीत्यो च्यारो ओर मेरी फिकिर सो कीजै जोर,
ऐसे महाराज सों गहनि गाढो गढ है ।
फेर मण्ड्यो श्रीधर छबीलेराम राजा,
पातशाह कों हिरोल पानशाहत को पाहरू ।
तोप की तरापैं तारि गोला को गुलेल गनि,
पेलि दल गार्यो मोजदीनै गहि गाहरू ।
चके हरि-हरि बभ देषि आतपत्त थंभ,
जैत रन खंभ बीर बिक्रम उछाहरू ।
सुरुखरू आप भयो आबरू दिलीम पायो,
माहरू रफ़ीक भी मुखालिफ सिपाहरू ।
भालनि सों भाला भिर्यो बरछा सों बरछानि,
सरे समसेर समसेरनि सुखग मैं ।
तीरन को कीनो तन तीरनि तुनीर तोरु,
तोरादार जोरन न पावतु सुफग मै ।
जंग सुलतानी मैं कहानी कैसो कीनो काम,
श्रीधर छबीलेराम राजा रन रंग मैं ।
साढ़े तीनि हाथ कद दस हथा हाथी चढयो,
दोई हाथ होत हैं हजार हाथ जंग मैं ।
श्रीधर अवाई देषि फ़रुकसियर जू को,
आयो मत्त मोजदीं अनेक अभिलाख कै ।
चरिकु घमंड घोर माच्यो गइ मुरि बागैं,
अड़ियो छबीलेराम राजा मन माख कै ।
मारि पर दल हरखायो जूथ जोगिनी को,
करत बड़ाई सिवासकरहि साख कै ।
एकै बीर केयो लाखैं एक के न आन्यो मन,
एक ही गनत कैयो लाख कैयो लाख कै ।
माच्यो जोर जंग दुहूं ओर पातशाहनि सों,

उत तें उमड़ि दल मौजदी को धायो है।
अंगद सो अड़ो पातशाहनि पलटि डार्‌यो,
पृथी एतो आजमखाँ सबल बनैत मैं।
महा हुव भारथ को कमनैती पारथ की,
जैसे भीम भुजबल भाख्यो कुरुखेत में।
श्रीधर कृपान गहि मुसलेहखान रन,
कीनो घमसान यों मसान हहरात हैं।
झूंडनि झंडूले प्रेत लोहू के प्रवाह परे,
छाती लरैं पौरैं पेलि पियत अन्हात है।
खोपरा लों खोपरिन फौरैं गलकत गद,
पोरी लों पलासी खाल खैंचि खैंचि खात है।
पाखर से खापरनि चट्टुवा चुरैलनि के,
चाइ भरे चर चर चपरि चबात हैं।

छप्पय

भट्ट ठट्ट डट भट्ट भट्ट हरि आभट्टे हरि।
उद्धत जुद्धत कुद्ध सुद्ध गज्जत जिमि केहरि।
बीर मुसल्लेह खाँ जलद उड्डद दल सज्जिय।
पक्खर पक्खर लक्ख स्याह सन्नाह समज्जिय।
बल तड़ित तेग तरपत कड़कि रस वर श्रीधर धर कुरेउ।
तहँ गोला पत्थर बित्थरिय सो अरि मत्थर थत्थरि थुरेउ।
अरि प्रतन प्रचंड खड खंडह करि खंडेउ।
गीध गूद बेताल मासहर मुंडमाल लिय।
रुहिर प रुहिर अपार पाइ भैरव गल गज्जिय।
तजि सत्तु सूर को प्रास कर श्रोन सिन्धु मज्जन किएउ।
लखि परत कृपानी रावरी मनहुँ दान उत्तम दिएउ।

कवित्त

आयो मौजदीन उत इतते फरुकसाहि,

दुहूँ ओर सोर ललकारें बीर बीर की।
भरा भरी गोलनि की भरा भरी तेग की,
कटारिन की कराकरी तरातरी तीर की।
श्रीधर बिलायो दौरि बीरन की भीर रुड,
मडन को मेरु श्रोन सलिता गँभीर की।
वाह वाह करे पातसाह रु सिपाह सब,
देखो रे दिलेरी यारो मुबारक मीर की।

कोऊ ढूंढौ कोऊ बारो काहू मैं न गुन भारो,
कोऊ बारनारी बस मन मैं न आयो है।
सुन्दर सुजान सुजा सीलवंतु ओजवान,
दान पूरो एके तोहि बिधि ने बनायो है।
श्रीधर भनत सानी जलालदी अकबर,
फरुकसियर पातसाह वर पायो है।
बाल पातशाहति सोयंवर कर करति,
तोहि देखि रीझि जयमाल पहिरायो है।

गेडी से अराबो टारि भेडी सों बिदारि दल,
खलदल खूंदि कीनो छीन एजदीन के।
धावा करि पूरब में डावा डारि फौजनि के,
मीन सो पकर लीनो शाहि मौजदीन के।
श्रीधर भनत पातशाहिन के पातशाह,
फरुकसियर भो पनाह दुहूँ दीन के।
मुलुक मुलुक दौरि फरद्दै फतूहनि के,
काँप्यो डरि गबर हरख बाढ्यो दीन के।

साजि दल फरुकसियर पातशाह-पति,
श्रीधर बढ़त जब सहज शिकार है।
धूमरु सुभासा में अराम इसफा कित,
सुनि जलधर धुनि धौसा की धुकार है।

हबसाने हहल खँधारिन के खलभल,
　　　बलक बदक सान जान न रुका रहे।
तारा दे केवारा दे केवारा देके वारा देहिं,
　　　पौरि पौरि लंकपुर परत पुकार है।
दक्खिन दहेलि पेलि पच्छिम उदीची जीति,
　　　पूरब अपूरब हठीलो हाथु लायो है।
श्रीधर शहनशाहि फरुकसियर नर,
　　　सातो दीप सरहद्द हिन्द की मिलायो है।
दिन दिन बाढ़ति है बाढ़िहइ दिन दिन,
　　　दिन दिन दूनी पातशाहति बढ़ायो है।
और पातशाह पातशाही पायों जब पाए,
　　　तोसों पातशाह पातशाही जेब पायो है।
शादी शादियाने के उछाह आतपत्रनि के,
　　　अङ्ग अङ्ग बाढ़े रङ्ग बाढ़े हैं रखत के।
तेरी पातशाही, पातशाही पायी जेब फल,
　　　ठाढ़े नभ सुमन प्रसून बरखत के।
श्रीधर भनत पातशाहन को पातशाह,
　　　फरुकसियर नर जबर नखत के।
तिनके बखत जे वै लखत तखत तोहिं,
　　　बैठत तखत बढ़े बखत तखत के।

सूदन

सूदन के जीवन के विषय मे हिन्दी-संसार को अभी तक अधिक ज्ञान नहीं। न तो उनके जीवन-मरण की कोई प्रामाणिक तिथि मिलती है और न "सुजान-चरित्र" के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रंथ का ही पता लगता है जिसमे कवि के संबंध मे कुछ पंक्तियाँ हों।

परिचय

'सुजान-चरित्र', में केवल दो पंक्तियाँ आत्म-परिचयात्मक है, जिनसे केवल इतना ज्ञात होता है कि वे मथुरा निवासी माथुर चौबे थे और बसंत जी के पुत्र थे। वह सोरठा निम्न-लिखित है—

"मथुरापुर सुभ धाम, माथुर कुल उतपत्ति वर।
पिता बसंत सुनाम, सूदन जानहु सकल कवि।"

[सु० च० ३—१०]

यह सोरठा मंगलाचरण के उपरान्त हिन्दी के एक सौ पचहत्तर कवियों की सूची के पश्चात् आता है। कवियो के नाम भी काल-क्रम के अनुसार नहीं हैं, इसप्रकार केवल इतना कहा जा सकता है कि सूदन जी इन कवियो के परवर्ती या इनमे से कुछ के समकालीन रहे होंगे।

"सुजान-चरित्र" मे महाराजा सूरजमल के सं० १८०२ (ठारे सैरु दुहोत्तरा*) से सं० १८१०† तक के युद्धो का विस्तृत वर्णन है। वर्णन विस्तार तथा रचनाशैली पर विचार करने

---

* सु० च० पृ० ७।

† वही; पृ० २२४।

से यह अनुमान होता है कि कवि ने अपनी आँखों-देखी-घटनाओं का वर्णन किया है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि इनका कविता-काल सं० १८०२ से सं० १८१० वि० तक था।

"सुजान-चरित्र" में राजा सूरजमल जाट के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं का वर्णन नहीं मिलता। उसके सप्तम "जंग" के अंतिम अंक में सुजानसिंह के साथ मरहठों की लड़ाई की तैयारी तक का वृत्तांत तो दिया गया है किन्तु न तो उस युद्ध के परिणाम की कोई सूचना मिलती है और न उसके पश्चात् की अन्य घटनाओं का ही वर्णन मिलता है। कवि ने ग्रंथ के प्रायः प्रत्येक अंक के पश्चात् निम्नलिखित छंद दिया है जिसमें केवल अंतिम पंक्ति प्रसंगानुकूल परिवर्तित रहती है। वह छंद इसप्रकार है—

"भूपाल पालक भूमिपति बदनेस नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिनी कीने महाकलिकान है॥
जाको चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइकै।
कहि देव ध्यान कवीस नृपकुल प्रथम अंक सुनाइकै॥"

किन्तु अंतिम-अंक के पश्चात् न तो यह छंद ही मिलता है और न समाप्ति सूचक "इति श्री" ही मिलती है। इस युद्ध में राजा सूरजमल की पराजय भी नहीं हुई थी। इतिहास से ज्ञात होता है कि इस युद्ध में भी वे विजयी हुए थे। इससे यह भी अनुमान नहीं किया जा सकता कि आगे की कथा का सूदन ने इसलिये निर्देश नहीं किया कि उससे इनके चरित्र-नायक का अपमान सूचित होता।

इधर खोज से पता चला है कि सूदन के वंशज अब तक मथुरा में रहते हैं और भरतपुर राज्य की ओर से उन्हें २५) मासिक वृत्ति मिलती है। इससे यह भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि सूदन के ऊपर राजा किसीप्रकार से असंतुष्ट

हो गया हो, जिससे ग्रन्थ-रचना का कार्य अचानक बन्द कर दिया गया हो। इसप्रकार अचानक ग्रन्थ-समाप्ति के सम्बन्ध मे केवल तीन अन्य अनुमान शेष रह जाते है और उनकी संभावना भी अधिक है। पहला तो यह कि सम्भवत. स्वयं कवि की अचानक मृत्यु से ग्रन्थ-रचना बन्द हो गई हो, दूसरा, यह कि सम्भवत. किसी विशेष कार्य अथवा कारण-वश कवि कुछ समय के लिये बाहर चला गया हो और वही उसके जीवन का अंत हो गया हो और तीसरा यह कि कदाचित प्रस्तुत-ग्रन्थ ही अपूर्ण प्राप्त हुआ हो तथा ग्रन्थ का शेष भाग महाकाल के जठर मे सदा के लिये समा गया हो।

मिश्र बन्धुओं का विचार है कि "सुजान-चरित्र" की रचना सं० १८१० के कुछ पीछे हुई। इस सम्बन्ध मे वे लिखते है—

"जान पड़ता है कि सं० १८१० के कुछ पीछे यह ग्रंथ बना और इसीकारण प्रारंभ से इसमे दिल्ली और दक्षिणी दलो की दुर्गति का वर्णन हर अध्याय में किया गया है।" मिश्र बन्धुओ का तात्पर्य प्रत्येक अंक के अन्त मे आने वाले छन्द से ज्ञात होता है जिसकी एक पंक्ति इस प्रकार है—

'जाने दिल्लीदल दक्खिनी कीने महाकलि कानहै।"

किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकाल लेना कि ग्रन्थ की रचना ही सं० १८१० के पश्चात् हुई थी, नितांत भ्रमपूर्ण है। "दिल्ली और दक्षिणी दलो की दुर्गति" सं० १८०२ से ही प्रारम्भ हो जाती है। प्रथम जंग मे असदखॉ के साथ युद्ध तथा उसके मारे जाने का विस्तृत-वर्णन है। इस घटना की तिथि स्वयं सूदन ने इस प्रकार दी है—

"ठारे सै रु दुहोतरा अगहन मास सुजान।
बैठि सजल गढ़ नौहि कै किय आखेट विधान॥"

[सु० च०, जंग १, अंक २, दोहा १]

यदि "बहोतरॉ" की भाँति "दुहोतरां" का भी कोई अन्य विचित्र अर्थ लगाया जाय तब तो कुछ कहना ही नहीं है।

द्वितीय जंग (पृ० २८-४०) मे "दक्खिनी दल की दुर्गति" का भी यथेष्ट वर्णन दिया गया है। महाराज जयसिंह के देहांत पर उनके दोनों पुत्रों—ईश्वरीसिंह तथा माधोसिंह—में अधिकार के लिये परस्पर विवाद चला। सूरजमल जाट ने जेष्ठ-पुत्र ईश्वरीसिंह का पक्ष लिया जिसका राज्यारोहण न्याय संगत था; मराठों ने माधोसिंह का पक्ष लिया। संग्राम में सूरजमल के पक्ष की विजय हुई तथा मराठे पराजित हुए। "दखिनीदल की दुर्गति" का वर्णन स्वयं सूदन के शब्दों में इसप्रकार है—

"धरि इक उद्धत जुद्ध चाल दखिनी दलखाइय।
संभू अरु सुखराम जंग बहु रंग मचाइय ॥२१॥
[सु० चढ़, जं० २, पृ० ३५]

× × × ×

"श्रोनित सलिल सिवार केस बहुबेस परे जहँ।
मेद गूद करि पंक सूकि पंकज सम सिरतहँ।"
[सु० च०, जं० २, पृ० ३६]

इस दुर्गति की तिथि भी सूदन ने इसप्रकार दी है—

"ठारे सै अरु चार मैं पावन सावन मास।
मद्दत करिय सुरेस की किय दखिनी दलनास ॥"
[सुजान-चरित, पृ० २८]

"दक्खिनी-दल" की यह दुर्गति सूदन की कपोल-कल्पना भी नहीं, प्रत्युत प्रामाणिक-इतिहासों के साक्ष्यों से पूर्ण रूप से पुष्ट है। इस युद्ध में राजा सूरजमल ने स्वयं अपने हाथों से

के दरबार में सूरजमल के पिता बदनेससिंह* के ही समय में आ गये थे तथा "द्वितीय जंग" की रचना भी बदनेस के ही राज्य-काल में ठीक उसी घटना के पश्चात् हुई जिसका इसमें वर्णन है। "करत रहौ हम पर कृपा" के क्रिया—पद से स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि कवि कुछ समय पूर्व से ही दरबार में रह रहा था।

कवि के वंशजों को राज्य की ओर से २५) मासिक अब तक मिल रहा है। इससे भी सिद्ध होता है कि उसकी मृत्यु किसी युद्ध में ही हुई होगी जिसके उपलक्ष्य में भरतपुर के गुण ग्राहक राजा ने इस वृत्ति का प्रबंध कर दिया; अन्यथा केवल दरबारी-कवि होने से ही इस समय तक उनके वंशजों की इस प्रकार सहायता न होती रहती।

सुजान-चरित्र

सूदन का एक मात्र ग्रन्थ "सुजान-चरित्र" ही उपलब्ध है। इसमें इतिहास प्रसिद्ध भरतपुर-नरेश सूरजमल जाट की बिरुदावली है। प्राय दो सौ वर्षों का प्राचीन

सारांश

यह ग्रंथ सात जंगों में विभाजित है। प्रत्येक जंग प्राय: एक सर्ग के आकार का है, जिसमें दो से लेकर सात अंक तक हैं। यद्यपि कुछ अंक अत्यन्त छोटे आकार के है किन्तु स्थूल-रूप में उनको हम अध्यायों के रूप में ही समझते हैं। प्रत्येक अंक के अंत में एक ही छंद* रहता है जिसकी अंतिम पंक्ति प्रसंग के अनुकूल परिवर्तित होती रहती है।

* बदनेससिंह की मृत्यु सं० १८१२ में हुई थी। इसप्रकार यदि सुजान-चरित्र १८१० के पश्चात् लिखा गया होता तो उसमें "त्यौं ब्रजेस बदनेस" की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

† "भूपालपालक भूमिपति बदनेस नन्दसुजान हैं।" इत्यादि।

प्रथम जंग के पहले अंक मे मंगलाचरण के पश्चात् संस्कृत-कवियो तथा १७५ भाषा-कवियो की वंदना के साथ एक सोरठे में आत्म-परिचय दिया गया है; तत्पश्चात् भरत-राजवंश का वर्णन है।

दूसरे, तीसरे, तथा चौथे अंको मे सं० १८०२ मे सूरजमल अथवा सुजानसिह और असदखाँ के बीच हुए युद्ध और असदखाँ को पराजय तथा उसके मारे जाने का विस्तृत-वर्णन है। इस जंग मे कुल चार अंक है।

द्वितीय जंग के प्रथम अंक में आमेर पर माधोसिह के साथ दक्षिणियो की चढाई तथा आमेर वालो का सुजान से सहायता मांगने का वर्णन है। दूसरे अंक में सुजानसिह के कुंभेर से कूच करने तथा ईश्वरीसिंह की सहायता मे मराठो के विरुद्ध युद्ध करने एवं मराठो की पराजय का वर्णन है। तीसरे अंक मे दक्षिणी मराठो का फिर छापा मारना और सुजानसिह की सेनाओं के साथ घोर-युद्ध के पश्चात् पराजित होकर भागना और संधि को प्रार्थना करना वर्णित है। द्वितीय जंग यही समाप्त हो जाता है।

तृतीय जग में कुल पांच अंक है। बख़्शी सलावतखाँ के विरुद्ध जो युद्ध सं० १८०५ मे हुआ था, उसकी तैयारियो का और उसमे हकीमखाँ, अली कुली खाँ, फतेहअली खाँ, तथा रुस्तम खाँ इत्यादि मुग़लसरदारो के वध का विशद-वर्णन इन पाँच अको मे प्रस्तुत किया गया है। अंत मे पाँचवे अंक मे सलाबत खाँ द्वारा सन्धि की प्रार्थना का भी निर्देश है। पंचम अंक केवल दो पृष्ठों का है।

चतुर्थ जग के प्रथम अंक मे नवलराम का पठानों के हाथ से मारे जाने, वजीर मनसूरखाँ का अहमदशाह की आज्ञा से पठानो पर आक्रमण करने, और सुजानसिह को सहायतार्थ

निर्मंत्रित करने की कथा है। दूसरे, तीसरे और चौथे अंकों मे युद्ध की तैयारी, रुस्तमखाँ तथा सुजानसिंह मे घोर-सग्राम का वर्णन है। पाँचवे छठवें और सातवे अंको में रुस्तमखाँ के मारे जाने तथा उसकी सेना के भागने का बड़ा सुन्दर-चित्रण है। इस जंग मे कुल सात अंक है। यह ग्रन्थ भर मे सबसे बड़ा जंग है। यह युद्ध सं० १८०६ मे हुआ था।

पंचम जंग के चार अको में रायबड़गूजरसिंह के साथ युद्ध तथा उसके परास्त होने और जाने की घटना का वर्णन है। इस घटना का समय सं० १८०६ वि० था।

षष्ठ जंग के प्रथम अंक मे पहले दिल्ली की बादशाही का संक्षेप मे अहमदशाह के समय तक का वर्णन है। राजा शांतनु से लेकर जनमेजय तक का वृतांत्त देकर फिर कवि ने चौहान-वंशीय-पृथ्वीराज तथा शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरी के युद्धो का वर्णन किया है। इसक अनन्तर संक्षेप में पठानों के राज्य का वर्णन करते हुए चगताई वंश के तैमूरलंग से लेकर अहमद शाह तक के बादशाहों के नाम तथा राज्य-काल दिये गये हैं।

अहमदशाह के वजीर मनसूरजंग और बख्शी गाजीउद्दीन से द्वेष हो गया, फलस्वरूप अहमदशाह ने मनसूर को दिल्ली से निकाल दिया और उससे मंत्रीपद छीन लिया गया। मनसूर ने राजासुजानसिंह का सहायता माँगी। सुजानसिंह ने इसके उत्तर मे कहा कि वह तब तक नहीं सहायता कर सकता, जब तक दिल्ली के सिंहासन पर कोई दूसरा बादशाह नहीं बैठा दिया जाता।

द्वितीय अंक मे राजा की सलाह मानकर मनसूर द्वारा अकबरशाह को दिल्ली का सम्राट घोषित करने, सुजानसिंह के द्वारा दिल्ली पर आक्रमण करने तथा शहर को लूटने का बड़ा ही विस्तृत-वर्णन है इस प्रसंग मे बाजार की साधारण

से साधारण वस्तुओं, नाना-जाति और देश की स्त्रियों की नाना भाषाओं में विलाप करने, भाँति-भाँति के शस्त्रों, बरतनों, खेमों, कपड़ों, मसालों, दवाइयों ग्रंथों आदि की लूट का विशद-वर्णन मिलता है।

इसके पश्चात् के चार अंकों में क्रमशः कोटरा के युद्ध में शाही-सेना की पराजय, गाजीउद्दीन की मराठों से सहायता की प्रार्थना, अंत में युद्ध होना और सहायता मिलते हुए भी गाजी-उद्दीन की पराजय और संधि में मनसूरजंग को फिर अवध की नवाबी मिलने का वर्णन है। ७२ पृष्ठों का यह जंग,ग्रन्थ भर में सबसे बड़ा है।

अंतिम जंग (सप्तम) में मराठा सरदार मल्हारराव के साथ होने वाले युद्ध की तैयारी दिखाकर सुजानसिंह की विजय के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हुए अचानक ग्रंथ की समाप्ति कर दी गई है। बीच में प्रसंगवश रूपराम द्वारा ब्रजशोभा तथा, कृष्णलीला का वर्णन कराया गया है और अंत में मुचकुंद की कथा कहलाई गई है।

ऐतिहासिकता

राजा सूरजमल ने जाटवंश को विभूषित किया था। सुजान-चरित्र कार ने जाटों की उत्पत्ति यदुवंशी क्षत्रियों से बतलाई है और अपने चरित्र-नायक को श्रीकृष्ण का वंशज माना है। "सुजान-चरित्र" के अनुसार सूरजमल की वंशावली निम्नलिखित प्रकार से होगी :—

परब्रह्म के चौबीस अवतारों में एक कृष्ण का अवतार हुआ जिन्होंने कंस का वध किया। कृष्ण के पश्चात् क्रमशः रौरिया, पचैसिंह, (प्रताप के सगोत्रीय) मदू महिपाल अथवा

मदूसिह, पृथ्वीराज, तथा मकनि भुवाल हुए। मकनि भुवाल (?) या मकुनीसिह को सूदन जी चंद्रवंशी बतलाते हैं; यथा—

"सुत भयौ मकनिभुवाल भूरह भय बिनासन जोग।
जिन कियो ससिकुल प्रगट भूपर निखिल वसुधा भोग ॥"
[सु० च० पृ० ५]

मकुनीसिह के पश्चात् क्रमशः खानचंद, भावसिह तथा वदनेस हुए। इन्हीं वदनेस सिह के पुत्र सुजानसिंह अथवा सूरजमल जाट हुए।*

यह वंशावली किस पुराण के अधार पर दी गई है, इसका उल्लेख नहीं और न किसी पुराण मे इसप्रकार की कोई वंशावली मिलती ही है। जाटों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानो मे बड़ा मतभेद है। वर्तमानकालीन जाट अपनी उत्पत्ति यदुवंशी कृष्ण से ही मानता है किन्तु इसका न तो उसके पास कोई प्रमाण है और न कोई शृंखलावद्ध वंशावली ही। इतिहासो मे भी सबसे पहले जाटो की चर्चा औरंगजेब के ही काल में आती है। उस समय गोकुल नामक जाट-डाकू बड़ा प्रसिद्ध हो रहा था। इसके पूर्व के जाटों का इतिहास अभी अंधकार में ही है। यही कारण है कि सूदन के द्वारा दी गई वंशावली मे भी वदनेस के पहले आये हुए सारे नाम भ्रमोत्पादक ही हैं।

इस समय जाट लोग पंजाब, सिध, राजपूताना के सूबों तथा दोआब के पश्चिमी-भागो में अधिकतर मिलते हैं, और इनमें से प्रायः एक तिहाई मुसलमान, बीस प्रतिशत खिक्ख, तथा शेष पचास प्रतिशत हिन्दू है।†

---

* सुजान-चरित्र पृ० ४-५

† कानूनगो—"हिस्ट्री ऑव दि ज़ाटस" पृ० २।

कर्नल टॉड जाटों की उत्पत्ति यूरोप की आक्सस नदी के आस-पास के निवासियों से बतलाते है। उनके अनुसार जाट लोग जटलैंड के जटो के वंशज हैं जिनमें गेट, यूटी, येठ इत्यादि जातियाँ अब भी वर्तमान हैं।

सर हरबर्ट रिज़ले, जाटो को शुद्ध-आर्य मानते है और उनको राजपूतो का वंशज मानते है।❀

कुछ अन्य विद्वानो का मत है कि इनकी उत्पत्ति, शिवजी की जटा से हुई जिससे इनका नाम जाट पड़ा। कुछ लोग जाट शब्द की व्युत्पति 'यदु' शब्द से करते हैं। उनके अनुसार यदु से यादव हुआ, फिर यादव से जाट शब्द को व्युत्पत्ति हुई।

महाभारत में यत्रतत्र पंजाब तथा सिंध के निवासियो के वर्णन में "जात्रिक" तथा "मद्रक" शब्द भी मिलते हैं। दोनो शब्द दो भिन्न-भिन्न जातियो के द्योतक है और दोनो को "वाह्लीक" संज्ञा दी गई है। सर जेम्स कैम्पबेल और डा॰ ग्रियर्सन का मत है कि संस्कृत-साहित्य मे जाटो के सम्बन्ध में सर्वप्रथम इसी स्थल पर निर्देश किया गया है। इनमें से पहला विद्वान तो जाटो को कनिष्क का वंशज मानता है† और दूसरा आर्यों की किसी निकृष्ट-श्रेणी से इनकी उत्पत्ति मानता है। कहने की आवश्यकता नही कि महाभारत में वाह्लीकों की घोर-निंदा की गई है और उनके अनेक घृणित-आचारों का वर्णन किया गया है।

कुछ विद्वान् जाटों की उत्पत्ति पुराणों मे प्रतिपादित "जाठर" वंश से मानते हैं।

❀ हर्बट रिजले—"पिपुल्स ऑव इण्डिया" पृ॰ ६०—६१।

† बंबई गजेटियर; जि॰ ६, पृ॰ ४५६।

पद्मपुराण की निम्नलिखित पंक्तियाँ, इस संबंध में विशेष विचारणीय हैं—

'क्षत्रशून्ये पुरालोके भार्गवेन यदाकृते।
विलोक्याक्षत्रियां धात्रीं कन्यास्तेषां सहस्रशः ॥
ब्राह्मणान् जगृहुस्तस्मिन् पुत्रोत्पादन लिप्सया।
जठरे धारितं गर्भं संरक्ष्य विधिवत् पुरा।
पुत्रान् सुषुविरे कन्या जाठरान् क्षत्रवंश जान् ॥"

[प० पु०]

अर्थात् भार्गव परशुराम के द्वारा पृथ्वी के सारे क्षत्रियों का नाश हो जाने पर उनकी कन्याओं ने पृथ्वी को क्षत्रियशून्य देखकर पुत्रप्राप्ति की कामना से ब्राह्मणों के साथ भोग किया तथा "जाठर" नामक क्षत्रियों को उत्पन्न किया। इसी "जाठर" का अपभ्रंश 'जाट' हो गया। इस मत को जाट विद्वान् चौधरी लहीरी सिंह भी मानते हैं।

किन्तु वर्तमान-काल में "जाठर" दक्षिणी मराठों के कढ़द्रा ब्राह्मणों की एक शाखा है, जिनका जाटों से कोई संबन्ध नहीं।

उक्त विवेचन का परिणाम केवल यही निकलता है कि इनमें से किसी विद्वान् का मत हमें सत्य के निकट नहीं पहुँचा सकता। इसप्रकार अब केवल जाटों की वेशभूषा, उनके परंपरागत-सिद्धान्तों, विश्वासों इत्यादि पर विचार करना शेष रह जाता है। वर्तमान काल के जाटों की शारीरिक-रचना, भाषा, उनके चरित्र, तथा सामाजिक आचार-व्यवहार पर विचार करने से निष्कर्ष निकलता है कि जाट लोग शुद्ध-आर्यों की संतान हैं और राजपूतों से उनका विशेष सम्बन्ध है। अधिकांश आधुनिक विद्वानों का भी यही मत है। अतः सूदन

द्वारा प्रस्तुत की हुई वंशावली के नाम चाहे अशुद्ध ही हों, किन्तु उसकी परंपरा निर्विवाद-रूप से मान्य है।

अब यहाँ "सुजान-चरित्र" में दी हुई तिथियों तथा घटनाओं की जाँच भी आवश्यक है। इस ग्रन्थ में निम्नलिखित सात तिथियाँ दी हुई है—

(१) सं० १८०२—फतेहअली को सहायता कर असदखाँ को पराजित करना।

सूदन ने इसका उल्लेख निम्नलिखितरूप में किया है—

'ठारं सै रु दुहोतरा, अगहन मास सुजान।
बैठि सजल गढ़ नौहि के, किय आखेट विधान ॥१॥

[सु० च०; पृ० ७]

(२) सं० १८०४—ईश्वरीसिंह का पक्ष लेकर मराठों से युद्ध।

यथा—

"ठारै सै अरु चारिमै, पावन सावन मास।
मद्दति करिय सुरेस की, किय दखिनी दलनास ॥२॥"

[सु० च०; पृ० २८]

(३) सं० १८०५—सलाबतखाँबख्शी से युद्ध।

यथा—

"ठारौसौ रु पचोतरा, पूस मास सित पच्छ।
श्रीसुजान विक्रम कियौं, ताहि सुनौ नर दच्छ ॥२॥"

[सु० च०; पृ० ४१]

(४) सं० १८०६—मनसूरजंग का पक्ष लेकर पठानों को पराजित करना।

यथा—

"अष्टादश षट बरस रितु, पावस भादौं मास।
सूरज है मनसूर संग, किय पठान दल नास ॥२॥
[सु० च०; पृ० ५६]

(५) सं० १८०६—घासहरे के रावबड़गूजर को परास्त करना।

यथा—
"ब्रह्म (१) सिद्धि (८) धरि बिंदु (०) निधि, (६) बरष गतागतमाह।
घासहरे पै कोप करि, चढ्यौ सूर नरनाह ॥२॥
[सु० च०, पृ० १०५]

(६) सं० १८१०—सफदरजंग की सहायता करते हुए दिल्ली को लूटना।
यथा—
"गत पुरान (१८) सत बरष दस, (१०) मधुरितु माधव मास।
सूरत हित मनसूर कै, गह्यौ दिली पै गांस ॥२॥
[सु० च०; पृ० १५४]

(७) स० १८१०—भरतपुर पर मराठों का आक्रमण।
यथा—
"ठारै सै सु दसोहरा, हिमरितु महिना पोप।
दच्छिनदल दिल्लीदलनु, कीनौ ब्रज पै कोप ॥२॥
[सु० च०; पृ० २०४]

जाटों का एक अत्यन्त सुन्दर तथा प्रामाणिक-इतिहास प्रो० कालिकारंजन क़ानूनगो द्वारा लिखा गया है, जिसमें अनेक फ़ारसी, महाराष्ट्री, अँग्रेज़ी, संस्कृत तथा हिन्दी-ग्रन्थों की समुचित सामग्री का उपयोग किया गया है।❀

❀ कानूनगो—"हिस्ट्री आँव दि जाटस" पृ० ६७।

उसमें इन तिथियों का निम्नलिखित रूप में उल्लेख हुआ है—

(२) जयपुराधीश ईश्वरीसिंह की सहायता में मराठों से युद्ध के प्रारंभ की तिथि—

रविवार, २० अगस्त, सन् १७४६ ई० अर्थात् सं० १८०६ वि० ।

(३) मुग़ल सेनापति सादतखाँ अथवा सलावतखाँ से युद्ध की तिथि—सन् ११६२ हिजरी अर्थात् सं० १८०६ वि ।[१]

कुछ फारसी तवारीखों में यह तिथि ११६३ हि० के रूप में भी मिलती है। इस प्रकार एक वर्ष और बढ़ जाने पर सं० १८०७ वि० हो जाता है ।

(४) नवाब सफदर जंग उपनाम मनसूरखाँ के साथ पठानों के विरुद्ध युद्ध करने तथा पराजित करने की तिथि सन् १७५१ ई० (११६४) अर्थात् सं० १८०८ वि० दी हुई है ।[२]

(५) राव बहादुर सिंह बड़गूज़र के साथ युद्ध करने की कोई तिथि नहीं दी गई है।

(६) दिल्ली लूटने (जाटगर्दी) की तिथि सन् १६५१ ई० दी गई है। अर्थात् सं० १८०८ वि० ।[३]

(७) इसी प्रकार मराठों के आक्रमण की भी तिथि सन् १७५४ ई० अर्थात् सं० १८११ वि० दी गई है ।[४]

---

१ वही, पृ० ७१।

२ कानून गो- हिस्ट्री ऑॅव दि जाट्स पृ० ८३ ।

३ वही पृ० ८४

४ वही पृ० ८६

इसप्रकार जहाँ तक इन दोनों ग्रन्थों के सन् संवतों की तुलना का प्रश्न है, दोनों की कोई भी तिथि नहीं मिलती। सुजान-चरित्र में दिए हुए संवतों से उक्त इतिहास ग्रन्थ के सवत दो या एक वर्ष अधिक निकलते है। इसका निर्देश पहले ही किया जा चुका है कि इस इतिहास की सारी तिथियाँ फारसी तवारीखा पर आधारित है। दोनों मे कौन शुद्ध है, यह कहना कठिन है।

किन्तु सुजान-चरित्र मे दी गई घटनाओं के विवरण इस ग्रन्थ में उद्धृत किये हुए फारसी लेखकों के विवरणों से अक्षरश: मिलते है। उदाहरण के लिए द्वितीय जंग का कारण इतिहासकार ने जयसिह की मृत्यु के पश्चात् ईश्वरीसिह तथा माधोसिंह के बीच उठे हुए परस्पर विद्वेष को बतलाया है। इसमे सूरजमल ने ईश्वरीसिह का पक्ष लिया क्योंकि उन्होंने सहायता की प्रार्थना की थी और उनका सिहासनासीन होना ज्येष्ठ-पुत्र के नाते उचित भी था। मराठो ने माधोसिह का पक्ष लिया। उनकी सेना बड़ी विशाल थी जिसकी समानता मे ईश्वरीसिह के पक्ष की सेना कुछ नहीं थी। यह सूरजमल के ही साहस और शौर्य का फल था कि ईश्वरी सिह हारते-हारते बच गये और संधि में उनको सिहासन मिला। माधोसिह को केवल पाँच परगने मिले। यह युद्ध वांगरू में हुआ था।❀

सूदन द्वारा दिया हुआ निम्नलिखित विवरण कितना मिलता-जुलता है—

कारण—

दोहा

"सुरपुर को जैसिंह गए, बीते बहुतदिनान।
हुतौ भूप आमेर कौ, ईसुर सिह अजान ॥३॥

❀कानून गो—"हिस्ट्री ऑव दि जाट्स" पृ० ६६-७०

तासौं दक्खिन के दलनु, रोपी आनि सुजंग।
माधौसिंहहि संग लै, दियौ देस मै दंग ॥४॥

सोरठा

देखि देस कौ चाल, ईसुरसिंह भुवाल ने।
पत्र लिख्यौ तेहि काल, बदनसिंह ब्रजपाल कौं ॥५॥
[सु० च० पृ० २८]

स्थान—

"बगरू महलनि पहुँचकै, नरपति डेरा दीन।
चहूँ ओर अपनी चमू, सावधान करिलीन ॥२॥
[सु० च०; पृ० ३६]

संधि—

"दोइ परगने* लै दिये, ईसुरसों मल्लार।
माधौ कौ समझाइ कै, पठै दियौ ननसार ॥१२॥
पनु जीत्यो मल्लार को, मनु जीत्यौ इसुरेस।
रन जीत्यो सूरज बली, थाभि ढुंढाहर देस ॥१३॥
[सु० च० पृ० ३९]

युद्ध के वर्णन मे भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है। बूँदी के सूरजमल कवि ने भी सुजानसिंह के शौर्य का वर्णन उसीप्रकार ओजपूर्ण ढंग से किया है। यथा—

"लह्यो भले ही जट्टिनी, जाय अरिष्ट अरिष्ट।
जाठर तस रविमल्ल हुव, आमेरन को इष्ट ॥"

तृतीय जंग सादातखाँ तथा सूरजमल के बीच हुआ था, जिसमे अन्त मे संधि हो गई। इतिहास मे संधि की तीन शर्तें थी— प्रथम तो सूरजमल के पुत्र जवाहिरसिंह को नवाब के

*'हिस्ट्री आव दि जाटस' मे पाँच परगने देने का वर्णन है।

हरावल मे पद मिले; दूसरे मुसलमान लोग कभी जाटो के राज्य मे पीपल के वृक्ष न काटें, तीसरे मन्दिर और मूर्तियों को कोई हानि न पहुँचावें।❀

"सुजान-चरित्र" मे अन्तिम दो शर्तों का उल्लेख नहीं, पहली शर्त उसी रूप मे है। यथा—

"बिनती एक नवाब सौं, मेरी रुखसद देहि।
लाला सिंह जवाहरे अपनो हरवल लेहिं॥५॥
[सु० च०, पृ० ५८]

सादातखॉ को सूदन ने सलावतखॉ लिखा है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी नाम भी उसीप्रकार से मिल जाते हैं। युद्ध की तैयारी के प्रसंग में इतिहास में रूस्तम खॉ, हकीमखॉ फतेअली, अलीकुली आदि का नाम मिलता है।† सुजान ने भी इन व्यक्तियों का नाम दिया है। यथा—

"रुस्तमखाँ सुहकीमखाँ, अरु कुबरा अति चंड।
फतेअली सु अलीकुली, साजी सैन उदंड॥४॥
[सु० च०, पृ० ४६]

चतुर्थ जंग मे सफदरजंग की सहायता करते हुए पठानों को परास्त करने का वर्णन है। इसके भी प्रायः प्रत्येक कारण-विवरण परस्पर मिलते हैं।

पष्ठ जंग मे "जाटगर्दी" का विस्तृत-वर्णन है। इसकी कथा संक्षेप में प्रो० कानूगो के इतिहास के आधार पर निम्नलिखित है—

नवाब सफदरजंग उधर पठानों के साथ युद्ध मे फँसा हुआ था, उसीसमय अहमदशाह अब्दली ने भारत पर

❀कानूनगो—'हिस्ट्री आव दि जाट्स' पृ० ७४।
† कानूनगो—'हिस्ट्री आव दि जाट्स' पृ० ७३।

आक्रमण किया। पंजाब के कुछ भाग पर अपना अधिकार करने के पश्चात्, उसने दिल्ली के तत्कालीन सम्राट अहमद-शाह को भी धमकी दी। बादशाह ने डरकर संधिकर ली। वज़ीर सफदरजंग को जब ऐसा ज्ञात हुआ तो वह बादशाह से असंतुष्ट हो गया, कारण कि वह मंत्री था और बादशाह ने बिना उसकी परामर्श के ही सारा कार्य स्वयं कर लिया। फल यह हुआ कि बादशाह ने उसका मंत्रिपद छीनकर गाजी-उद्दीन को उसके स्थान पर वज़ीर बनाया। सफ़दरजंग ने बदला-लेने के बिचार से सूरजमल से सहायता माँगी। सूरजमल नेएक विशाल-सैन्य के साथ आक्रमण करके इस अवसर से पूरा लाभ उठाया। दिल्ली के बाज़ार में मनमानी लूटमार हुई जो जाटगर्दी के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी समानता इतिहासकार "शाहगर्दी" और "भाऊगर्दी" से किया करते हैं। अन्त में बादशाह ने मल्हारराव से सहायता मांगी, किन्तु सूरजमल ने कूटनीति का ऐसा जाल फैलाया कि उसको संधि करनी पड़ी। सफदरजंग को अवध और इलाहाबाद की नवाबी वापस मिल गई।❋

सूदन द्वारा प्रस्तुत किया हुआ विवरण भी प्रायः इसी प्रकार का है। उदाहरण के लिए संक्षेप में कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

कारण—

'पातसाहि अहमंद के, भौ वजीर मनसूर।
पोता मलिक निजाम कौ, बकसी भौ मगरूर ॥१५॥
.. ...
एक रोज पतसाहदी, बकसी लै मरजी।

❋कालिकारंजन कानूनगो—"हिस्टी ग्राव दि जाट्स" पृ० ८१-८६।

बिन वजीर दीवान मैं, कीनी यह अरजी ॥
हजरत सफदरजंग, मै क्या अदब बजाया ।
नाजर फिदवी साहिका दै दगा खिगाया ॥

... ...

साहिजहानाबाद मैं जद से, यह आया ।
तदसैं हुकुम हुजूर दा नहिं एक बजाया ॥
फेरे साहि मनसूर कौं अहदी लगवाया ।
साहिजहानाबाद तें तदही कढ़वाया ॥

... ...

दिल्ली सैं बाहर हुवै मनसूर रिसाया ॥''

[सु० च०, प० १९७ १,८]

लाल दरवाजे को तोड़ने और दिल्ली की लूट का वर्णन—

खारी खतरानी कतरानी सतरानी फिरैं,
बाँभनी विन्यानी तुरकानी पररानी हैं ।
काइथी अरोरी, थोरी वैसनि तमोरी गोरी,
काछनी करानी औ भट्यानी भहरानी हैं ।
हीरी बहु कीरी नर नीरी तीरी पीरी भई,
सूरज के तेज-चदकला ज्यों परानी है ।
नूपुर बलय वलयानु रसनानु धुनि,
मानहुं प्रभात पंछी बानी महरानी हैं ॥२१॥

[सु० च०, प० १,८]

इस जंग में प्रसंग-वश सूदन ने दिल्ली के सम्राटों तथा मुसलमान बादशाहों की भी क्रम से चर्चा की है। उसमें मुग़ल-बादशाहों के दिए हुए राज्यकाल तथा इतिहास के सर्वथा अनुकूल ही है। उनके अनुसार अकबर ने ५२ वर्ष, जहाँगीर ने २२ वर्ष, शाहजहाँ ने ३२ वर्ष, औरंगजेब ने ५० वर्ष,

बहादुरशाह ने ५ वर्ष, "मौजदी शाह (?) ने १ वर्ष, फरुंख-सियर ने ६ वर्ष, रफीद्रजातिशाह (?) ने ३ मास, शाहजहाँ (द्वितीय) ने ४ मास तथा मुहम्मदशाह (महमंद साहि) ने ३० वर्ष राज्य किया। उसके पश्चात् अहमदशाह दिल्ली का सम्राट बना। ये आँकड़े इतिहास-विरुद्ध नहीं।

अंतिम (सप्तम) जंग में भरतपुर पर मराठों के आक्रमण का वर्णन है किन्तु अचानक ग्रन्थ की समाप्ति हो जाने से यह कथा अधूरी ही रह जाती है। इतिहास से ज्ञात होता है कि सूरजमल की स्त्री रानीकिशोरी उपनाम "हँसिया" की नीति कुशलता से इस युद्ध मे भी सूरजमल के ऊपर कोई संकट न आने पाया और अन्त में संधि हो गई।

किन्तु इतनी समानता होने पर भी सुजान-चरित्र में कुछ अंशो में, अन्य इतिहास ग्रन्थों से, बड़ी विभिन्नता है। बड़ा आश्चर्य है कि सूरमल जाट के जीवन की सं० १८१० तक की भी कुछ प्रसिद्ध-घटनाओं का सुजानचरित्र में निर्देश ही नहीं है। "हिस्टरी ऑफ दि जाट्स" के अनुसार सूरजमल द्वारा किया सर्वप्रथम युद्ध हेमकरन जाट संगोरिया से लड़ा गया था जो उनके जीवन की मुख्य-घटनाओ में अपना एक मुख्य-स्थान रखता है। इसी युद्ध के फलस्वरूप उनको भरतपुर का इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग मिला था।* इसका उल्लेख "सुजान-चरित्र" मे कही नहीं है।

दूसरा अन्तर यह है कि सुजान-चरित्र की प्रथम जंग वाली घटना का उल्लेख और किसी इतिहास मे देखने में नहीं आता।

सूरजमल जाट की अनेक स्त्रियों में रानी किशोरी उपनाम

---

* कानूनगो—'हिस्ट्री ऑव दि जाट्स' पृ० ६६।

हँसिया* का उनके जीवन में एक प्रमुख स्थान है, जिसका निर्देश ऊपर किया जा चुका है। किन्तु दुर्भाग्य वश हँसिया के नीति-कौशल-पूर्ण कार्य के पूर्व ही ग्रन्थ को समाप्ति होगई है। फिर भी उसके साथ विवाह का भी कहीं निर्देश नहीं। संभव है युद्ध-वर्णन-प्रधान-ग्रन्थ होने से "सुजानचरित्र में" उसके वर्णन के लिए कोई अवसर ही न मिला हो।

आलोचना

जिसप्रकार भूषण को शिवाजी और गोरेलाल को छत्र-साल मिले, उसीप्रकार सूदन को भी एक सच्चा वीर चरित-नायक मिल गया। भरतपुर-नरेश राजा सूरजमल जाट के नीति-कौशल तथा राज्य-प्रबंध की सभी इतिहासकार मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हैं। यहाँ तक कि तत्कालीन मुसलमान लेखकों ने भी अपनी तवारीखों में उसके गुणों की उसीरूप मे प्रशंसा की है। आधुनिक विद्वानों में भी कोई उसे "जाटों का "यूलिसेस" कहता है, कोइ 'स टो'।† "सुजान-चरित्र" मे जो कुछ सुरन्दता है उसका रहस्य भी यही है।

"सुजानचरित्र" मे कुल ७ जंग तथा ३१ अंक अथवा अध्याय हैं। एक-एक जंग में सुजानसिह उपनाम सूरजमल के एक-एक युद्ध का विस्तृत-वर्णन है।

* रानी किशोरी उपनाम हँसिया के विवाह के संबंध में एक बड़ी मनोरञ्जक कथा प्रचलित है। कहा जाता है, एक बार राजा सुरजमल हाथी पर सवार होकर बाहर जारहे थे कि मार्ग में उनको कई बालिकायें मिलीं। उनमें से केवल एक लड़की को छोड़कर शेष सभी डरकर भाग गईं। राजा ने लड़की की निर्भयता पर मुग्ध होकर उससे विवाह कर लिया। इसी स्त्री का नाम रानी किशोरी उपनाम हँसिया था।

† कानूनगो—"हिन्दी आताफ़ दि जाट्स" ६५।

साहित्यिक-दृष्टि से ग्रन्थ का अध्ययन करने पर सर्व-प्रथम दृष्टि जाती है, घटनाओ के वर्णन-विस्तार पर। किसी विशेष घटना का वर्णन कवि ने इतने 'तूल' के साथ किया है कि कहीं-कही उसके कारण बड़ी नीरसता आ जाती है और पाठक का जी ऊबने लगता है। अनेक प्रसंगो मे कवि अपनी बहुविज्ञता-प्रदर्शित करने की अनधिकार-चेष्टा करने लगता है, जिसका परिणाम यह होता है कि पाठकों को अरुचि हो जाती है, जो प्रबन्ध-काव्य के लिए सबसे बड़ा दोष है। कही-कहीं कई पक्तियों तक घोड़ों की सूची मिलती है तो कहीं वस्त्रो तथा लूटी हुई सामग्री की। कही कवियों के नामो की भर-मार है तो कही विभिन्न-जातियो की विभिन्न भाषाओं का प्रदर्शन है। ग्रन्थ के आरम्भ के ही १७५ कवियों की लम्बी सूची है और सब को प्रणाम किया गया हैं। इसप्रकार इस कवि ने सूची गिनाने की सीमा तोड़ दी है। सात जंगो के काव्य मे छ बार लम्बी लंबी सूचियों की गणना गिनाई गई हैं। सबसे लम्बी सूची षष्ट जंग मे है जो ५ पृष्ठों तक चली गई है। उसी मे से एक स्थल यहाँ उद्धृत किया जा रहा है जो इसप्रकार है—

"काथ करौजी कारी जीरी। काइफरौ कुचिला कनकोरी ।।
कुकरौदा करहरी कहीरा। कनट कटाई कारी जीरा ।।
कुलयी कमल गटा सुकबेला। ककरासिंगो कंद सुकेला ।।
कमलमूल।किरवार कसेरू। काचनून कर मूल कनेरू ।।

फिर भी सूदन ने युद्धो का वर्णन इत्यादि सुन्दर किया है, इसको निर्विवाद रूप मे मानना पड़ेगा। इस सम्बन्ध मे प्राय. सभी समालोचक एक-मत है। मिश्रबन्धु इन्हे वीररस का "बढ़िया" कवि मानते हैं और इनकी गणना "दास" की

श्रेणी में करते हैं। आप लोग लिखते हैं—"युद्ध की तैयारी में सूदन, युद्ध-वर्णन में 'लाल' और आतंक एवं भागने के वर्णन में भूषण प्रायः सर्व श्रेष्ठ हैं।"

लाला सीताराम जी बी० ए० 'सूदन' को "पृथ्वीराज-रासो के अमर कवि "चन्द" के समकक्ष रखते हैं। पं० रामचन्द्र शुक्ल अपने इतिहास मे लिखते हैं कि, "सूदन मे युद्ध, उत्साह-पूर्ण-भाषण, चित्त की उमंग आदि वर्णन करने की पूरी प्रतिभा थी··· ·····।"❀ इस मम्बन्ध में प्रथम जंग से निम्न-लिखित कवित्त उद्धृत किया जाता है—

"अनी दोऊ बनी घन लोह कोह सनी घनी,
धर्मनु की मनी बान बीतन निसग में।
हाथी हटि जात साथी संगन थिरातश्रौन,
भारती में न्हात गंग कीरति तरंग में।
भानु की सुतासी कवि सूदन निकारी तेग,
बाहत सराहत कराहत न अंग में।
बीर-रस रंग यौं आनन्द उमंग में सो,
पगु पगु प्राग होत जोधन को जग में ॥३१॥
[सु० चं० पृ० २१]

किन्तु युद्ध-वर्णन में भी "शब्दों की तड़ातड़ और भड़ा-भड़ से जी ऊबने लगता है।"❀

उसमे भीतरी उमंग की अपेक्षा बाहरी तड़क भड़क ही अधिक मिलती है। डिंगल के अनुकरण पर कवि ने शब्द नाद को अधिक महत्व दिया है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि वीररस के उद्रेक के लिये शब्दनाद का प्रयोग आवश्यक समझता है। किन्तु यह उसका भ्रम था। वीर-रस के उद्रेक

❀रामचन्द्र शुक्ल,—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ४३४।

के लिये केवल बीहड़, अर्थहीन, कर्णकटु-शब्दों की आवृत्ति ही पर्याप्त नहीं, सच्चे आंतरिक-उत्साह तथ ओज की आवश्यकता होती है। "सुजान-चरित्र" के युद्ध सम्बन्धी अधिकांश स्थल "कड़कड़ धड़धड़" से ही भरे पड़े है। सात जंगों के वर्णन में कवि ने ९२ बार शब्दनाद का प्रयोग किया है।

यह जानकर और भी कष्ट होता है कि इन पदो मे उन्ही सूरजमल जाट की विरुदावली है, जिनके सम्बन्ध मे इतिहासज्ञो की धारणा है कि यदि पेशवा की सेना का संचालन भरतपुर के अनुभवी महाराज के कथनानुसार हुआ होता और वे रुष्ट होकर लौट न आए होते तो पानीपत के तीसरे युद्ध मे मरहठों की पराजय कभी न होती। शुक्ल जी ने ठीक ही लिखा है कि, ऐसे चरित्र को लेकर जो गांभीर्य कवि मे होना चाहिए, वह इनमें नही पाया जाता।*

किन्तु ऐसे प्रयोगो के कारण उत्पन्न शैथिल्य की शांति के लिये उपचार रूप मे एक अन्य गुण भी इनके पास था। वह है इनके द्वारा किये हुए विविध छंदों का प्रयोग। केशव की भांति इन्होंने भी अनेक प्रकार के छन्दों का सफल-प्रयोग किया है। इकतीस अंकों के इस काव्य में लगभग निन्नावे प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है।

छन्दों की इस विविधता के कारण नीरसता की मात्रा बहुत कुछ कम हो गई है। उसके कम होने का एक दूसरा भी कारण है, वह है ग्रंथ मे विभिन्न-भाषाओं का प्रयोग। इस सम्बन्ध मे दिल्ली की लूट वाला अंश विशेष उल्लेखनीय है। नाना देश की स्त्रियों का नानाप्रकार की भाषाओं में विलाप बड़ा मनोरंजक हो गया है। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान मे रखना होगा कि इस

* राचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ४२३।

प्रकार का भाषा के साथ खिलवाड़, कहीं-कहीं सीमा का भी अतिक्रमण कर गया है, जिससे कृत्रिमता दृष्टिगोचर होने लगती है।

कहीं-कहीं अलंकारों के प्रयोग में कृत्रिमता तथा शिथिलता आ गई है। अनुप्रास का लोभ तो कवि को इतना है कि सूची-परिगणन में नामों को भी वह अनुप्रास के हिसाब से सजाता है। यथा—

"सोमनाथ सूरज सनेही सेख स्यामलाल,
साहिब सुमेर सिवदास सिवराम हैं।
सेना पति सूरति सरवसुख सुखलाल,
श्रीधर सुबलसिंह श्रीपति सुनाम है।
हरि परसाद हरिदास हरिबंस हरी,
हरिहर हीरा से हुसेन हितराम हैं।
जस के जहाज जगदीस के परममीत,
सूदन कबिन्दन कौ मेरो परनाम हैं ॥६१॥"

[सु० च०; पृ० ३]

एक दोष और जो सूदन के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है, वह यह है कि इन्होंने अपनी कविता में 'जु' और 'सु' का निरर्थक-प्रयोग अत्यधिक किया है। यहाँ तक कि नामों के दो खण्ड करके उनके बीच में भी 'सु' अथवा 'जु' भिड़ा दिया गया है। यह शैथिल्य-दोष से भिन्न नहीं कहा जा सकता। कहीं कहीं तो इसके कारण अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यथा—

फरु क जु सेर, (फरुखसियर) किले जुदार, मीराँ जु साहि, जुहिमायूँ (हुमायूँ) इत्यादि।

कुछ स्थलों पर तो लगातार कुछ पंक्तियों तक 'सु' का प्रयोग चला जाता है। उदाहरण-स्वरूप द्वितीय जंग से निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती है—

"बलकैं सुऊँट कतार । तिनपै अनेक सवार ॥
ललकै सुपाइक स्थ । पलकैं न गखत मथ्थ ॥
ढलकैं अनत सुढाल । सलकै सुसैल बिसाल ॥
× × × ×
गलकै सुसेली स्याम । बलकै सुबचन उदाम ॥
[सु० च०, पृ० ३७]

गणना करने पर ज्ञात हुआ कि ग्रन्थ भर मे 'सु' १२५ बार और 'जु' २५ बार आया है।

सुजान-चरित्र का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वीर-रस के अतिरिक्त अन्य रसों पर भी कवि का समान अधिकार है। शृंगार-रस सम्बन्धी कुछ पद तो इतने सुन्दर है कि वीर-रस की अपेक्षा उनमे ही कवि को अधिक सफलता मिलती हुई दिखाई देती है। मंगला-चरण के पद शेष ग्रंथ के पदों की अपेक्षा अधिक सुन्दर है। उदाहरण के लिये द्वितीय जंग से शंकर की वंदना का एक छप्पय उद्धृत किया जाता है:—

रुकम अचल बर भूमि सुभग सुरसरि जल बिलसत ।
त्रिविध पवन जहँ गवन भवन दुति ससिकर मिलिसत ।
सेनानी सुरदेत ताल बेताल लगावत ।
ग ग धरनि भखि भंग रंग सौ डॅबरु बजावत ॥
गिरिसुता सहित आनन्द सौ दै चुटकी थेइ थेइ करत ।
गननाथ नचत तांडव रचत सुंड हलत विघननु दहत ॥
[सु० च०, पृ० २८]

इसमे भाव और भाषा दोनों प्राञ्जल और सुसज्जित हैं।

सूदन की भाषा साहित्यिक-ब्रज-भाषा है, यद्यपि उसमें अन्य भाषाओं का पुट भी यत्र-तत्र मिलती है। ब्रजनिवासी होने के कारण इस कवि के अधिकांश कवित्तो तथा सवैयों मे

भाषा

ब्रज-भाषा का सौंदर्य स्वभावत: निखर आया है परन्तु भुजंगप्रयात, भुजंगी, और कड़खा इत्यादि छन्दो मे जहाँ शब्द-नाद की उद्-भावना की चेष्टा की गई है वहाँ डिंगल और मारवाड़ी के रूप घुस आये है और भाषा की स्वाभाविक-मृदुता नष्ट होगई है। ब्रजभाषा की स्वाभाविक कोमलता निम्नलिखित कवित्त मे देखी जा सकती है:—

अदिति असोक भरी सोक भरी दिति और
　　दोष भरी पूतना अदोष करी ओपिका।
कंस हिये भौ भरी अभौ भरी अंधबंस
　　पंडव कै कीरति अकीरति की लोपिका।
लाज भरी द्रोपदी सुराज भरी ब्रजभूमि
　　कूबरी इलाज सो कुवाज करी कोपिका।
देवकी अनन्द भरी ऊगे ब्रजचन्द घरी
　　भाग भरी जसुदा सुहाग भरी गोपिका॥

[सु० च० पृ० ४]

सूदन की भाषा में ब्रजभाषा का पूर्ण-प्रभाव रहते हुए भी पंजाबी, मारवाड़ी बैसवाड़ी तथा पूर्वी के प्रयोग प्रचुर परिमाण में आ गये हैं। 'सुजान-चरित्र' मे इतनी भाषाओं का एक साथ स्वतंत्रता-पूर्वक प्रयोग देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि माथुर चौबे होने के कारण कदाचित सूदन जी पंडागिरीका व्यवसाय भी करते रहे हों और इस कार्य मे विभिन्न-प्रदेशो से आये हुए यात्रियो के सम्पर्क से उन्हे अन्य भाषाओं के प्रयोगों का भी अभ्यास हो गया हो। यदि ऐसा नही होता तो इतने धड़ल्ले के साथ दूसरी बोलियों के प्रयोग सूदन मे नही मिलते। 'सुजान-चरित्र' मे ऐसे प्रयोग अनेक हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

पंजाबी:—किथ्थे जला पेड किथ्थे उजले मिढाड असी,

तुसी कोलओवाँ असी जिंदगी बचावांहाँ।

भट्ट ररा साहि हुआ चदला बजोर वेलो

एहा हाल कीता वाह गुरु नू मनावांहाँ।

जावां किथ्थे जांवाँ अम्मा बाबे केही पांवाँ जली

एही गल्ल अथ्थें लथ्यौ लथ्यौ 'गली जांवांहाँ ॥

[सु० च० पृ० १६८]

मारवाडी:—आव्या तमे आगल न ल्याव्या .माटी कागलनै,

डागला नबीट्ट कौं कठामरुन लीध्यूं छै।

डोकरी न छैया साथैं मोकल्या न ,मामी हाथै

घरणू न आये भूडा पोतियौ न दीध्यू छै।

[सु० च० पृ० १६८]

ढुंढारी:—

कठे रहा ठाकरां कि ठाकरा पधारया बीरा।

चाकरां लारैं म्है उभोर पग धांवां छां।

इसीप्रकार

'मरना हमें बीस बिस्से बिचारौ।

हैगो नफा शत्रु जु मारि डारौ ॥',

मे "हैगी" आगरे की बोली से ले लिया गया है।

'सुजान-चरित' मे पूरबी बोली के रूप भी यत्र-तत्र मिलते हैं:—

बबुआ न आवा मोर भैयन न पावा थाक,

तुपक की न लावा गांठि डीबू आन धावा है।

चाकरी की लकरी की फकरी बिहानी कीन्ह,

मनई न कनई दिहांन यां बतावा है।

अस कर कीन्ह म्वार दिल्ली का नवाब ख्वार,
चीन्हत न मार मनसूर जट्ट ख्यावा है।
तुहिकाँ न मुहिकाँ कपी लुहिकाँ रही न जाग,
भाग कुल और तोपखान बाघ ब्यावा है।

[सु० च० पृ० १६७-७०]

इस कवित्त के पांचवे चरण मे 'म्वार' शब्द वैसवारी का है।

फारसी-मिश्रित-भाषा का भी एक उदाहरण देखिये:—

महलसराइ सैरवाने बूआ बूबू करौ,
मुझै अपसोच बड़ा बड़ी बीबी जानी का।
आलम मे मालुम चकत्ता का घराना यारौं,
जिस का हवाल है तनैया जैसा तानी का।
खाने खाने बीच से अमाने लोग जाने लगे,
आफत ही जानौं हुआ ओज दहकानी का।
रब की रजा है हमैं सहना बजा है बख्त,
हिन्दू का गजा है आया और तुरकानी का।

[सु० च० पृ० १६६]

कही-कही शुद्ध बजभाषा के बीच पंजाबी के प्रयोग आ गये है:—

स्वा लई आप तजी जिया की।
वाही प्रिया की न किसूमिया की।

इस में 'किसूमिया' शब्द 'जटवारे' में बोला जाता है और पंजाबी से प्रभावित है।

'सुजान-चरित' की भाषा पर समग्र-रूप से विचार करने पर यह स्वीकार करना पड़ता है कि भाषा के दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ अत्यंत उच्च कोटि का है—इस में शैथिल्य कही भी नहीं है।

सुजान-चरित

सुजान सलाबतखाँ युद्ध-वर्णन

तृतीय-जंग

कवित्त

बाप विष चाखै भैया खटमुख राखै देखि,
आसन मैं राखै बसवास जाकौ अचलै।
भूतनु के छैया आस पास के रखैया,
और काली के नथैया हू के ध्यानहू ते न चलै।
बैल बाघ बाहन बसन कौ गयन्द-खाल,
भाँग कौ धतूरे को पसार देतु अचलै।
घर को हवालु यहै संकर की बाल कहै,
लाज रहै कैसे पूत मोदक कौं मचलै ॥ १ ॥

दोहा

ठारौ सौ रु पचोतरा, पूस मास सित पच्छ।
श्री सुजान विक्रम कियौ, ताहि सुनौ नर दच्छ ॥ २ ॥

छन्द अरिल्ल

बहुत दिना बीते निज देसहि। तबहीं दूत कह्यौ संदेसहि ॥
दिल्लीपति बकसी इहि देसहि। आवत तुम सौं करन कलेसहि।
सहस तीस असवार संग गनि। पैदल पील फील बहुतै भनि।
जोरैं तुरक सहस दस बीसहि। आवत तुम सौं करि मन रीसहि।
अलीकुली, रुस्तमखाँ संगहि। हकीमखाँ कुबरा हित जंगहि।
फतेअली औरो बहु मीरन। राजा राउ लयैं संग धीरन।
इन्द्रनगर दच्छिन दिस कढ्ढिय। निपट गरूर पूर हिय चढ्ढिय।
कछू दिननु आवै मेवातहि। करिहैं तहाँ अधिक उतपातहि।

यातें बेगि करौ कछु घातहिं । जातें वाकौ होइ निपातहिं ।
अब जो नीक होइ सो कीजहि । याहि मारि जग में जस लीजहि ।
यौ कहि दूत नाइ निज सीसहिं । सूरज आइ कह्यो ब्रज-ईसहिं ।
तुरक सहस जोरें दस बीसहि । दिल्ली ते निकस्यौ धरि रीसहि ।
हम सों जुद्ध करन मन राखतु । महाराज मैं हूँ अभिलाषतु ।
आइस ईस तुम्हारो पाइय । तौ याकौ कछु हाथ लगाइय ।
तब ब्रजेश सुनि कैं यह भाषिय । तात मतौ सो मन यह राखिय ॥३॥

सोरठा

दिल्ली ते कढ़ि दूरि, जब आवै मैदान भुव ।
एक झपट करि सूर, याकौ दूरि गरूर करि ॥ ४ ॥

दोहा

मतो मानि बदनेस कौ, सूरज उदित प्रतापु ।
आइसु लै असवार ह्वै, करि हरदेव सुजापु ॥ ५०॥

छन्द पद्धरी

जब चढ़्यो सिंह सूरज अमान । बज्जे निसान घन के समान ।
पीरे निसान सोभित दिसान । अरि गहन दहन मानहुं कृसान ।
सुंडाल चलत सुंडनि उठाइ । जिनकै जंजीर झनझनत पाइ ।
घनघनत घंट अरु घुघुर-माल । भनभनत भवर मद पर रसाल ।
छुनछुनत तुरंगम तरह दार । फनफनत बदन उच्छलत बार ।
सनसनत सिमिटि जब करत दौर । गुबगिनत सु तिनके कबिनु-मौर
सोहैं अनेक गजगाह वंत । चमकंत चारु कलगी अनंत ।
झलकंत जिरह बखतर नवीन । लमकंत बीररस भट प्रबीन ।
टमकंत तबल टामक बिहद्द । ठमकंत टाप बिनु भुव गरद्द ।
ढमकंत ढोल ढफला अगार । धमकंत धरनि धौंसा धुंकार ।
खमकंत वीर करि करि सुघोष । लमकंत तुरंगम पाइ पोष ।
हमकंत चले पाइक अनेक । इक जंग रंग जानत बिबेक ।

कोदंड चंड कर कटि निषंग । इक चंड भुसुंडे ले तुफंग ।
इक सेल साँग समसेर चर्म । रनभूमि भेद जानत सुपर्म ।
सब चढ़े बड़े उच्छाह पूरि । छपि गयो गगन रवि उड़िय धूरि ।
चतुरंग चमू सत रङ्ग रूप । सजि चढ्यौ सूर सूरज अनूप ।। ६ ।।

दोहा

कूच कियौ डेरा दियौ, नौगाएँ मेवात ।
लग्न तनेने तेह सौं, जुद्ध हेत ललचात ।। ७ ।।

हरगीत छन्द

भूपाल-पालक भूमिपति बदनेस नन्द सुजान है ।
जाने दिलीदल दक्खिनी कीने महाकलकान है ।
ताकौ चरित्र कछूक सूदन कह्यौ छंद बनाइ कै ।
सजि सैन सूरज चढ़हिंगो कहि प्रथम अंक सुनाइ कै ।। ८ ।।

इति प्रथम अंक ।। १ ।।

छन्द पवंगा

सूरज चारि उपाय प्रवीन सुचित्तई ।
साम दाम अरु भेद दंड धरि नित्तई ।।
खल के मन की लैन बात करि सील की ।
बिदा करी समुझाइ प्रवीन वकील की ।। १ ।।
बल-ज्ञान लोभ करि हीन है ।
स्वामि-काम मैं लीन सुसील कुलीन है ।।
बहु विधि बरनै बानि हिये नहि भय रहै ।
पर-उर करै उदेग दूत तासौं लहै ।। २ ।।
खान सलाबत पास वकील सुजाइ के ।
करी सलाम कवाद अदाब बजाइके ।।
नैननु लई सलाम सलाबतखान ने ।
कह्यौ कहा कहि वेग सुतोहि सुजान ने ।। ३ ।।

दोहा

कुँवर बहादुर ने प्रथम, तुमकौ कह्यौ सलाम।
फेरि कही कि नवाब इत, आये है किहि काम ॥ ४ ॥
करत चाकरी साह की, हम पाया यह देस।
ताहि उजारत आप क्यौ, तुमकौ कह्यौ सदेस ॥ ५ ॥
जो कछु तुम्है दिलीस ने, कह्यौ ताहि कहि देउ।
ता माफिक हम सौ अबै, आप चाकरी लेउ ॥६॥

छन्द निसानो

इसी गल्ल धरि कन्न में बकसी मुसक्याना।
हमनूं बूझत हो तुसी क्यों किया पयाना ॥
असी आवने भेद नू अब लौं नहिं जाना।
साह अहम्मद ने मुझे अपना करि माना ॥
तखत आगरा ग्वालियर हिंडौन बयाना।
होडिल पलवल अलवरौ मेवात सध्याना ॥
वार पार मथुरा तलक हूवा फरमाना।
बकसी की जागीर दे बकसी मैं ठाना ॥
इनमें ते जे तुझ तरै तहं करि मो थाना।
दा कगेर दै साहि नूं संग होहि सयाना ॥
होर कह्या है साहि ने सो भी सुन जाना।
असदखान सरकार दा चाकर क्यों भाना ॥
तैं अपने मन मैं गना बूडा तुरकाना।
कै एक गल्ल कबूल करिकै हो मरदाना ॥
जब यो कह्यो नवाब ने सुन दूत अमाना।
मामल तिनहिं न होइसी दिल अंदर जाना ॥
तिसी घड़ी नव्वाब सें कर जोरि बखाना।
जेहा जिसनूं लोड़िये तेहा फुरमाना ॥

वह बंदा है साहि दा दरपुस्त पुराना ।
दोनों तखतों दै बिचौ तद ही ठहराना ।।
जिसका नाउ सुजान है देसी नहि आन ।
जमी न अंगुल छोड़सी यह उस दा बाना ।।
मैनूं रुखसद दीजिये नाहक बतराना ।
हुए बंदा दुहुँ ओर दा बंदगी सुजाना ।।
ये जुवाब नव्वाब सुनि दिल माहि रिसाना ।
तद वकील सैं यों कह्या करि जाहि पयाना ।।
उसी बख्त सिर नाइके सो हुआ रवाना ।
आगे सिंह सुजान को भेजा परवाना ।।
अवल आपनी बंदगी बक्सी सतराना ।
जसी कही तेई लिखी नहिं नेकु भुलाना ।।
होर लिख्या इस तुरक नूं तेहा अधिकाना ।
जंग अखाड़े में इसे कीजै सनमाना ।। ७ ।।

सोरठा

श्रीव्रजेस को नंद, कागद बाँचि वकील को
अंग अंग आनन्द, हिये हरदेव कहि ।। ८ ।।
सूरज कियौ विचार, सब डेरा ह्वाँई रहे ।
चंचल हय असवार, पाइक चलो चलाक सों ।। ९ ।।

तोटक छन्द

रथ ऊँट गयंद मुकाम कियं । तिन संग पदातिनि राखि दियं ।
छ हजार सवार तयार लियं । तिहिं संग सुजान हरष्षि हियं ।
रवि ऊगत बार पयान कियं । हय के असवार न और बियं ।
करलै किरवान निसान दियं । जिहि के सम सूर न और बियं ।
तिहँ बार तुरंगम साजि घनं । असवार भयौ बदनेस तनं ।
रन जीतन को मन राखि पनं । करि दुंदुभि दीह अवाज घनं ।

जब कूँच कियौ रस बीर सनं । तब पीत पताकन सोभ बनं ।
जनु चञ्चल दामिनि सोभघनं । हय टापन सौं कहुँ होत ठनं ।
वह सेनु दरेरनु देति चली । मनु सावन की सरिता उफली ।
अहि सैल मनो मुख काढ़ि रहे । अरु ढालनु कच्छप रूप गहे ।
जल जोरि तुरंगम देखि रहे । जनु मीन जहाँ धुज देह लहे ।
द्रुम ज्यों द्रुम छाहति आवत है । इम सैन नदी सु कहावत है ।
दस कोस सुभूमहिं पीठि दियं । तिहिं थान मुकाम सुजान कियं ।
निस एक बसे परभात भयौ । तब आयसु सिंह सुजान दियौ ॥१०॥

सोरठा

है नवाब दस कोस, कोस पाँच औरौ चलै ।
दिखा दिल्ली कै जास, रोस भरे लरिहैं भलै ॥११॥
यो कहि सिंह सुजान, पाँच कोस कौ कूँच करि ।
चौकी करी अमान, सहस सहस असवार की ॥१२॥

छन्द पद्धरी

सरदार सुगोकुलराम गौर । जिहिं संग सहस हय करत दौर ।
तसु अनुज सु सूरतिराम संग । सत चार तुरीवर लेत जंग
सत पाँच तुरी कूरम प्रताप । सँग लिये जुद्ध पर-बल उथाप ।
अरु एक सहस बलिराम बीर । हय हंकि हँकारत समर धीर ।
सत चारि बाजि स्यौंसिंह धीर । इक सथ्थ हत्थ बल करि गँभीर ।
एक सहस बाजि कीने सनाह । वह धीर बीर महमद पनाह ।
सत बेद किवयानतु सहित जोर । रन-भूमि सिंह राना कठोर ।
सत एक हयंदनु लै उदग्ग । हरिनारायन जिहि प्रबल खग्ग ।
इहि भाँति और बलवान जोध । सब सत्रु हेत हिय धरत क्रोध।
इनके सुगोल किय चारि चंड । खल-खंडन तिनकौ बल अखंड ।
इनतैं जु अरध निजु राखि सथ्थ । जे हथ्थियनिहूँ सौं करत हथ्थ ।
इहि भाँति पाँच चौकी बनाइ । यह कह्यौ बचन तिनसौं सुनाइ ।

तुम जाहु चहूँ दिसि तें मरद्द। परबलहिं बैरि दीजै दरद्द।
जहँ खान पान पावै न जान। अरु जुद्ध बार सब सन्निधान ॥१३॥

दोहा

ऐसें बचन सुजान के, सबै सुभट उरधारि।
बकसी की तकसी करन, चले सेज पटतारि ॥ १४ ॥

छन्द भुजंगप्रयात

चहूँ ओर धाए धरा धूमधारें। धमंकें धरें पाइ दै दै हँकारें।
सबै ओर तें धाइ के धूम पारी। सुनें सैद की फौज ने भीति धारी।
हुते फौज ते बाहरे ते डराने। कुल-छी लगै ज्यौं पराए पियाने।
किहूँ धाइकै धाइकै पील लीने। किहूँ फील पाठे पटकि हाथ कीने।
किहूँ छैल ने बैल लै गैल चाही। किहूँ लै तुरी कौ घनी सैन गाही।
कहूँ फील फैले मनो है घटाए। भुसुंडीन सों मारि काहू हटाए।
भए सद के लोग सब्बे इकट्टे। मनो सिंह की सक सों रोझपट्टे।
तहीं सोर बाढ्यौ कहे जट्ट आए। करौ सावधानी रहौ ठौर ठाये।
सबै सैदकी फौज यौं खलभलानी। लगे आगिके ज्यौ उठै औटि पानी।
कही दौरि काहू सुनी आपबकसी। लगी एक ही बारही में धमकसी।
घरी एक में चेत ह्वै बीर बोल्यौ। घरी बार लौं आपनो सीस डोल्यौ।
करौ बे केरो बेगही सावधानी। बुलाओ नकीबो नहीं बात मानी ॥१५॥

दोहा

तब नकीब सौं यौ कियौ, हुक्कम सलाबतखान।
तोप बान अरु रहकला, चौकस करौ दबान ॥ १६ ॥
कटक बीच में राखिकै, इनसे यह कहि देउ।
आप आपने मोरचा, सब चौकस करि लेउ ॥ १७ ॥
लाबदार रक्खो किये, सबै अराबौ एहु।
ज्यो हरीफ आवै नजरि, तबै धड़ाधड़ देहु ॥ १८ ॥
तबही सूरज के सुभट, निकट मचायो, दुन्द।
निकसि सके नहि एकहू, कर्यौ कटक मसमुन्द ॥ १९ ॥

हरगीत छन्द

भूपाल-पालक भूमिपति, बदनेस नन्द सुजान है।
जाने दिलीदल दक्खिनी, कीने महाकलिकान है।
ताकौ चरित्र कछूक सूदन, कह्यौ छन्द बनाइ कै।
बकसीहि बेढ़न सुभट सूरज, दुतिय अङ्कहि धाइ कै ।। २० ।।

इति द्वितीय अङ्क ।। २ ।।

छप्पय

छुट्टन लग्गे उदंड चंड कोदंड भुसुंडी ।
जब्बर जग्ग घनघोर मारु गोलन की मंडी ।
आस पास अजबोर भीर बहु मीरनु पारतु।
निकसि सकै नहि कोइ रैन दिन जुद्ध बिचारतु ।
इह भाँति कछुक बासर गएँ, तब बकसी रोसहि भर्यौ।
सरदार मद्धि दर बार जे, तिनहि आयु आइसु कर्यौ ॥

दोहा

तुम सवार इस बार हो, निकसौ सवै अगार।
मैं भी साइत देखि कै, एक करौगा मार ।। २ ।।
खान सलावत कौ हुकुम, वे अमीर सुनि कान।
अपये अपने मन लगे, जुद्ध हेत ललचान ।। ३ ।।
रुस्तमखाँ सुहकीमखाँ, अरु कुबरा अति चंड।
फतेअली सु अलीकुली साजी सैन उदंड ।। ४ ।।

छप्पय

उन्नत असित मतंग ललित कंचन अम्बारिय ।
घन दामिनि के भेस गजनु घटनु धुनि धारिय ।
रूकम रजत बर बाजि साजि साजे बहु रंगनि ।
तंगन लिए पतंग मनौ इम भरत छलंगनि ।। ५ ।।
अंगन अनूप कवचनि कसिय, लसिय मनौ फनिधर खरे ।

हयनाल हकि हथनाल हुव सुतनलि सनमुख धरे ॥५॥
दै दै दिग्घ निसान बान नीसान अग्ग धरि ।
चढे गयंदनु पिट्ठि दिट्ठि अति रोस रंग भरि ।
चँवर चलत चहुँओर चारु सिप्पर चमकावत ।
चलत चमू चतुरङ्ग मनहुँ पावस घन धावत ।
ठुक्कत तबल्ल इकताल्ल रव मल्ल भल्ल फेरत भले
सूरज-प्रताप-पावक निरपि मनु पतङ्ग आवत चले ॥ ६ ॥

पावकुलक छन्द

जबहीं कटक निकट तें कढ्ढे । पाँचौ चपल गयंदनि चढ्ढे ।
तबहिं अग्र उतपात सुबढ्ढे । गिद्ध आइ सनमुख रव रढ्ढे ।
लरत बिलाउ सामुहे आए । आमसिह श्रवननि फटकाए ।
सिवा शृगाल सामुहैं रोए । रजकु बस्त्र लायो बिनु धोए ।
अगिन धुंधात मनुज कर लाए । मुकुलित केस जटिल दरसाए ।
आनि उलूक धुजा पर बैठे । पलचर परत चमू मैं पैठे ।
चलत गयंद अचानक धुक्कैं । अक्कसमात चाल कौ चुक्कैं ।
आँकुस गिर्यौ महावत करतें । गद गद कंठ भए रन डर तें ।
नैनन नीर बह्यो तिहि बेरें । उठे रोम मानौं जम घेरें ।
भए इते उतपात महा ए । बस परि काल नहीं मन लाए ।
मानौ जमपुर जात पलाए । पाँचौ चढ़े गयंदनि आए ।
सहस दोइ दोई हय साजैं । पैदल पील बहुत गल गाजैं ।
भए आनि रनभूमि इकट्ठे । निकट सिंह के ज्यों मृगपट्ठे ।
कोर बाँधि पाँचौ भए ठाढ़े । आगे धरे जँजालनु गाढ़े ।
हथनाल रु हयनाल उदण्डी । तोप रहकला और भुसण्डी ।
अपनौ कटक घेरिकै ठाढे । कोस दोइ डेढ़क भुव बाढ़े ॥ ७ ॥

दोहा

तबही सिंह सुजान सों, कही दूत ने धाइ ।
आजु तुरक बाहर कढ़े, सजे सैन बहु भाइ ॥ ८ ॥

रुस्तमखाँ सुहकीमखाँ, कुबरा अरु बलिवारि।
फतेअली सु अलीकुली, निकसे जङ्ग बिचारि ॥९॥

सोरठा

सुनि तहँ सिंह सुजान, चारयो चौकी दृढ़ करी।
सहस दोइ लै ज्वान, आपु चल्यो पुठवार कौं ॥१०॥

छन्द अनुगीत

दुहुँ ओर धुंधिय धूरि रुंधिय चमक चुंधिय रूद्ध।
घनपटह बज्जिय गज गरज्जिय भीति भज्जिय कुद्ध।
हथनाल हंकिय तोप डंकिय धुनि धमंकिय चंड।
हयनाल छुडिय तरु भुसुंडिय धरनि खंडिय खंड।
दुदुंभि धमंकिय भेरि भंकिय तूर संकिय क्रूर।
अति घोर सोर भयान बढ़ढ़िय मारु रढ़ढ़िय मूर।
लखि दूरि नहहिं कद बिहहहिं बदन बहहिं टेरि।
कुहकंत बान चलाइ चंडिय देत गोल बखेरि।
धरधरत देत धवान कौं खरखरत बखतर अंग।
तरतरत तेहनु सौं भरे हर हरत ढाल निषग।
करकरत धनुषन कौं खरे झर झरत बीर सुतीर।
घरघरत घद्ध डिहाव सों नहिं टरत एकहुँ बीर।
दुहुँ देखि दपटत हयन झपटत जाइ लपटत धाइ।
फिरि फेरि अहुटत चलत चुहटत दुहूँ पुहटन आइ।
नहि जमनि ठट्ट अहट्ट खाइय रहिय पाइ रुपाइ।
ब्रज-बीरहू रनधीर रुप्पिय जैति हेत लुभ्याइ ॥११॥

छप्पय

या विधि जुद्धहि करत दिवस बीतन जब लग्गिय।
तुपक तोप जज्जाल चोट इनही की दग्गिय।

यह सुनि सूरज कहिव आज ए जान न पावैं।
करिहैं श्री हरिदेव सोब करनौ कह तामैं ॥
यों बचन मानि सबही सुभट सनमुख धाइय रास धरि।
इकबार सिमटि चहुँ ओर ते कहत देव हरिदेव हरि ॥१२॥

भुजंगी छन्द

छुटे एकही बार सो जुद्ध कानैं। जुटे जाइकै धाइकै छोह साजे।
खुटे खग्ग हत्थौं अरब्बीनु चढ्ढे। हटैं नाहिं कोऊ सबै साथ बढ्ढे।
चहूँ ओर सौं सोर यौं घोर छायौ। मनौ सिंधु सद्दे हवा कौ हलायौ।
किहूँ सेल सम्भारि कै हाँक कीनी। बियै तेग सौं काट कै डारि दीनी।
किहूँ बाढ़ के सेर समसेर वाही। किहूँ लै भुसुंडीनु सौं देह दाही।
तहां चंड कोदंड लै हत्थ केते। धए सत्रु के सामुहं पग्ग देते।
कहूँ लेहु रे लेहु रे लेहु कहैं। कहूँ देहु रे देहु रे बीर बहैं।
अहट्टैं भयो सद्दता भूमि माही। तहां आपनी आपनी चोट वाहीं।
कहूँ सेल सन्नाह कौ फोरि बैठे। मनौ भानु मैं फनी जात पैठे।
कहूँ सांग दुहूँ आंग कौं भेदि अच्छी। किधौं औन पानी चली भाजि मच्छी।
लगे तीर तीखे कछू भाल दीसैं। मनो तीन नैना धरे ईस रीसैं।
कहूँ तेग तेगौं झरै झार उट्ठो। मनो घोर ज्वालामुखी जङ्ग रुट्ठी।
किते भाल भालेनु सौं लाल कीने। मनौ फाग के ख्याल के रंग भीने।
भरे बत्थ सौं बत्थकै लत्थपत्थैं। मुखौ मारुही मारु कौ बीर कत्थैं।
पलक एक ऐसे भई मारु भारी। लखैं दूरिही तैं हँसै रैनचारी।
धए सूर के सूर दै पाइ अग्गे। डराने तही खान के लोग भग्गे।
जिन्हैं स्वामि के काम की लाज भारी। खड़े खेत खूनी नही संक धारी।

दोहा

अलीकुली सुफतेअली, कुबरा गए पलाइ।
रुस्तमखां रु हकीमखाँ, ए पग रहे गड़ाइ ॥१४॥

हरगीत छन्द

भूपाल पालक भूमिपति, बदनेस नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिनी, कीने महाकलिकान हैं॥
ताको चरित्र कछूक सूदन, कह्यौ छंद बनाइ कै।
अति दुंद जुद्ध बिरुद्ध उद्धत, तृतिय अंक सुनाइ कै॥१५॥

इति तृतीय अंक

दोहा

दुहूँ गयंदन पैं चढ़ै, धनुष बान गहि हथ्थ।
जम-किंकर जिमि कोह कै, नरनु करत लथ पथ्थ॥१॥

छप्पय

तिनके जुद्धहिं देखि बहुत चरबीचर आइय।
जुग्गिनि जोरि जमाति जहाँ जाहर जमुहाइय॥
काली करत कलोल खलखलै तहँ खबीस गन।
भैरव भभर्‍यौ फिरत पिता के हार हेत रन॥
जहँ ईस दूत जगदीस के, गीरबान गनिका उमगि।
जहँ रुस्तमखाँ रूहकीमखाँ, स्वामिकाम हित रहिये पगि॥२॥

संजुता छन्द

रन ते न पाइ चलाइयै। धनुबान लै समुहाइयै।
बलु आपनौ सब संग लै। बिफरे सुबीर उमङ्ग लै।
तिहिं देखि जट्ट झपट्टिए। पल ए कमाहिं दपट्टिए।
तहँ गौर गोकुलराम ने। बहु रंग जंग मचावने।
करि क्रुद्ध जुद्धहिं पिल्लियौ। गहि सेल साँगनु भिल्लियौ।
तिहि भ्रात सूरतिराम है। बहु सूरता कौ धाम हैं।
बलिराम बिक्रम - आगरौ। गहि तेग जुट्टि उजागरौ।
हरताप कूरम केहरी। बरसाइ बाननु की झरी।
सिवसिंह सार सम्हारिकै। मिलि गयौ फौजहिं फारिकै।

तब ही सुसंभू पूत ने । गहि तेग बल मजबूत ने ।
गज कुम्भ दइ्य करक्कि कै । मनु परिय विज्जु तरक्कि कै ।
फिरि धाइ गज गही दली । कसना बिदारिय भुजबली ।
सु हकीमखाँ भुब पारियौ । गज पट्टि तें गहि डारियौ ।
तसि गिरत लोग निहारियौ । मनु कन्ह कंस पछारियौ ।
तबही सु सेल रु साँग की । बरषा भई चहुँ आँग की ।
तबही सु औरन दौरि कै । लिए रुस्तमा झकझोरि कै ।
करि एक एकहि चोट सौं । राख्यौ हकीम हुँ ओट सौं ।
तबही सु. तिनके साथ के । करि एक एकहि हाथ के ।
सरदार जूझत खेत मैं । भजि गए बहुत अचेत मैं ।
तजि कै हथ्यारनु पिट्ठि दै । धस गए लसकर निट्ठि दै ।
ब्रज बीरहू तिन संगही । चलि गए कटक उमंगही ॥ ४ ॥

दोहा

तब ही बकसी के कटक, खल भल परी अपार ।
आए आए सब कहैं, सूरज सुभट उदार ॥ ५ ॥
घरी चारि डेरा लुटे, बुटे तुरक बेहाल ।
जट्ट जट्ट कहते फिरैं, सब ने जान्यो काल ॥ ६ ॥
फेरि बगद ब्रज-बीर सौं, आए ताही खेत ।
जहाँ परे रुस्तमबली, अरु हकीमखाँ रेत ॥ ७ ॥

कबित्त

हुब्ब पै हकीमखाँ सुधक्कधक्क छोडि धायौ,
पग न डिगायौ भरि आयौ मन रीस नैं ।
निपट भयान छिन मान रन थान कर्यौ,
सान धरै बाननु चलाय दस बीस नै ।
रेत खेत भयौ तऊ सेत जस लेत रह्यौ,
नेत नेत गायौ कोटि तीन और तीस नैं ।

जोगिनी रकत पायौ तन ताकौ प्रेतपूत.
सीस पायौ ईन ने असीस ब्रज-ईस नैं ॥ ८ ॥

तोम तम छाए सुलतान दल आए, सो तौ.
अमर भजाए उन्हें छुई है अचकसी।
काल कैसी रसना कराल करवाल तेरी.
व्याल भाल कटि कै करन लागी लकसी।
सूदन सुजान मरदान हरिनाराइन.
देव हरिदेव जंग जैति ताहि बकसी।
जूझत हकीमखाँ अमीरनु कैं धकसी,
औ बकसी के जिय मैं परी है धकपक सी ॥९॥

चौकतु चकत्ता जाके कत्ता की कराकनि सौं,
सेल की सराकनि न कोऊ जुरे जंग है।
केंयक अमीर मीर धीर तें फकीर करै,
बीर बलबीर कौं सदा ही सुभी सग है।
सूदन सकल देस देसन अदेस भयो,
भाजत दुवन ज्यौं लिखैं तुरंग तङ्ग है।
जैति कौ निधान तेज भान के समान मान,
आजु तौ जहान मैं सुजान सुख रंग है ॥१०॥

सवैया

जुद्ध जुरे न मुरे ब्रजबीर, सुसेलन सौं धकपेल मचाए।
जुग्गिन खप्पर पूर नची, पर के सिर दौर हरै पहराए।
फेर फिरे तन श्रौन भरे, मनु भोर के भान सुरेस पैं आए।
देखत सिंह सुजान अमान, सुजान भरे उठि अंक लगाए ॥११॥

त्रिभंगी छन्द

बाजे सहदाने सुजस पुराने तूर पुराने गुन गाने।
बकसी दल भाने मंगल माने यौ सुख साने हरषाने।

आए अतुराने बाँधे बाने जे मरदाने समुहाने।
ते कंठ लगाने दै बहु माने सूरज माने जग माने॥१२॥

छन्द हरगीत

भूपाल-पालक भूमिपति, बदनेस-नन्द सुजान हैं।
जाने दिलीदल दक्खिनी, कीने महाकलिकान है।
ताकौ चरित्र कछूक सूदन, कह्यौ छंद बनाइ कै।
सु हकीम रुस्तम बित्तियौ, रन अरु चौथो गाइकै ॥१३॥

इति चतुर्थ अङ्क

तोमर छन्द

तबही सलाबत खान। मनमै भयो कलिकान।
हत जानि दोऊ बीर। अब को धरै रन धीर।
जबही सु साम उपाइ। अपने हियैं ठहराइ।
तबही वकील बुलाइ। कहियौ बहुत समुझाइ।
तु जा सुजानहिं पास। हमसौ करैं इखलास।
सब मुलक उसकौ देहुँ। अरु आपने सँग लेहुँ।
ज्यौं बने त्यौं तू लाउ। करिहौ बड़ा उमराउ।
जब यौं कही नव्वाब। सु वकील दीन जुवाब।
ज्यौ कहत आपु नवाब। त्यौ कहौ जाइ सिताब।
वह है सुजान अमान। जो मानिहै बलबान।
कहि यौं उठे सिर नाइ। तिहि बार आयौ धाइ।
जहँ हो ब्रजेस कुवार। रनभूमि कौ जितवार।
तिहि निकट पहुँच्यौ जाइ। करि राम राम बनाइ।
तिहि देखि सिंह सुजान। कछु लग्यो मृदु मुसिकान॥१॥

दोहा

कहि भेज्यौ सु नवाब ने, सो सब सुनी सुजान।
कही कि कह्यौ नवाब कौं, हम कौं सबै प्रमान॥२॥

तब सूरज ने यों कह्यो, मंद मंद मुसिकाइ ।
मेरो जाय सलाम तू, कहियो सीस नवाइ ॥३॥
बेअदबी हमतें बनो, ताहि न राखैं चित्त ।
ज्यों चाकर हम साहि के, त्यों नवाब के नित्त ॥४॥
बिनती एक नवाब सों, मेरी रुखसद देहिं ।
लालासिंह जवाहरै, अपनो हरवल लेहिं ॥५॥
जैसी कही नवाब की, मानी सिंह सुजान ।
त्योंहीं सूरज की कही, करी सलाबतिखान ॥६॥
लालासिंह जवाहरै, लीनो बेगि बुलाइ ।
सब सेना ताकौ दई, बकसी दियौ मिलाइ ॥७॥
श्रीसुजान के पूत कौ, हरवलु लियौ नबाबु ।
कूंच ढुंढाहर को कियो, दोउन गाँव्यौ दाबु ॥८॥
मुस्तकीम लखि तनय कौं, हिय हरिदेव मनाय ।
धायो आयौ ब्याह कों, रैन दिना इक भाय ।९॥
तीन कर्म में एकहू, ज्यौ मथुरा में होइ ।
फेरि न आवै जगत मैं, यह बिचार चित टोइ ॥१०॥
दोइ कर्म परवस निरखि, एक जान निज हाथ ।
कर्यौ ब्याह मथुरा पुरहि, कृपा पाइ यदुनाथ ॥११॥

इति तृतीय जंग ।

जोधराज

'हम्मीर-रासो' के रचयिता जोधराज के जीवन-वृत्त से संबंधित अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं। उनके द्वारा रचित, एक मात्र ग्रंथ हम्मीर-रासो में, आत्म-

परिचय

परिचय के रूप में केवल निम्निलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं—

पृथिराज राज जग भौ प्रसिद्ध। भृगुवंश मध्य प्रगटे सुसिद्ध।
नृप चन्द्रभानु तिहि वंश मध्य। किरवान दान दोऊ प्रसिद्ध।
पिच निबराण जग ग्राम नाम। जुत वर्णाश्रम निज धर्म धाम।
जय कीरति भुवमंडल उदार। अरु तेज प्रतापी बल अपार।
सब कहैं राठ को पातिशाह। जस श्रवन सुनन की सदा चाह।
द्विजराज गौड-कुल जग प्रसिद्ध। विद्या विनीत हरि धर्म्म वृद्ध।
सब दया दान उद्दार वीर। गुणसागर नागर परम धीर।
कुल पंच वृत्त के मूल जान। द्विज आदि गौड़ जानत जहान।
सौ चौदह द्वै चालीस च्यार। जन सासन सागर अति उदार।
अब सब को किंकर मोहि जानि। ऋषि अत्रि गोत्र में जन्म मानि।
डिड्वरिया राव कहि बिरद ताहि। शुभ राठदेश में उदित आहि।
तिहि नाम ग्राम भल वीजवार। सब प्रजा सुखी जुत वरण चार।
जहँ बालकृष्ण सुत जोधराज। गुन जोतिष पंडित कवि समाज।
नृप करी कृपा तिहि पर अपार। धन धरा बाजि गृह बसन सार।
बाहन अनेक सत्कार भूरि। सब भाँति अजाची कियो मूरि।
नृप एक समय दरबार माहि। रासो हमीर कह्यौ सुन्यों नाहिं।

[ह० रा०; पृ० २-३]

ज्ञातव्य बातें इसमें इतनी ही हैं कि पृथ्वीराज के वंश में "राठ पातिसाह" उपाधिधारी चंद्रभान नामक राजा किसी

निम्बराण नामक स्थान का अधिपति था। जोधराज इसी राजा के आश्रित थे। कवि अत्रिगोत्रीय-गौड़-वंश कुलोत्पन्न-ब्राह्मण था, जो काव्य-कला मे निपुण होने के साथ ही साथ ज्योतिष-शास्त्र का भी ज्ञाता था। उसके पिता का नाम बालकृष्ण था। राजा चन्द्रभान की ही आज्ञा से कवि ने "हम्मीर-रासो" की रचना की। किन्तु उक्त विवरण मे कवि की जन्म-मरण-तिथि पर कोई प्रकाश नही पड़ता।

हम्मीर-रासो

जोधराज का एक मात्र ग्रन्थ "हम्मीर-रासो" प्राप्त है, जिस के कुल ६७६ छंद है। प्रारम्भ मे गणेश तथा सरस्वती की वन्दना की गई है, तत्पश्चात् पृथ्वीराज के कुल मे उत्पन्न चन्द्रभान का वर्णन करते हुए कवि ने अपना परिचय दिया है। उक्त चन्द्र-भान ही निम्बराण का जागीरदार था और उसी के दरबार मे आदि गौड़-कुलोत्पन्न अत्रिगोत्रीय बालकृष्ण के पुत्र जोध-राज जी रहते थे; जिन्हे वहाँ का कवि-संप्रदाय 'डिडवरियाराव' के नाम से पुकारता था। हम्मीर की वंशावली प्रस्तुत करने के लिए कवि ने पौराणिक शैली का अनुकरण करते हुए कल्पांतर के प्रारम्भ मे सृष्टि-रचना के उपाख्यान से कथा का प्रारम्भ किया है। उनके अनुसार प्रथम कल्प के आदि में संसार रूपी उपवन के जड़-चेतन, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी पदार्थ बीजरूप से अनादि परमात्मा के उदर मे स्थित थे और जगदीश्वर योग निद्रा मे निमग्न थे। उन्होने अपनी इच्छा के अनुकूल माया को उत्पन्न किया और नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।

सारांश

जलज से उत्पन्न ब्रह्मा ने बहुत काल पर्यंत विचार-निमग्न रहने के पश्चात् तप करके सृष्टि उत्पन्न करने का निश्चय

किया। सर्वप्रथम उन्होंने पंच महतत्वो की रचना की और तत्पश्चात् बीज-वृत्तादि जड़-पदार्थों को रचना कर तथा सनक-सनंदन सनत्कुमारादि चार पुत्रों की उत्पत्ति करके मानव सृष्टि का विस्तार करना चाहा; किंतु कुमारों के अखण्ड ब्रह्मचर्य-धारण करने से उनको निराशा हुई। इसलिये ब्रह्मा ने उसी विधान से अन्यान्य मुनिवरो की रचना की। मन से मरीचि, कान से पुलस्त्य, नाभि से पुल्ह, त्वचा से नारद, छायासे कर्दम, पीठ से अधर्म, कण्ठ से धर्म और ओष्ठ से लोमषादि अनेक ऋषि हुए।

ब्रह्मा के पुत्र मरीचि की तेरह स्त्रियाँ थीं जिनमे एक का नाम कला था। कला से कश्यप और धर्म दो पुत्र हुए। अत्रि के तीन पुत्रों में बड़े का नाम सोम हुआ जिससे बुद्ध और फिर बुद्ध से पुरूरवा नामक पुत्र हुआ। इसी पुरूरवा के छः पुत्र हुए जिनसे चन्द्रवंशियो के छः कुल विख्यात हुए।

इसीप्रकार भृगु के कुल में परशुराम हुए, जिन्होंने सारी पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया। क्षत्रियों के समूल नष्ट हो जाने पर सारी वसुंधरा अनेक अमानुषी-अत्याचारों से पीड़ित हुई। इससे भयभीत होकर ऋषियो ने फिर से क्षत्रियो की उत्पत्ति के लिये आबू पर्वत पर एक यज्ञ किया। उसी यज्ञ कुण्ड से क्रमशः चालुक्य, परमार और प्रतिहार क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई। जब इनसे भी दैत्यो का नाश न हुआ तो ऋषियो ने द्वितीय बार यज्ञ किया, जिससे चहुआन की उत्पत्ति हुई, जिसने ऋषियो का आशीर्वाद प्राप्तकर सारे दैत्यो को समूल नष्ट कर दिया।

इसी चहुआन-वंश में आगे चलकर बारहवी शताब्दि के प्रारम्भ में जैतराव नामक एक राजा हुआ। एक दिन

शिकार खेलते समय वह जंगल मे अपने साथियों से पृथक हो गया। बाराह का पीछा करते हुए वह पद्मऋषि के आश्रम पर पहुँचा। ऋषि की आज्ञा शिरोधार्य कर राजा ने भयंकर तप करके शिव को प्रसन्न कर लिया और सं० १११० वैशाख सुदी अक्षय-तृतीया को शनिवार के दिन रणथम्भोर के दुर्ग की नींव डाली।

पद्मऋषि उसी दुर्ग मे रहकर उग्र तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने मकरध्वज को षड्-ऋतु तथा अप्सराओं के सहयोग से उनकी तपस्या भंग करने के लिये भेजा। कामदेव पद्मऋषि की तपस्या भंग करने मे सफल हो गया। ऋषि जी अप्सराओ के साथ विलास करने मे तल्लीन हो गए। कुछ समय पश्चात् जब अप्सराएँ चली गईं, तब पद्मऋषि को अपनी सच्ची स्थिति का ज्ञान हुआ और पश्चात्ताप में उन्होंने अपने शरीर के पाँच खण्ड कर के यज्ञ कुण्ड में हवन कर दिया। इन्हीं ऋषि के मस्तक से अलाउद्दीन बादशाह (१) वक्षस्थल से राव हम्मीर, भुजाओ से महिमा शाह और मीर गभरू (?) चरणों से उर्वसी, अर्थात् अला-उद्दीन की बेग़म रूपविचित्रा का अवतार हुआ।

हम्मीर का जन्म सं० ११४१ वि० कार्तिक शुक्ल, द्वादशी रविवार को हुआ, और उसीदिन गज़नी मे शहाबुद्दीन के यहाँ अलाउद्दीन का जन्म हुआ।

एक समय अलाउद्दीन अपने परिवार के साथ जंगल मे शिकार खेलने गया। बादशाह शिकार के पीछे कुछ दूर चला गया और सब बेगमें एक सरोवर मे जलक्रीड़ा करने लगीं। इसीसमय एक प्रबल झंझावात उठा और सर्वत्र धूलि से अंधकार छा गया जिससे अलाउद्दीन की सर्वाधिक सुन्दरी बेगम रूपविचित्रा भटककर जंगल मे चली गई। वहाँ अचा-

नक नवाब महिमाशाह मिल गया । बेगम ने उससे अपनी वासना पूर्ण करने का घृणित प्रस्ताव किया । पहले तो महिमाशाह ने अपनी चरित्रनिष्ठा दिखलानी चाही किन्तु रानी के बारबार कहने पर वह तैयार हो गया । दोनों की प्रेम-क्रीड़ा के ही प्रसंग में वहाँ एक शेर आया जिसे महिमाशाह ने केवल एक बाण से मार डाला । यथा समय बेगम डेरे पर पहुँचा दी गई ।

कुछ दिनों बाद अलाउद्दीन एक समय उसी रूपविचित्रा से महल में वार्तालाप कर रहा था कि वहाँ एक चूहा निकल पड़ा । पहले तो बादशाह को बड़ा भय प्रतीत हुआ, किन्तु अपनी सुन्दरी स्त्री के सामने अपने शौर्य-प्रदर्शन की लालसा से एक बाण चूहे को लक्ष्य करके उसने मारा जिससे बेचारे का काम तमाम हो गया । रूपविचित्रा को महिमाशाह की वीरता का स्मरण हुआ और वह हँस पड़ी । बादशाह के अत्यंत आग्रह करने पर उसने सारा वृत्तांत कह सुनाया । इसपर वह अत्यंत क्रोधित हुआ और महिमा को अपने राज्य से निकाल दिया । वह अपने साथियों के साथ आश्रय के लिए इधर-उधर भटकने लगा । अंत में महाराज हमीर ने उसे शरण दी । इस समाचार से बादशाह अत्यंत क्रुद्ध हुआ । उसने महिमा को रणथंभोर से निकाल देने के लिए लिखा । हम्मीर ने महिमा को भेजना अस्वीकृत कर दिया और उसे ५ लाख की जागीर का स्वामी बना दिया ।

बादशाह ने एक बार फिर दूत भेजकर महिमाशाह को भेजने के लिए कहा, किन्तु हमीर ने पुनः अस्वीकृत कर दिया; इसपर बादशाह ने अपने सरदारों को बुलाकर उनका मत पूछा । सिवा एक वृद्ध सरदार के सबों ने बादशाह की हाँ में हाँ मिलाई और आक्रमण करने की सलाह दी ।

शीघ्र ही सेना तैयार होकर रणथंभोर के पास पहुँच गई। शाही सेना मे ४५ लाख पैदल, ५० हजार हाथी तथा ५ लाख घोड़े थे। मार्ग में इस सेना ने प्रजा को बहुत कष्ट दिया।

आक्रमण की सूचना पाकर हम्मीर ने अभयसिंह परमार, सूरसिंह राठौर आदि पाँच सरदारो के साथ बीस हज़ार सेना भेजी। इस सेना ने शत्रु का ऐसा सामना किया कि अमीर उमराव इतस्ततः भागने लगे। इसप्रकार इस युद्ध मे तीस हज़ार शाही सैनिक काम आए।

इसके अनंतर संपूर्ण सेना ने दुर्ग को घेर लिया और पुनः महिमा को वापस माँगा। हम्मीर ने अस्वीकृत किया और शरणागत को निराश करना असम्भव बतलाया।

हम्मीर ने शिवजी की प्रार्थना करके उन्हे प्रसन्न किया जिससे उसे बारह वर्ष तक सकुशल युद्ध करने का अभयदान मिला। उसने प्रसन्न होकर सैन्य-संग्रह किया। इसीसमय छाँड़गढ़ के स्वामी तथा हम्मीर के चाचा रणधीर भी उसकी सहायता मे प्रस्तुत हुए।

रणधीर ने शाही सेना पर गढ़ से खूब गोले तथा बाणो की वर्षा की और स्वयं रणक्षेत्र मे उपस्थित हुआ। शाही सेनापति मोहम्मदअली ने भी दुर्ग पर खूब गोले बरसाए, किन्तु अंत मे शाही सेना हार गई।

सैनिकों में भगदड़ मच जाने से अलाउद्दीन भी घबड़ा गया। वज़ीर मुहम्मदखाँ के परामर्श से उसने अपनी एक छोटी सी सेना छाँड़गढ़ पर भी आक्रमण करने के लिए भेजी। उसे आशा थी कि इसप्रकार रणधीर अपने परिवार पर आपत्ति आती देखकर बादशाह से संधि कर लेगा। किन्तु इससे कोई लाभ न हुआ। अब हम्मीर को परास्त करने का अन्य साधन सोचा जाने लगा।

इसीसमय रणधीर के कहने से हम्मीर ने अपने दोनो राजकुमारों को युद्ध का समाचार भेजकर चित्तौड़ से बुलाया। दोनो राजकुमार तीस हज़ार राठौर, आठ हज़ार चौहान तथा पाँच हज़ार परमार सैनिकों के साथ रणथंभोर आए। दोनों सेनाओं मे घोर संग्राम हुआ जिसमें दोनों कुमार अपनी समस्त सेना के साथ वीर-गति को प्राप्त हुए। इस युद्ध मे शाही सेना के सत्तर हज़ार सैनिक तथा अनेक उमराव काम आए।

इसके अनंतर राव रणधीर ने भी भयंकर युद्ध करते हुए बीस हज़ार राजपूतों के साथ वीरगति प्राप्त की। एक हज़ार से अधिक राजपूत स्त्रियाँ सती हो गईं। दूसरे पक्ष में एक लाख मुग़ल सेना तथा दो चुने हुए सेनापति नष्ट हुए। छाँड़गढ़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया।

अब तो अलाउद्दीन की सेना ने रणथंभोर को चारों ओर से घेर लिया।* एक दिन राव हम्मीर ने दुर्ग के उच्चतम शिखर पर सभा-मण्डप सजवाया। सगे-सम्बंधियों के मध्य मे स्वर्ण सिंहासन पर आसीन हम्मीर के सम्मुख एक चन्द्रकला नामक वेश्या नृत्य कर रही थी। चन्द्रकला के प्रत्येक गीत से अलाउद्दीन के अपमान की ध्वनि निकलती थी। वह नीचे डेरा डाले पड़ा था; उसकी ओर पीठ करके वह वेश्या भर्त्सना-पूर्ण पदाघात करती थी जो अलाउद्दीन को असह्य हो गया। उसने इस वेश्या का प्राणांत करने वाले को पारितोषिक देने की प्रतिज्ञा की। इसपर मीरमहिमा के भाई मीरगभरू ने एक ऐसा लक्ष्य मारा जिससे वह वेश्या आहत होकर तुरन्त धराशायी हो गई। इस दुर्घटना से राजपूतों के आश्चर्य तथा क्रोध का ठिकाना ही न रहा।

---

* इस संग्रह में ग्रन्थ का यही अंश लिया गया है।

इसके उत्तर में महिमाशाह ने हम्मीर की आज्ञा पाकर एक ही बाण मे बादशाह का छत्रभंग कर दिया। इसप्रकार का लक्ष्य साधन देखकर अलाउद्दीन बड़ा ही आश्चार्यन्वित तथा हतोत्साहित हुआ। वह अपने मंत्री के परामर्श पर घबड़ाकर भागने ही वाला था कि हम्मीर का कोषाध्यक्ष सुरजनसिह आकर शाह से मिल गया। अलाउद्दीन ने उसे छॉड़गढ़ का राज्य देने का लोभ दिया; इसके फलस्वरूप सुरजनसिह ने भी विभीषण का काम किया। उसने उसी समय रावहम्मीर के पास जाकर कहा कि भण्डार-गृह की रसद तथा शस्त्रागार के गोले बारूद सभी समाप्त हो चुके हैं, अतएव आपका लड़ना व्यर्थ है। हम्मीर ने जब स्वयं जाकर कोष का निरीक्षण किया तो सच-मुच वह खाली मिला।❀

यह सब होते हुए भी हम्मीर अपने प्रण से बिचलित न हुआ। उसने सैन्यसंग्रह करके शाही सेना पर भयंकर आक्रमण करने का निश्चय किया। इधर उन्होंने शाह के दूत से उसे पुनः युद्ध के लिए आमंत्रित करके रानी की परीक्षा लेने के लिये सारी कथा कहकर उसकी राय मॉगी। वीर राजपूत स्त्री ने सोमेश्वर, पृथ्वीराज, भोज, विक्रमादित्य, कर्ण आदि के आदर्शों का अनुकरण करते हुए शरणागत की रक्षा तथा अपने प्रण की रक्षा के लिये युद्ध में वीरगति प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर बतलाया।

शाही सेना पर महाभयंकर आक्रमण हुआ। महिमाशाह तथा मीरगभरू आपस में लड़ते हुए मारे गए। हम्मीर ने

❀ वास्तव में "जौराभौरा" (कोट) खाली नहीं हुए थे। हम्मीर को धोखा देने के लिए सुरजन ने सामानों के ऊपर सूखा चमड़ा डलवा दिया था। ऊपर से पत्थर डालने पर वह खड़क उठा।

भी असाधारण वीरता दिखलाई । महिमाशाह के मारे जाने पर शाह ने फिर संधि का प्रस्ताव किया, किन्तु हम्मीर ने युद्ध-स्थल में मरना ही श्रेयस्कर समझा । अंत में शाही सेना पराजित हुई । अलाउद्दीन बन्दी बनाकर राव हम्मीर के सामने लाया गया । उन्होंने अलाउद्दीन को मुक्त कर दिया ।

हम्मीर की सेना अपार हर्ष से दुर्ग की ओर लौटी, किन्तु भूल से उन लोगों ने अलाउद्दीन के जीते हुए झंडे ही आगे रक्खे । इस पर रानियों ने समझा कि हम्मीर की सेना पराजित हुई और यह शत्रु की सेना आ रही है । सब रमणियाँ जौहर करके अग्नि में भस्म हो गईं ।

हम्मीर को इस घटना पर बड़ा शोक हुआ । वे अपना शिर काटकर शिवजी को अर्पित करने ही जारहे थे कि अलाउद्दीन भी यह समाचार पाकर उनके पास पहुँच गया । राव ने शाह से रामेश्वर जाकर समुद्र में प्राण-त्याग करने को कहा । बादशाह ने वैसा ही किया । हम्मीर ने भी शिवजी को अपना शिर अर्पित कर दिया । स्वर्ग में जाकर सब फिर मिल गए ।

इसप्रकार रासो समाप्त होता है, जिसे सुनकर चन्द्रभानु जी ने कवि जोधराज को बहुत दान दिया और अनेक प्रकार से प्रसन्न किया ।

चैत्र सुदी तृतीया बृहस्पतिवार सं० १८८५ को यह ग्रंथ समाप्त हुआ ।

ऐतिहासिकता

'हम्मीर-रासो' एक ऐतिहासिक काव्य होने पर भी उसमें इतिहास-विरुद्ध अनेक घटनाएं तथा तिथियाँ मिलती हैं ।

ससि वेद रुद्र संवत गिनो, अंग खाभ्र षित साक ।
दक्षिण अयन सु सरद ऋतु, उपजे गए न नाक ।१७५।

गजनी गौरी शाहसुत, भय अलावदी साय।
ताहीं दिन रणथम्भगढ़, जन्म हमीर सुआय।१७६।
शशि रुद्र बेद संवत सुजान। पट सहस इक्क साकी प्रमान।
रवि जाम अयन दक्षिण सुगोल ऋतु शरद शुभ्र सुंदर अमोल।१७८।
ग्यारा सैं दस अगरों, संवत माधव मास।
शुक्ल तीज शनीवार कैं, चन्द्ररत्न अनयास। ८८।

प्रथम दो छन्दा मे हम्मीर तथा अलाउद्दीन का जन्म सं० ११४१ बतलाया गया है और उसी को तीसरे छन्द मे दुहरा दिया गया है। तीसरे छन्द के "शशि रुद्र बेद के" स्थान पर "शशिवेद रुद्र" पाठ ही ठीक है, जिसके अनुसार सं० ११४१ वि० होता है। किन्तु इतिहासज्ञों को यह विदित है कि सं० ११४१ में न तो हमीर का जन्म हुआ था और न अलाउद्दीन का। अलाउद्दीन का राज्य काल १२६५ ई० से १३१५ ई० तक (सं० १३५२ वि० से १३७२ वि०) माना जाता है।

चतुर्थ छंद मे जैतराव के रणथम्भौर को नीव डालने का समय वर्णित है। वह ११२० वि० बतलाया गया है। ये जैत-राव हमीर के पिता थे। इतिहास के अनुसार हमीर का समय १३५७ वि० के आस पास होने के कारण २५० वर्ष पूर्व उनके पिता का होना सम्भव नही।

इस ग्रन्थ मे केवल ग्रन्थ-रचना का संवत् ठीक दिया गया है:—

चन्द्र नाग वसु पंच गिनि, संवत माधवमास।
शुक्ल सु त्रितिया जीवजुत, तादिन ग्रन्थ प्रकास ।।९६८।।

इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की समाप्ति सं० १८८५ वि० वैशाख शुक्ल तृतीया को हुई।

हमीर को ही चरित्र-नायक बनाकर जैन-ग्रन्थकार नयन-चन्द्र सूरि ने 'हमीर महाकाव्य' नामक ग्रन्थ लिखा है। इसके संवत रासो की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक हैं।

रणथम्भनाथ सुत इक पूर। चढि तेज मनूं ऊगंत सूर।
रतनेस नाम जग है विख्यात। चितौड दुग्ग पाले सुतात ॥३५२॥

इससे ज्ञात होता है कि चित्तौड़ में हमीर का पुत्र रतनेस (रतनसेन) था जिसे अलाउद्दीन ने पद्मिनी के लिए कैद कर लिया था। यह रतनसेन सिसोदिया वंश का था, जिसे चित्तौड़ का राज्य, परम्परा से प्राप्त हुआ था। जोधराज ने इसको हमीर का पुत्र बताकर सिसोदिया तथा चौहान वंश को मिश्रित कर दिया है। इसप्रकार जोधराज ने अनेक भ्रम फैलाये हैं। इसका कारण एक ही है। इतिहास मे दो हमीर हुए है। एक चौहान वंश का तथा दूसरा सिसोदिया वंश का। दोनो के पिता का नाम जैतराव ही था। दोनो का समय भी लगभग एक ही था। जोधराज ने भ्रमवश दोनों को मिला दिया है।

महग्घ आपनों तजि सुसाहि। न्हाए सुदेव निद्वान जाहि।
बहु बोलि विप्रपूजा कराहि। करि धूर दीप आरति बनाहि।
पद परसे दरसे सकल देव। नैवेद्य पुज्य नाना सु भेव।
कर जोरि साहि बन्दन सुकीन। यह भाँति गवन डेरा सुलीन।

इसमें अलाउद्दीन द्वारा हिन्दू देवताओं की स्तुति कराई गई है। यह एक इतिहास-विरुद्ध बात है।

जोधराज ने अलाउद्दीन के पिता का नाम शहाबुद्दीन दिया है, किन्तु प्रामाणिक-इतिहासों से यह बात सिद्ध नहीं होती।

आलोचना

रणथंभोर-नरेश राव हम्मीर के हठ से कौन इतिहास-प्रेमी परिचित नहीं है? राजपूताने के इतिहास लेखकों को

ऐसे महापुरुषों के चरित्र पर सदैव गर्व रहेगा। जोधराज का यह सौभाग्य था कि उनको एक ऐसा वीर राजपूत चरित्र-नायक के रूप में मिल गया। "हम्मीररासो" में कवि की सफलता का यही मूल कारण भी समझना चाहिए।

ग्रंथ-रचना सरस तथा प्रभावोत्पादक स्थलों से पूर्ण है विशेषकर हम्मीर की उक्तियाँ अधिक आकर्षक हैं। यथा—

> पच्छिम सूरज उग्गवै, उलटि गंग बहनीर।
> कहो दूत पतिसाहसों, हठ न तजै हम्मीर ॥३२६॥
> × × × ×
> अनहोनी नहिं होय, होय होनी है साइय।
> रजक मोह हरि हथ्थ, डर सुमानव क्यों कोइय॥
> नहिं तजूं शेख को प्रण करिव, सरन धरम क्षत्रिय तनो।
> मन है त्रिचित्र महिमा तनो, सत्य बचन मुखतें भनो ॥३२७॥
>
> [ह० रा०. पृ० ६५ ६६]

इसीप्रकार हम्मीर की रानी आशादेवी के एक-एक शब्द भारतीय आर्य-महिला की वाणी के शृंगार होने योग्य हैं। हठी हम्मीर की स्त्री के मुख से ऐसे ही वचन कहलाना सर्वथा उचित है। दुर्ग जब चारों ओर से घिर गया तब हम्मीरराव ने अपनी पत्नी की परीक्षा लेने के लिए महिमाशाह को वापस देकर अपना हठ छोड़ देने का प्रस्ताव उसके सामने किया। इस पर रानी ने आश्चर्य-मिश्रित आवेश में जो कुछ कहा, उसमें का कुछ अंश इस प्रकार का है.—

> "राखि सरन शेखन तजो, तजो शीश गढ़ वेगि।
> हठ न तजो पतसाह सों, गहि कर तजो न तेगि ॥६७५॥
> कहाँ जैत कहँ सूर कहं, कहं सोमेश्वर राँण।
> कहाँ गए प्रथिराज जे, जीति साह दल आँण ॥६७६॥

कहाँ जैत बहँ सूर प्रथि, जिन गह गोरी शाह।
होतब जगमें प्रबल है. चिता किजियकाह ॥२८०॥
[ह० रा०, पृ० १४०—१४१]

हम्मीर के संबंध मे "तिरिया तेल हम्मीर हठ चढ़े न दूजी बार" वाला दोहा बहुत प्रसिद्ध है। इसीप्रकार की कुछ सबल तथा सुन्दर प्रभावोत्पादक-पंक्तियाँ इस ग्रंथ में भी है। निम्नलिखित उदाहरण इस कथन की पुष्टि के लिए अलम है—

हठनौ राव हमीर कौं, औ रावण की टेक।
सत राजा हरिचंद कौं, अर्जुण बाण अनेक ॥६६०॥
गही टेक छोडै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठो कहा अंगार कौं, ताहि चकोर चुगाय ॥६६१॥
[ह० रा०, पृ० १३६]

दोहाछंद मे भी इसप्रकार का सफल रसपरिपाक देखकर ही कवि के रचना सौष्ठव का अनुमान लगाया जा सकता है। आचार्य-प्रवर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने यथार्थ ही लिखा है कि 'हम्मीर-रासो की कविता बड़ी ओजस्विनी है। ... प्राचीन वीरकाल के अंतिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप मे और जिसप्रकार की भाषा मे अंकित होना चाहिए था उसी रूप और उसीप्रकार की भाषा मे जोधराज अंकित करने मे सफल हुए है, इसमे कोई संदेह नही।*"

ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि वीररस के अतिरिक्त अन्य रसों मे भी समान रूप से सफल हुआ है। ग्रन्थ के आरंभ मे पद्मऋषि की तपस्या भंग होने की कथा के बहाने कवि ने षड्ऋतु वर्णन तथा प्रसंगवश कुछ प्रकृति

*पं० रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास;' पृ० ४१६।

चित्रण भी किया है जो वीरगाथा-काल के अन्य कवियों की अपेक्षा सुन्दर ही हुआ है। शृंगार-रस में जोधराज बिना अधिक प्रयास के ही सफल हो गए हैं।

कवि ने मित्र-पक्ष के मुख्य पात्रों का चरित्र-चित्रण भी बड़ा सुन्दर किया है। हम्मीर के पूर्वजों की महत्ता का वर्णन करने से उसकी दृढ़ता प्रमाणित होती है। राव के पूर्व पुरुष वीसलदेव ने सोनागढ़ के युद्धक्षेत्र पर अस्सी-हजार मुसलमान सैनिकों का वध किया था। इसीप्रकार महारानी जी का चरित्र एक राजपूत क्षत्राणी के ही अनुकूल चित्रित किया है, जो पहले उद्धृत की हुई पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है। यही नहीं वीर महिमाशाह का चरित्र भी यथासाध्य उत्कृष्ट ही चित्रित किया है। छाँड़गढ़ दुर्ग के अधिपति काकारणधीर के सम्बन्ध में यह कहावत अब भी प्रसिद्ध है—

"जो कनवुज काकै करी, करी छाँडि रणधीर" ।५८१।

[ह०रा०, पृ० १२१]

जोधराज ने रणधीर का जो चरित्र चित्रित किया है उससे यह कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ हो जाती है।

किन्तु इन सब गुणों के रहते हुए त्रुटियाँ भी इस ग्रन्थ में अनेक मिलती हैं। इनमें अधिकांश प्रबन्धगत ही हैं। ऐतिहासिक-आख्यान को काव्य का स्वरूप देने के लिए कवि ने कुछ घटनाओं की कल्पना की है। इस संबंध में एक मुख्य घटना महिमाशाह मंगोल तथा अलाउद्दीन की बेगम रूपविचित्रा के परस्पर प्रेम-प्रसंग के संबंध की है। यह घटना ऐतिहासिक हो या न हो किन्तु इस कथा का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है। एक तो किसी अनावश्यक प्रासंगिक कथावस्तु

का इतना विस्तार ही खटकता है,* दूसरे इस प्रसंग में कुछ ऐसे अश्लील-अंश आ गए हैं, जिनसे रचना की सारी गंभीरता नष्ट हो जाती है।

इसीप्रकार अलाउद्दीन के चूहे से भयभीत होने की कथा शत्रुपक्ष की तुच्छता दिखाने के लिए कही गई है। किन्तु न तो अलाउद्दीन चूहे से डर ही सकता था और न ऐसे तुच्छ शत्रु पर विजय पाने में हम्मीर का कोई महत्वही रह जाता है। निदान महिमाशाह के हम्मीर की शरण में जाने की सारी कथा अस्वाभाविक तथा नीरस ज्ञात होती है। एक दृष्टि से देखा जाय तो कवि को अधिक दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता। 'रासो' के अंतर्गत इसीप्रकार प्रेम प्रसंग दिखला कर स्त्रियों को ही युद्ध का कारण बताना परंपरा से चला आ रहा था, जिसका पालन दरबार के आश्रय में रहने के कारण इस कवि के लिए भी आवश्यक हो गया।

इसके अतिरिक्त कई अन्य अस्वाभाविक घटनाएँ भी मिलती हैं, जैसे पद्मऋषि के विभिन्न अंगों से हम्मीर, अलाउद्दीन महिमाशाह, उर्वशी की एक साथ उत्पत्ति; अलाउद्दीन द्वारा हिंदू देवताओं की स्तुति तथा उसका रामेश्वर के समुद्र में प्राणांत आदि कई अद्भुत कथाओं की अवतारणा की गई है। इन सबको प्रबंध-गत-दोष के ही अंतर्गत लिया जायगा।

> "जीति सिसिर बिनिय तबै फिरि आयव ऋतुराज।
> मिले उवरसी पदम ऋषि हरे शक्र के काज।" ॥१६१॥
> [ह० रा०; पृ० २९]

---

*दोनों का प्रेम-प्रसंग ही प्रायः १० पृष्ठों में वर्णित है,

यह दोहा बसन्त-विषयक इकतीस छंदों को लिखने के पश्चात् आया है। इसको प्रथम पंक्ति प्रारंभ में होना चाहिए थी। काव्यशास्त्र के अनुसार इसमें क्रमभंग दोष है।

छंद ४२० से लेकर ४२६ तक की शिवस्तुति, गोस्वामी तुलसीदास की स्तुति से प्रभावित है। इसीप्रकार अन्य स्थलों पर भी तुलसीदास के भाव मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए शिशिर ऋतु के वर्णन में कवि ने लिखा है —

"बहै बहु भाँति त्रिविद्ध समीर।
रहै नहि धीरज होत अधीर॥
लता तरु भंटत संकुल भूर।
भये तृण गुल्म हरे जड मूर॥१२६।

इनमें भी तुलसीदास के वसंतवर्णन की स्पष्ट छाया है। एक स्थान पर तो रामचरितमानस का एक प्रसिद्ध दोहा ज्यों का त्यों रख दिया गया है, जो इसप्रकार है—

काह न पावक जरि सकै, का नहि सिंधु समाय।
का न करै अबला प्रबल, किहि जग काल न खाय॥१५४॥
[ह० रा०, पृ० २६]

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह दोहा मानस के अयोध्याकाण्ड का है।

बड़े सौभाग्य की बात है कि सूदन, मान आदि की भाँति न तो यह महाशय कहीं सूची गिनाने ही बैठे और न युद्ध-वर्णन में "तड़ातड़-भड़ाभड़" के फेर में पड़े, फिर भी कहीं-कहीं द्वित्त-वर्णों के प्रयोग की प्राचीन परंपरा का अनुकरण अवश्य दृष्टिगत हो जाता है, यथा—

इतै राव हम्मीर कम्मान कीनी ।
मनो पथ्थ भारथ्थ सारथ्थ कीनी ॥८६०॥
[ह० रा०, पृ० १८०]

जोधराज की भाषा मे जहाँ एक ओर ब्रजभाषा के साहित्यिक रूप है वहाँ दूसरी ओर साधारण बोलचाल के शब्द और क्रियापद भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते भाषा हैं। इनकी भाषा की विशेषता यही है कि वह सर्वत्र भावानुकूल चलती है। यदि वीर रस के प्रसंग मे डिंगल की द्वित्त-वर्णा वाली परंपरा का सहारा लिया गया है तो शृंगार-वर्णन मे 'कोमल-कांत-पदावली' का उपयोग सुन्दरता के साथ किया है।

उदाहरण के लिये सेना-वर्णन मे भाषा का स्वाभाविक प्रवाह देखिये —

लसे बैरख सो मनो बिज्ज भारी ।
बरै दान वर्षा मनो सुम्मि कारी ॥
लसै उज्जवलं दन्त बगपंक्ति मानों ।
इती साह की सेन सज्जी सुजानं ॥३८७॥
[हम्मीर रासो पृ० ७८]

प्राचीन कवियों की भाँति जोधराज ने 'हि' विभक्ति के स्थान पर 'ह' का प्रयोग भी कहीं-कहीं किया है।

संयुक्ताक्षरों का प्रयोग वीर-रस के प्रसंग में सर्वत्र हुआ है। उदाहरण के लिये एक युद्ध-वर्णन देखिये .—

तहाँ तीस हज्जार निस्सान बज्जैं।
सुतो वीर सोरं सुनैं मेघ लज्जैं ॥

सताईस लक्खं महाबीर बंके।
टरें नाहिं जगं भये ताम हंके॥
परे जोजनं अट्ठ औ दोय फौजं।
कटे बंक बझं हटै नाहि रोजं॥
चढं उब्बटं बाट थट्टे सु चल्ले।
मनो सागरं छंडि बेला उगल्ले॥

'हम्मीररासो' का अध्यायन कर लेने पर यह विश्वास हो जाता है कि कवि जोधराज का भाषा पर पूर्ण अधिकार था और उसे भावानुकूल बनाने की कला में वे निष्णात थे।

हम्मीर रासो

रणधीर-यवन-सेना-युद्ध-वर्णन

दोहरा छन्द

मैं पहले पतिसाह सों, करी बात अब टेक।
सो अब चौरै साहि सो, करो जंग अब एक।

त्रोटक छन्द

चढिए करि कोप हमीर मनं।
करि दिढ्ढ मगढ्ढ सम्हारि पनं।
बहु तोप सुसिद्ध संवारि धरां।
बुरजै बुरजै धर धूम परी।
बहु कंगुर कंगुर बीर अरे।
सब द्वारन द्वारन धीर परे।
सब ठौरन ठौरन राखि भरं।
चढ़िए गजपै चहुवान नरं।
बहु बीर हमीर सु संग चढे।
गजराजन उप्पर द्वंद बढ़े
करि डंबर अम्बर सीस लगे।
मनु सोवत घोर सबीर जगे।
बहु चंचल बाजि करन्त खुरी।
तिन उप्पर पष्षर सौज परी।
जर जान जवान लसै दल मैं।
रन मै उनमत्त लसै बल मैं।
बहु दुंदुभि बज्जत घर घनं।
निकसे तब राव करन्न रनं।
बहु बारन बारन बीर कढ़े।

गज बाजि सु सिंदन जान चढे ।
लखि साह सनम्मुख कोप किय ।
रणथंभ चहूँ दिस घेरि लियं ।
मिलि राव हमीर सु साहि दलं ।
बिफरे बर बीर करंत हलं ।
सर छुट्टत फुट्टत पार गजं ।
सु मनो अहि पच्छय मध्य रजं ।
तरवार बहै कर पानि बल ।
धर मन्य धरं धर इक खलं ।
मुख अग्ग बढै रणधीर लरै ।
तिनसों पतिसाह के बीर अरे ।
अजमंत मुहम्मद इक अली ।
तिन संग असीसु सहस्स चली ।
तिहि द्वंद अमंद बिलंद कियो ।
रणधीर महा रण झेलि लियो ।
करि कोप तबै रणधीर मनं ।
बर बैन कहै पन धारि वनं ।
महिमद अली मुख आय जुरयो ।
दुहुँ बीर तहाँ तब जुद्ध करयौ ।
अजमत कमान लई कर मैं ।
रणधीर के तीर वह्यो उर मैं ।
रणधीर सुकोपि क सांगि लई ।
अजमंत कै फूटि के पार गई ।
परियो अजमंत सु खेत जबै ।
महमंद अली फिरि आय तबै ।
रणधीर सु कोपि के बैन कहै ।
कर देखि अबै मति भुल्लि रहै ।

क्रिरवान सु धीर के अंग दई।
कटि टोप कछू सिर मांझ भई।
तब कोप किया रणधीर मनं।
किरवान दई महमद तनं।
परियो महमंद अमंद बली।
तब साहि कि सैन सबै जु हली।
लुथि लुथिय परै बहु बीर अरै।
बहु खंजर पंजर पार करै।
धर सीस परे करि रीस मनं।
कर पांव कटै बहु कीन पनं।
यहि भांति भिरे चहुवान बली,
मुरि साह की सेनि सु भग्गि चली।
बलखो जु परे जू हजार असी,
लखि कालिय अट्ट सु हास हसी।
चहुवान परे इक जो सहसं,
सुरलोक सबै बर बीर बसं।

दोहरा छन्द

असी सहस बलखी परे, महमद अजमत खान।
तहाँ राव रणधीर के परे सहस इक ज्वान।
भजी फौज सब साह की, परे मीर दोइ बीर।
करे याद पतिसाह तब, गजनि गढ़ के पीर।

चौपाई छन्द

भज्जिय फौज साह की जबहीं,
फिरो फिरो बानी कह सबही।
तहाँ साह करि कोप सु बुल्लिव,
समर भुम्मि अब छडि सुचल्लिव।

सरबसु खाय भोग करि नाना,
अबै परम प्रिय लागत प्राना।
समर विमुख तैं जानब जोई,
हनूं आप का तजौं न सोई
सुने साह के कोपि सु बैनं,
फिरी सैन इम मत्र सु एनं।
बखतर पक्खर टोप सु सज्जिय,
जुरे जंग बहु मीर सु गज्जिय।

दोहरा छन्द

बाँदित खाँ पतिस्याह सों,
करी सलाम सु आय।
हजरत देखहु हाथ मम,
कैसी करू बनाय॥

पद्धरी छन्द

करि कोप बादितखां जुरे जग,
मनो प्रलै पावक उठे अंग।
गुंजत निसान फहरात धुज्ज,
जुटि जिरह टोप तन नैन सज्ज।
किए हुक्म साह तन मैं रिसाइ,
किन्हों सु जुद्ध फिर बीर आइ।
छूटत तोप मनु बज्रपात,
जल सुक्कि धरा छुटि गर्भजात।
बहु बान चलत दोउ ओर घोर,
अररात अमित मच्यो सु सोर।
भए अंध धुंधसु सुज्झै न हथ्थ,
बीर चहुवान तहं करि अकथ्थ।

रणधीर उनैं बाधक्ति खान,
बजरंग अंग जुट्ट सु पान।
हजार बीस बादित्य साथ,
सब जुरे आय रणधीर हाथ।
बज्जंत सार गज्जंत अम्भ,
रणधीर सथ्थ आए स सम्भ।
करि क्रुध जोर बाहंत सार,
टूटन्त अंग फूटन्त पार।
करि खेल मेल दोउ ओर बीर,
बाहंत बीर किरवान धीर।
हज्जार बीस बद्धत साह,
धर परे बीर करि अकथ राह।
रणधीर मीर दोउ भिरे आइ,
बाधक्त गाहि तब रोस बाइ।
लग्गी सुढाल भू टूटि लाम,
फिर दई सीस किरवान जाम।
लग्गी सु सीस धर पर्‌यो जाय।
हुई टुक्क होय सुमि अद्ध काय।

दोहरा छन्द

भयो सोच जिय साह कै, जीतिय जंग हमीर।
बादित खां से रन परे, बीस हजार सुबीर।
महरम खां कर जोरि कै, करै अर्ज तिहि बार।
लै कर शेख हमीर अब, किमि मिल्यो यहि बार।
गही तेग तुम सौं अबै, हठ नहि तजै हमीर।
सेख देय मिल्लै नहीं, पन सच्ची बर बीर।

छप्पय छन्द

कर कुरान गहि साह सीस साहिब को नायो।
गढ दिस दल चहु ओर घोरि रज अम्बर छायो।
देखि अलावदि साह कहे दल बहल भारी।
अब हमीर की अदिल आय पहुचीह सुसारी।
महरम्म खान इम उच्चरै अदिल हाथ साहिब तनै।
का होनहार ह्वैहै अबै को जानै कैसी बनै।

दोहरा छन्द

हजरति अपने इष्ट पर, पावक जरत पतग।
यह हमीर कबहुँ न तजै. सेख टेक रणथभ।
साह दसों दिसि जित्ति कैं, अब आगु रणथभ।
कहै राव रणधीर सों, जुरो सूर रण रंग।
अप्पन धर्म्म न छंडिए, कहै बात रणधीर।
निस बासर अब साह सों, किजिए जंग हमीर।

छप्पय छन्द

को कायर को सूर चौस बिन दृष्टि न आवै।
बिन सूरज की साख सार छत्री न समावै।
बीर गिद्ध अरु संभु सकल फलहारी जेते।
धर पर धर न पाव रैन मैं दिनचर जेते।
इम कहै राव रणधीर सों मैं अधर्म्म नाहिन कहूँ।
अब अलावदी साह सों रैन सार बबहु न गहूँ।

छन्द भुजंगप्रयात

लरै नो मयद्द रणथ्थंभ दवा,
करै क्रोध भारी पिलै हर्ष भेवा।

गरज्जंत घोरत आतंक भारी,
घनै घोर बर्षन्त बर्षा करारी।
कभू हल्लवै भुम्मि गज्जंत बीरं,
कभू घोर अधार बर्षन्त पीरं।
गणन्नाथ हत्थं लिए तिच्छि फर्सी,
पिनाकी पिनाक किए आप दर्सी।
धरै मुद्गरं हत्थ भैरव अमानो,
हसे देव जुट्ट सु कट्टे अमानो।
इते पीर हजरत्त के सथ्थ पिल्ले,
अबद्दल्ल एकं हुसैनं सुमिल्ले।
रहीमं सयद्दं सुलत्तान जक्को,
अहमद्द कानीर सूलं सु मक्को।
इनै बीर जुट्टे सु कट्टे पुरानं,
भयो जुद्ध भारी सु भूले कुरानं।
परे खेत नौ सैद दट्ठ धरन्ना,
हंसे शंकर भैरवं की करन्नो।
परे पीर यूं नौ रसूलं सु अल्लो,
पर्यौ पीर दूजो कुतब्बं सु चल्लो।
परयौ जो हुसैनं करयौ जुज्झ भारी,
परे हेरि हिम्मत्ति अल्लो सुभारो।
सयद्दं सुलत्तान आयो जु मक्का,
अदल्लो परे और तुक्क सु बंका।
पर्यौ दूरसी जो रसूलं सु खेतं
तवै बादस्याहू भयो सो अचेतं
परे मीर नौ सैद जानतं साहं,
लरै अट्ठ बीरं हटै बैन काहं।
अजंमत्त भारी हमीरं सु जानी,

तबै कुच किन्नो दरै छाड़ि कानी ।
उलट्टे परे जोय किल्लों दिवानं,
जुरे खान जेते सु तेते अमान ।
वजीरं अमीर सबै खान बुल्ले,
सबै बात मन्त्रं सु मंत्री सु खुल्लै ।

दोहरा छन्द

मरहम खां उज्जीर तब, अरज करी सब खोलि ।
लख बलखी उमराव तो, सद्कै भए हरोलि ।
अरु बकसी के बचन सुनि, साह कियो अति सोच ।
निबही राव . हमीर की, गिनो हमैं सब पोच ।
महिमा साह हमीर गढ, ये तीनों साबूत ।
बाजी रही हमीर की, मैं कायर जु कपूत ।

छप्पय छन्द

मरहम खां कर जोरि साह कों ऐसे भाख्यौ ।
इक हिकमत तुम करो नीक जानो तो राख्यौ ।
महल छाड़ि करि फते बहुरि गढ सों जुद्ध किज्जिय ।
तोरि छाड़ि रणधीर मारि कैं पकरि सु लिज्जिय ।
आतक संक गढ मैं परै मिलै राव हठ छंडि कै ।
गहि सेख देय मिलि सुत्तवै करौ कुच जब उलटि कै ।

चौपाई छन्द

कहै साह महरम खाँ सुनियौ ।
यह मत खूब किया तुम गुनियौ ।
छाड़ि दरा को प्रथम दिली जे ।
चन्द राज महँ फतह जु कीजै ।

दोहरा छन्द

मरहम खाँ पतसाह कों, हुकुम पाय तिहि बार।
सकल सेन तजबीज करि, घेरी छाड़ि हकारि॥

छन्द त्रियक्खरी

कोप पतिसाह गढ छाडि लग्गै।
सहस सब तीन नीसान बग्गै॥
सहस दस सात आरब्ब छुट्टै।
गरज गिरि मेर पाषाण फुट्टै॥
उठत गुब्बार महि तप लग्गै।
गए बन छंडि मृग सिंह भग्गै॥
सहस पचीस दल और फेर्यौ।
यह भांति पतिसाह गढ़ छाड़ि घेर्यो॥
कहै पतिसाह नहिं बिलम किज्जे।
चन्द दिन बीच गढ छाडि लिज्जे॥
कहे रणधीर मन धीर धरिए।
आय चहुंवान सफजंग करिये॥
निस्सान सों सद् सुन्दर सुबज्जै।
राव रणधीर आयुद्द सज्जै॥
बीर रस राग सिंधूर बज्जै।
सहस इकतीस दल सग लिज्जै॥
सहस दस सूर कुल तेग खेलैं।
अप्प जिय रप्पिपरमल पिल्लैं॥
यही भांति रणधीर चौगान आए।
उड़ जमों गर्द असमान छाए॥
अबदुल्ल करिम्म पतिसाह पेले।
मीर रणधीर चौगान ढिल्लै॥

बहै वान किरवान औ चक्र चल्लै ।
रणधीर कह सूर तुम होतु भल्ले ।
साह सों सूर संमुक्ख जुरिए ।
हबस के मीर दस सहस परिए ।
टूटि सिर मीर धड़ पहुमि लप्पै ।
पच सत सूर उटि गिद्ध भप्पै ।
राव रणधीर अप्पन सिधारे ।
अब्दुल्ल करम खाँ पहुमि पारे ।
साहि रणधीर सफजंग जुरिए,
साह दल उलटि दो कोस परिए ।
कहै रनधीर नहिं विलंम किज्जै,
बीति चन्द रोज गढ़ छाड़ि लिज्जै ।
गढ़ कट हू भाँति नहिं हथ्य आवै,
युं ही पतिसाह दल क्यों खिसावै ।

दोहरा छन्द

वर्ष पंच गढ छाड़ि को, नहि संबत पतिसाह ।
द्वादस बरष रणथंभ सों, निधरक लरि अब साह ।

छप्पय छन्द

धनि सुराव रणधीर साह मुख आप सराहै ।
मुझ दिसि सम्मुख आय कोप करि सार समाहै ।
साह बचन इम कहै मीर महरम खाँ सुनिजे ।
जीति जंग रणधीर धन्य वह राव सुभनिजै ।
पतसाह राडि सफजंग की मनै करिय आपन सबै ।
चहुँ ओर जोर उमराव सब किए मोरचा दृढ़ आवै ।
जबै राव रणधीर कहै हम्मीर सुनिज्जै ।
सबै हिन्द को साथ बोलि रणथंभ सुलिज्जै ।

लिखि फर्मानह राव बंश छत्तीस बुलाए।
जुरे जग चौगान उमंग दल बद्दल छाए।

कर जोरि सबै हाजिर भए राव बचन विधि या कहै।
मैं गही तेग पतिसाह सो घरि जाहु जौन जीवो चहै।

कह काको रणधीर राव सुन बचन हमारे।
अबै छड़ि कित जाहिं खाय कर निमक तिहारे।
अलीदीन सो जुद्ध छंडि गढ़ चौरे मंडो।
जिती साहि की सेन मारि खग खंड विहंडो।

चाहूँ सुनीर या वंश को अकथ गाथ ऐसी करूँ।
रबि लोक भेदि भेटूँ सुभट अप्प सीस हर हिय धरूं।

दोहरा छन्द

कहै राव हम्मीर सों, मंत्र एक रणधीर।
जमीति गढ़ चित्तौड़ की, अजहुं न आइय बीर।
लिखि फर्मान हमीर तब, पठए गढ़ चित्तौर।
बंचि खान बल्हन कुंवर, हर्ष कीन नहिं थोर।

चौपाई छन्द

हर्षे उभय कुँवर चहुआनं,
चतुरंग के तुरंग सजि आनं।
सोला सहस चमू सजि सारी,
सजे खान बल्हन सी भारी।
सहस तीन कमधज्ज सु जानों,
सहस अट्ठ चहुवान बखानों।
सहस पंच पम्मार अमानै,
सोला सहस सजे करिवानै।

मोतीदाम छन्द

मिले तब आय कुमार सु दोय,
हमीर सुचाव कियो बहु जोय।
बढ्यौ हिय हर्ष दुहूँ उर सोय,
कहै तब बैन सु राव सु होय।
करें हम जंग लखो अब हथ्थ,
उठे दुहुँ बीर कही यह गथ्थ।
चढ़े चतुरंग कियो तन कोप,
मनो अरुनोदय भान सु ओप।
बजे रणतूर सु भेरि सबद्द,
भए पद गोमुख बीर सु सद्द।
चढ़े कुँवरेस तबै चतुरंग,
बढ्यौ हिय हर्ष करैं रणरंग।
कहै तब खान सु बाल्हन सीह,
करे सफजंग अवैदल वीह।
रतन्न कुमार रखो गढ़ ओर,
नरब्बल ग्वालिर ओर चितोर।
नठै तब अन्न करो सफजंग,
तजो मति टेक खरो अतभंग।
असी सुनि बैन हमीर सुभाय,
भरे जल नयन रहे मुरझाय।
कही तब कौर नहीं थिर कोय,
चलै गिर मेरु नहीं थिर सोय।
मिले सुरलोक ससोक सकौन,
सुनी यह राव रहे गहि मौन।
गए रनबास जहां दोउ बीर,

किया परनाम जुहार सुधीर।
सबै रनबास भरे जल नैन,
कही तदि आसमती यह बैन।
करो तुम उच्छव है यह बार,
कहे तदि बैन हँसे जु कुमार।
धरो तुम सीस हमारे जु मोर,
लगै सिर सेहर बाँधि सजोर।
बँध्यो तब मौर कुमारन सीस,
दई बहु भाँतिन आसु असीस।
कियो बहु हर्ष कुमार अपार,
गए हर मंदर सो तिहि बार।
गनेसुर शंकर पूजि सुभाय,
करै बहु ध्यान गहे जब पाय।
चढे बरबीर बढ्यो हिय चाव,
बजे बहु बाजि निसानन घाव।
गजे असमान धरा बहु भाय,
गजे घनघोर घटा मनु छाय।
तुरंग अनेक सुफेरत सूर,
बनी तिन उप्पर पष्पर पूर।
झलक्कत नूर चमक्कत सेल,
चढे सुख ओप बढ़े सुख मेल।
उड़ै रज अंबर सुज्झ न भान,
हसे हर देखत छुट्टिय ध्यान।
चलो संग अच्छरि जुग्गनि तास,
मिली बहु पंखनि गिद्धनि जाम।
मिले बहु भूचर खेचर हूर,
चले पल चारिय भूत सुभूर॥

करे सु जुहार हमीरहिं श्राय,
करी यह बात परस्सि सुपाय।
मिले सब श्रानि सुनो चहुँश्रान,
करै कुल रीत तजै नहि बान।
तजौ धनाधाम रु लोभ सु मोह,
धरौ मनु टेक सरन्न सुजोय।
इती कहि सीस नवाय हमीर,
कियो रणथंभहिं बंदन धीर।
चले सनम्मुख उभै कुमरेस,
सजे चतुरंग तनय करि रेस।
जहाँ पतिसाह श्रलावदि श्रोर,
चलौ बर बीरति बाँधि मुमौर।

दोहरा छंद

करि श्रसवारी कुमर दोउ, उतरे पौलि सु श्रान।
डेरा करे उछाह जुत, बजि निबति नीसान।
सुनि नौबति के नाद तब, बहु उछाह गढ जान।
तब श्रलाबदी इसम दिसि, चाहत भयो निदान।
बोलि खान सुलतान तब, मसलति करी जु साहि।
गढ मे कहा उछाह श्रति, कहा सबब यह श्राहि।
है यह राव हम्मीर के, लघु भय्या के पूत।
लरन काज इन सेहरो, सिर बांध्यो मजबूत।
भइय संक पतिसाह उर, कोनो बहुत बिचार।
जौं न सिंह के मुख चढ़ै, सो झिल्लै इन मार।

चौपाई छंद

कहै वजीर साह सुनि बत्त,
मीर श्ररब्बिय जांनि सु तत्त।

मर्कट-बदन सूकर सम कानं,
दृग मंजार बेस खल जानं।
तुम सो मत प्रथिराज सु अभौं,
गढ गज्जनि आए गहि खभौं।
तुमहिं दिल्ली के तख्त बसाए,
गोरीसा के भए सहाए।
वे दोउ, कुमर पकर अब लावैं,
सन्मुख होइ तो मार गिरावैं।
सुनि वजीर के बचन सुहाए,
मीर जमालखान बुलवाए।
कहे साह सुनि मीर जमालं,
है यह काम तुम्हारे हालं।
आगै तुम गहियो प्रथिराजं,
क्यों तुम गह. कुंवर दोउ आजं।

छप्पय छंद

सुनि जमाल खाँ मीर हथ्थ धरि मुच्छ सँवारिय।
पाँव परसि कर जोरि कवन बड़ काज निहारिय।
जो आयुस अनुसरो सकल हिन्दू गहि लाऊं।
सम्मुख गहै जु सार मारि तिहिं धूरि मिलाऊं।
इम कहि सलाम कीनी तुरत सज्जि सथ्थ सब अप्पबल।
सजि कवच टोप कर खग्ग गहि उभै ओर किन्निय सुहल।

भुजंगप्रयात छंद

इतैं कुमर चित्रंग के जंग जुट्टे,
उतैं मीर आरब्ब के बीर छुट्टे।
दुहूँ ओर घोर निसानं सु गज्जं,
मनो पावसं मेघ घोरं सु गज्जं।

महायुद्ध जानै इतो बै करूरं ।
चलं सूर संखोदरं खेत आए,
उतै आरबीसेन द्वै लक्ख धाए ।
उड़ै बान गोला गज बाजि फुट्टै,
बहै बान कम्मान ज्यों मेघ उट्टै ।
धरे आयुधं बीर सों बीर बुल्लै,
परें सीस भू मैं किती सीस झल्लै ।
कहैं खांन कुम्मार बेन हंकारी,
सुनो सर्व सथ्थं करो जुद्ध भारी ।
रहै नाम लोकं महा मुक्ति मिल्लै,
रहैं नाहि कोई सदा आर्य भिल्लै ।
चलाए गजं कोपि कुम्मार सोई,
उत आरबी मीर जम्माल होई ।
तबै बीर बालन्नसी कोप किन्नों,
महा तेग जम्माल कै मथ्थ दिन्नों ।
कट्यौ टोप ओपं लगी जाय मथ्थं,
तबै मीर बालन्न भय लुथ्थ वथ्थं ।
कटारं कुमार चलायो सु भारी,
पर्यौ मीर जम्मील भू मै सु थारी ।
सबै सथ्थ जम्माल की कोपि धायो,
तहां बालन्न मारि धरनी गिरायो ।
तबै खांन कुम्मार धायो रिसाई,
घनो सेन आरब्ब धरनी मिलाई ।
तबै बीर सखोदरं जंग कीनो,
किते आरबी खेत पार्यौ नवीनो ।
किते सेल खेलं करें वार पारं,
भभक्कै घटैं घाव छुट्टै पनारं ।

बहैं तेग वेगं परे सीस भारी,
उड़ैं घोर रुंड परै मुंड कारी।
परे दोय कुम्मार किन्नी अरथ्थं,
बरी अच्छरी सूर लोकं सुमथ्थं।
परे मीर आरब्ब के पोन लक्ख,
तहाँ हिन्द की भीर सौरा सुभक्खं।
परे दो कुमारं महाबीर बंके,
परे एक संखोदरं कौन हंके।
तहाँ आठ हजार चहुवान जानं,
परे तीन हज्जार कमधज्ज मानं।
पंमारं परे पांच हज्जार सोई,
परे वीर सोला सहस्रं सुजोई।
परे स्वामि के कज्ज कुम्मार दोई,
सुनी राव हम्मीर जीते सु सोई।
भजे आरबी ज्यों बचे जंग तेयं,
कहै साह देखो सु हिन्दू अजेयं॥

पद्माकर

पद्माकर हिन्दी-जगत के लब्ध-प्रतिष्ठ एवं विख्यात कवि है। आपकी गणना रीति-कालीन अंतिम भाग के प्रतिनिधि कवियों में की जाती है। आप तैलंग ब्राह्मण

जीवन चरित्र

थे। आपके पूर्व-पुरुष गोदावरी के निकट रहा करते थे। आपके वंश के मूल-पुरुष मधुकर भट्ट अत्रिगोत्रीय, तैत्तिरीय-शाखा के यजुर्वेदी-ब्राह्मण थे। सं० १६१५ मे जब गढ़मांडले मे महारानी दुर्गावती राज्य करती थीं तो बहुत से पंचद्राविड़ ब्राह्मण उत्तर की ओर तीर्थाटन के विचार से आये और यहाँ आकर बस गये। इन दाक्षिणात्यो मे से कई ने श्री गो० विट्ठलनाथ जी का आश्रय ग्रहण किया था। इनके यहाँ बसने पर एक समुदाय की दो शाखायें भी हो गई, जो मथुरास्थ और गोकुलस्थ के नाम से, प्रसिद्ध है। पद्माकर मथुरास्थ शाखा के थे।

पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट मध्यप्रान्त के अंतर्गत सागर में रहा करते थे। इनके पूर्व-पुरुषों का निवास उत्तर मे आने पर पहले पहल बाँदा हुआ। इसीलिए ये लोग बाँदा वाले भी कहलाते थे। पद्माकर का जन्म सं० १८१० मे सागर मे ही हुआ था। आचार्य केशव के समय से ही बुन्देलखण्ड ब्रज-भाषा-काव्य का एक केन्द्र हो चला था। अतएव पद्माकर के पूर्वज भी ब्रजभाषा-काव्य की ओर स्वाभाविक रूप से आकृष्ट हुए। पद्माकर के पिता मोहनलाल भट्ट भी ब्रजभाषा के कवि थे। किन्तु कविता की अपेक्षा अनुष्ठानो और मंत्र-सिद्धि के सम्बन्ध में उनकी अधिक प्रसिद्धि थी। इसीके

प्रभाव से उन्होंने राजन्य-वर्ग के बहुत से लोगों को अपना शिष्य बनाया। दीक्षा की यह परम्परा अब तक इनके वंश में बराबर चली आती है।

पद्माकर की काव्य-प्रतिभा अत्यन्त प्रखर थी। आपका निम्नलिखित छन्द अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसकी रचना आपने सोलह वर्ष की अवस्था ही में की थी :—

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना।
कहै पदुमाकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितर बिचारै ना।
गज गज बकस महीप रघुनाथ राव,
याहि गज धोखे काहू को देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

यह प्रसिद्ध है कि इस छन्द पर प्रसन्न होकर सागर-नरेश रघुनाथराव आपा साहब ने इन्हें एक लक्ष मुद्रा पुरस्कार स्वरूप दी थी। पद्माकर के वंश में यह छन्द 'लखिया' के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ दिनों बाद आपा साहब से इनकी अनबन हो गई। अतएव पद्माकर अपने मूल-स्थान बांदा चले आये और मंत्र-दीक्षा देने का कार्य आरम्भ कर दिया। इन्होंने जैतपुर-नरेश तथा सुगरा निवासी नोने अर्जुनसिंह को अपना शिष्य बनाया। अर्जुन सिंह की प्रशंसा में पद्माकर के कतिपय छन्द प्राप्त हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि पद्माकर ने "अर्जुन रायसा" नामक काव्य ग्रन्थ की रचना की थी। किन्तु वह अब तक प्राप्त नहीं हुआ।

सं० १८४९ वि० में पद्माकर रजधान के गुसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर के यहाँ गए और वहाँ सं० १८५६ वि० तक रहे। उन्हीं हिम्मतबहादुर की प्रशंसा में पद्माकर ने "हिम्मतबहादुर बिरदावली" लिखी, जिसका एक अंश इस संग्रह में उद्धृत है।

जयपुर-नरेश जगतसिंह से इनकी भेंट होने के विषय में एक किंवदन्ती प्रचलित है। जिस समय पद्माकर जयपुर पहुँचे, महाराज जगतसिंह अत्यन्त विलासप्रिय होने के कारण इनसे मिलते ही नहीं थे। एक समय महाराज तथा उनके काव्य-गुरू दोनों ही एक समस्या की पूर्ति में संलग्न थे किन्तु किसीप्रकार पूर्ति नहीं हो रही थी। पद्माकर को किसीप्रकार समस्या ज्ञात हो गई और इन्होंने उसकी पूर्ति कर महाराजा के पास भेज दी। उसे पढ़कर सब लोग चमत्कृत हो उठे। अब पद्माकर को दरबार में स्थान मिल गया। जगतसिंह के आश्रय में ही आप ने अपने प्रसिद्ध नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ 'जगद्विनोद' की रचना की। पद्मा-भरण की भी रचना यहीं पर हुई।

ग्वालियर नरेश दौलतराव सेंधिया के नाम पर इन्होंने 'आलीजाह-प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की जो वास्तव में जगद्विनोद का रूपान्तर मात्र है। ग्वालियर में ही सरदार उदोजी के कहने से इन्होंने "हितोपदेश" का भाषानुवाद किया। कुष्ट रोग से आक्रान्त होनेपर आपने वाल्मीकी-रामायण का आधार लेकर रामस्तुति सम्बन्धी पदों की रचना फुटकर छन्दों में की थी जो "प्रबोधपचासा" नाम से प्रसिद्ध है। कुष्ट रोग बढ़ जाने पर इन्होंने "गंगालहरी" की रचना की। यह प्रसिद्ध है कि इस रचना के अनन्तर कवि रोग से मुक्त भी हो गया

था। "राम-रसायन" ग्रन्थ भी इन्हीं का लिखा हुआ कहा जाता है। इसप्रकार पद्माकर रचित अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

इनके उदयपुर तथा चरखारी नरेश के दरबार में रहने के भी कतिपय प्रमाण उपलब्ध हैं। उदयपुर के गनगौर के मेले पर इनके कुछ पद्य मिलते हैं तथा यह प्रसिद्ध है कि चरखारी-नरेश के अपमान करने पर ही पद्माकर सं० १८८३ वि० में कानपुर आकर गंगातट पर बास करने लगे थे। इन्हीं दिनों 'गंगा लहरी" की रचना हुई। सं० १८९० वि० में इनका स्वर्ग वास हुआ।

हिम्मतबहादुर विरदावली

कवि की वीररस-पूर्ण यह एकमात्र रचना है। इसमें हिम्मत बहादुर के अनेक युद्धों का वर्णन है। इसी में नुगरा-निवासी नोने अर्जुनसिंह के साथ वनगांव (बुन्देलखण्ड) में हुए युद्ध का भी वर्णन है। युद्ध का समय कवि ने इस प्रकार बताया है —

निर्माण काल

संवत अठारह से सुनौ, उनचास अधिक हिये गुनौ।
वैसाख बदि तिथि द्वादसी, बुधवार जुत यह यादसी।

इससे ज्ञात होता है कि इस युद्ध का आरम्भ वैशाख बदी द्वादसी बुधवार सं० १८४९ वि० में हुआ था। पद्माकर सं० १८४९ वि० से १८५६ वि० तक हिम्मतबहादुर के साथ थे। अतः यह अनुमान है कि इस ग्रन्थ की रचना भी इसी बीच हुई होगी।

उक्त दोहे में 'यादसी" शब्द भरती का प्रतीत है। इससे अनुमान है कि यह समय सम्भवतः स्मृति के आधार पर दिया गया है।

स्व० लाला भगवानदीन जी ने लिखा* है कि "बांदे में रहने ही के समय पद्माकर ने "हिम्मतबहादुर विरदावली" की रचना की थी।" पद्माकर सं० १८४६ वि० से सं० १८५६ वि० तक हिम्मतबहादुर के आश्रित रहे। अपने आश्रयदाता की प्रशंसा पर इस ग्रन्थ की रचना संम्भवतः रजधान मे हुई होगी।

इस संग्रह में "हिम्मतबहादुर बिरदावली" का ही एक अंश होने के कारण अर्जुनसिंह और हिम्मतबहादुर के चरित्र के सम्बन्ध मे कुछ लिखना अनावश्यक न होगा।

अर्जुनसिंह:—इनका असली नाम अर्जुनसिंह था और , नोने यह इनकी उपाधि थी जो कि बांदा-नरेश से इन्हे प्राप्त हुई थी। ये पॅवार क्षत्रिय थे। इनके पिता जैतपुर राज्य के एक छोटे से जागीरदार थे। इनके कुछ वंशज चरखारी के बंसिया नामक गांव मे मिलते हैं। ये सर्व प्रथम चरखारी मे नौकर हुए। किन्तु चरखारी-नरेश खुमानसिंह से कुछ झगड़ा होने के कारण बांदा-नरेश गुमानसिंह के दरबार में पहुँचे। जब हिम्मतबहादुर ने करामत खां के साथ बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई की और 'तेंदवारी' के मैदान में गुमानसिंह ने उनका सामना किया तो, अर्जुनसिंह ने बड़ी वीरता दिखलायी और शत्रु को हराकर यमुनापार भगा दिया। यहीं पद्माकर से इनका परिचय हुआ। उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर इन्होंने पद्माकर को अपना दीक्षा-गुरु बनाया। इनके विजय की तीसरी लड़ाई, जिसे बुन्देलखण्ड का महाभारत कहना चाहिये, 'गढ़ौरा' मे हुई जिसमें इन्हें पन्नाराज्य का बहुत सा हिस्सा मिला। इसके

* भूमिका हि० ब० वि० पृ० ४।

अनन्तर 'बनगांव' वाली लड़ाई हुई, जिसमे अर्जुनसिंह मारे गये।

हिम्मतबहादुर —ये कुल पहाड़ मे रहने वाले ब्राह्मण के लड़के थे। जब ये बहुत छोटे से थे, तभी इनके पिता का देहान्त हो गया था। इनके एक बड़े भाई भी थे। इनकी माता ने इनके पालन-पोषण मे असमर्थ होने के कारण इन्हे राजेन्द्र-गिरि नामक एक गोसांई के हाथ सौंप दिया और उसने दोनो लड़को को अपना शिष्य बना लिया। बड़े लड़के का नाम उमरावगिरि और छोटे का नाम अनूपगिरि रखा। राजेन्द्र गिरि ने इन्हे युद्ध-विद्या मे निपुण कर दिया।

जब ये बीस वर्ष के हुए, इनके गुरु का देहान्त हो गया। अनूपगिरि अपने भाई और दो चार चेलों के साथ लखनऊ के नवाब शुजाउद्दौला की सेना मे नौकर हुए। शुजाउद्दौला ने इन्हे "हिम्मतबहादुर" की पदवी दी। इनके वंशज अभी तक "रजधानिया गौसांई" कहलाते है।

शुजाउद्दौला ने इन्हे करामतखां के साथ बुन्देलखंड जीतने के लिये भेजा। ये इस लड़ाई मे बहुत बुरी तरह हारे। बांदा नरेश के सेनापति अर्जुनसिंह की वीरता से इनके छक्के छूट गए। इसके कुछ ही दिन के अनन्तर गदौरा की लड़ाई मे अर्जुनसिंह को शक्ति-हीन हुआ देखकर इन्होने मरहठों के सूबेदार अलीबहादुर को बुलाकर चालीस हजार सेना की सहायता से बड़ी कायरता पूर्वक अर्जुनसिंह का वध करवाया। इस लड़ाई को अर्जुनसिंह के दीक्षा गुरु पद्माकर ने अपनी आंखो हिम्मतबहादुर के साथ रह कर देखा था। इसी लड़ाई का वर्णन, इस पुस्तक में विस्तार से किया गया है।

इस घटना के बाद हिम्मतबहादुर अधिक दिन तक जीवित न रह सके। अलीबहादुर ने अपने कथना-नुसार इनको विजित-देश का कुछ अंश दे दिया। पर यह बात अली बहादुर के लड़के शमशेरबहादुर को बुरी लगी और उसने जागीर लौटा लेनी चाही। हिम्मतबहादुर ने अपनी सहायता के लिए ईस्टइंडियाकंपनी से प्रार्थना की और विजित-देश का कुछ भाग देने का वचन दिया। अंग्रेजों ने इनकी सहायता तो की, किन्तु बाद मे हिम्मतबहादुर को भी देश-रक्षा के लिए अयोग्य बताकर राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया।

हिम्मतबहादुर की मृत्यु कालिजर-दुर्ग के अवरोध के समय हुई। ऐसा कहा जाता है कि जीवन के अन्तिम दिनों मे हिम्मतबहादुर तथा इनके भाई का चरित्र गिर गया था।

विवरण

विरदावली मे कुल २११ पद्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह पॉच सर्गों मे विभाजित है। किन्तु इसके किसी भी संस्करण अथवा उद्धरण मे यह सर्गविभाजन नहीं किया गया है। यदि ऐसा किया गया होता तो निस्सन्देह ग्रन्थ की सौन्दर्य-वृद्धि होती। प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक हरिगीतिका छन्द है, जिसकी अन्तिम दो पंक्तियां सब में समान रूप से इस प्रकार है:—

> पृथुरित्ति नित्त सुबित्त दै, जग जित्त कित्ति अनूप की।
> बर बरनिये विरदावली, हिम्मत बहादुर भूप की।

प्रथम सर्ग, मंगलाचरण के एक छप्पय तथा एक हरिगीतिका में ही समाप्त कर दिया गया है। इसमें भगवान् कृष्ण से अनूपगिरि को विजय देने की प्रार्थना की गई है। द्वितीय

सर्ग के ४८ छन्दो मे हिम्मतबहादुर की अतिशयोक्तिपूर्ण-प्रशंसा की गई है —

> सुख साहिबी अमरेस हैं, भुव-भारधर भुजगेस हैं।
> मन-मौज देन महेस है, गुन-ज्ञानवान गनेस हैं।

साथ ही इसमे बुन्देलखण्ड की चढ़ाई का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार हिम्मतबहादुर ने दतिया तथा पन्ना राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था।

तीसरे सर्ग मे केवल १६ छन्द है। इसमे सेना की सजावट तथा चरित्र-नायक के आतंक का दिग्दर्शन कराया गया है। चतुर्थ सर्ग सब से बड़ा है। इसमें ११६ छन्द हैं। इसीमे हिम्मतबहादुर की अर्जुनसिह पर चढ़ाई तथा युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे हिम्मतबहादुर के मानधाता तथा जुलफिकार नामक दो सरदारो के मारे जाने का उल्लेख है और हिम्मतबहादुर के कई भतीजो का भी अर्जुनसिह से युद्ध करने का वर्णन है। उनका चित्रण महान् वीरों के रूप मे किया गया है। इसीमे अन्य कई सरदारो से युद्ध का वर्णन किया गया है। पंचम सर्ग मे हिम्मतबहादुर तथा अर्जुनसिह के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। इसीमे हिम्मतबहादुर के हाथ अर्जुनसिह के मारे जाने की कथा है। अन्त मे हिम्मतबहादुर को आशीर्वाद देकर कथा समाप्त हुई है।

अर्जुनसिह की मृत्यु के सम्बन्ध मे पद्माकर का यह कथन कि वे हिम्मतबहादुर के हाथ मारे गए, इतिहास के विरुद्ध है। वास्तव मे इनकी मृत्यु इन्ही के वंशजो द्वारा हुई थी, जो नवाब के यहां नौकर हो गए थे

ऐतिहासिकता

यह प्रसिद्ध है कि पद्माकर शृंगारी-कवि थे। वीर-रस की रचना केवल लोभ के वशीभूत होकर उन्होंने की थी। अतः उसमें उनकी असफलता अनिवार्य थी।

आलोचना

किन्तु इस असफलता का कारण एक मात्र लोभ ही नहीं था। बात यह है कि मुक्तक-काव्य की अपेक्षा प्रबन्ध-काव्य की रचना में अधिक योग्यता अपेक्षित होती है। मुक्तक-रचना में सामग्री एकत्र कर देना ही पर्याप्त होता है, किन्तु प्रबन्ध में रस-सामग्री के साथ प्रवाह का ध्यान अधिक रखना पड़ता है। यदि प्रबन्ध-काव्य पाठक को कथा-प्रवाह में मग्न नहीं कर देता तो उसकी असफलता निश्चित है। यद्यपि 'विरदावली' एक प्रबन्ध-काव्य है किन्तु उसमें प्रवाह के निर्वाह पर ध्यान नहीं दिया है। सूची गिनाने की प्रथा प्रबन्ध-काव्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है। इससे प्रवाह में बाधा पड़ती है; अर्जुनसिंह के सहायकों का वर्णन करना हुआ तो कवि ने क्षत्रियों के छत्तीस कुलों की सूची गिना दी।

प्रबन्ध में रस-संचार के लिये उल्लिखित गुणों के अतिरिक्त रसानुकूल आलम्बन सर्वथा आवश्यक है। यदि किसी कापुरुष को वीररस का आलम्बन बनाया जाय, तथा उसके द्वारा रण-क्षेत्र का संचालन कराकर तलवारों की झनझनाहट, तोपों की गड़गड़ाहट तथा खून की नदियां बहा दी जाय, तो भी वहाँ वीर रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अपितु वह एक उपहा-सास्पद घटना होगी। इसलिये संस्कृत-साहित्य के रीति-ग्रन्थों में प्रबन्ध-रचना के लिये प्रख्यात कथा-वस्तु तथा धीर, वीर और उदात्त नायक का विधान किया गया है। केशव की राम-चन्द्रिका में भाषा तथा भावों की उत्कृष्टता न होने पर भी कहीं कहीं सहृदयों की वृत्ति रम जाती है। इसका एक मात्र कारण,

उसके नायक मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र हैं। यदि भूषण अपनी रचना का आलम्बन शिवाजी ऐसे वीर को न बनाते तो उनकी रचना का सम्मान इतना कदापि न हुआ होता। लोक-मंगल करने वाले वीरों का यशोगान कवि की अखण्ड-कीर्ति का साधन होता है। किन्तु पद्माकर ने वीर-रस के लिये एक ऐसा नायक चुना जिसमें वीरत्व की भावना नाम की ही थी। उन्होंने हिम्मतबहादुर को नायक केवल अधिक धनप्राप्ति की आशा से ही बनाया। उसमें किसीप्रकार का चारित्रिक-आदर्श न था। यदि कवि उसके स्थान पर अर्जुनसिंह को नायक बनाता तो उसे निश्चय सफलता मिलती। क्योंकि अर्जुनसिंह सदाचारी तथा राष्ट्रीय-वृत्ति का एक क्षत्रिय था।

पद्माकर का काव्य-जीवन शृंगार-प्रधान होने से उनकी रचनाओं में—"केलिन में कूल में कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलिन कलीन किलकन्तु हैं" इस सूची की प्रधानता मिलती है। 'विरदावली' में पद्माकर ने अर्जुनसिंह के सहायक क्षत्रियों के छत्तीस कुलों का वर्णन अत्यन्त-विस्तार से किया है। तलवार तथा बन्दूक के जितने नाम कवि को अवगत थे, सब गिना दिये हैं। इससे साहित्यिक-सौन्दर्य तो नष्ट हो ही गया है, वर्णन में भी रोचकता कम हो गयी है। हृदय से निसृत तथा अनुभूति से व्यक्त हुई कविता ही सच्ची, आकर्षक तथा हृदयग्राहिणी हो सकती है। रीतिकाल के कवि आश्रयदाता के रुच्यनुकूल कविता करना अपना कर्तव्य समझते थे, अतः उनमें अन्तर्दृष्टि का अभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

'विरदावली' की शैली अधिकतर वर्णनात्मक है। अतः इसमें साहित्य-सौन्दर्य का अभाव होना कोई विशेष आश्चर्य

की बात नहीं है। इसमें अलंकार-सौन्दर्य भी अन्यग्रन्थों की अपेक्षा अल्प परिमाण में ही है :—

दिसि दिसिन दादुर से उमगि, सूनकीब दुंदि मचावहीं।
कलकीर कोकिल से तहाँ, ढाढ़ी महाधुनि छावहीं।
रन रंग तुंग तुरंग-गन, सत्वर उड़त्त मयूर से।
तहं जगमगानी जामगी, जुगनून हू के पूर-से।
[हि० वि०, पृ० १४]

इसमें उपमालंकार है। किन्तु वीर-रसोत्कर्ष में वह सहायक नहीं है। मोर की गणना शीघ्रगति वाले पक्षियों में नहीं है। उसके साथ समानता प्रगट करने से घोड़े का ही महत्त्व कुछ कम हो जाता है।

भावों का संगठन समुचित-रीति से कहीं प्रकट नहीं होता है। ग्रन्थ इतिवृत्तात्मक होने से सर्वत्र गम्भीरता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है। अर्जुनसिंह का अपने अनुयायियों को विस्तृत-उपदेश अत्यन्त नीरस प्रतीत होता है :—

पहिरे गरे गुटिका कवच रचि भागवत गीतान के।
× × × ×
वह जंत्र मत्र अनेक दुर्गा भागवत गीतान के।
गुटिकागरे बिच सोभहीं जे करत जय घमसान के।

इन छन्दों से प्रकट होता है कि ये वीरत्व के लिए उत्साह तथा शक्ति की अपेक्षा यंत्र, तंत्र, मंत्र-गुटिका आदि की आवश्यकता का ही समर्थन करते थे। इनकी सहायता से विजय का पूर्ण विश्वास उन्हें हो जाता था। इन्होंने क्षत्रिय-राजाओं को युद्ध तथा द्यूत के लिए सर्वदा सन्नद्ध रहने का आदेश दिया है :—

जग जुआ जुद्धहु को कबहु सपनेहुँ नहि नाहीं करे ।

इनके इस उपदेश से इनके लोक-कल्याण के ज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता है ।

इस ग्रन्थ में कुछ छन्द ऐसे मिलते है जो संस्कृत से अनुवादित प्रतीत होते है :—

आयू रक्षति मर्माणि आयुरन्न प्रयच्छति ।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम् ॥

"विरदावली" मे इसका इस प्रकार वर्णन है ,—

निज आयु रक्षा करत तनकी आयु मर्म बचाव ही ।
निज आयु सिंह सपेट ते सुबचाइ बर को ल्यावहीं ।
निज आयु अन्न अमोघ देत यहै विचारत गाजिये ।
परिए न कबहूँ दीन अरु रहि न कबहूँ रनते भाजिये ।

नायक की वीरता का दिग्दर्शन, प्रतिनायक के वीरता-वर्णन से अधिक सुन्दर होता है । इसे पद्माकर जानते थे । उन्होंने हिम्मतबहादुर के विस्तृत-वर्णन के साथ ही साथ अर्जुनसिंह का भी वीरोचित-वर्णन किया है ।

हिम्मतबहादुर की वास्तविक दुर्बलता का चित्रण कवि ने नहीं किया । जिस युद्ध मे हिम्मतबहादुर अर्जुनसिंह से हार गए थे, उसका वर्णन इन्होंने किया ही नहीं है । अलीबहादुर का उल्लेख नहीं के बराबर है । यह वही सरदार है, जिसकी सहायता से हिम्मतबहादुर को अर्जुनसिंह पर आक्रमण करने की हिम्मत हुई । वीर-काव्य की दृष्टि से यह उचित भी है । किन्तु इससे ऐतिहासिकता नष्ट हो जाती है ।

पद्माकर अपने अन्य ग्रन्थों के कारण परिष्कृत-ब्रज-भाषा के लिये प्रसिद्ध होने पर भी अपनी इस कृति में उसके दर्शन नहीं करा पाते। सर्वत्र बनावटीपन ही लक्षित होता है :—

भाषा

पृथुरिति नित्त सुवित्त दै जग जित्ति कित्ति अनूप की।

यह इनके प्रधान छन्दों मे से एक है। इसका उपयोग सर्ग-विभाजन के लिये किया गया है। इसमे अनुप्रास तथा ओज लाने के लिये "रित्ति" "नित्ति" "जित्ति" "कित्ति" आदि शब्दों को कितना तोड़ामरोड़ा गया है। पद्माकर के विचार से वीर-रस मे ओज का प्रदर्शन करने के लिये संयुक्ताक्षरों की महान आवश्यकता है, चाहे वहाॅ वीर-रसोपयुक्त भावों का अभाव ही हो। उदाहरण के कुछ पद्य उपस्थित किये जाते है :—

करि धक्काधक्की, हक्काहक्की, ठक्काठक्की मुदित मची।
तह ढुक्काढुक्की, मुक्कामुक्की, डुक्काडुक्की होन लगी।
इन इक्काइक्की, झिक्काझिक्की, फिक्काफिक्की जोर लगी।
ढालन के ढक्के लागत पक्के इत उत थक्के थरकत हैं।
इक इक्कन ढक्के बँधे झमक्के तनन तमक्के तरकत हैं।

वास्तव मे संयुक्ताक्षरों के शब्द-जाल द्वारा ओज का प्रदर्शन तथा वीर-रसका उत्कर्ष नहीं हो सकता। उसके लिये व्यंग्यपूर्ण-उक्तियाॅ तथा उत्साहपूर्ण-संवादों की नितान्त आवश्यकता है। 'विरदावली' मे इसका सर्वथा अभाव है। जब भाव रसोत्पत्ति मे सहायक नहीं हो सकते, तभी इन बाह्याडंबरों का आश्रय लिया जाता है।

कहीं-कहीं वीप्सा भाव व्यंजन की सहायक होता है, किन्तु उसका अतिरेक हानिकारक ही है :—

तहँ हरषि हरहर हरषि हरहर हरषि हरहर करि मिल्यौ ।
वहँ कहनि हरहर की सुधुनि सुनि जिगर सत्रु न को हिल्यौ ।
घम घमाघम झम झमाझम धम धमाधम ह्वै ठई ।
चम चम चमाचम तम तमातम छम छमाछम छितिछई ।

इसप्रकार ही शब्द की अनेक बार आवृत्ति रसोद्रेक में सहायक तो होती ही नहीं, कानों को अप्रिय भी प्रतीत होती है।

इनकी भाषा में संयुक्ताक्षरों को देखकर उसके प्राकृत-मिश्रित होने का कुछ लोगों को भ्रम हो गया था। किन्तु व्रज-भाषा के शब्दों को ही ओजस्वी बनाने के लिये उन्हें द्वित्त तथा संयुक्ताक्षरों के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इनकी भाषा बुंदेली-मिश्रित होने पर भी व्रजभाषा ही है। बुंदेली व्रज की ही एक शाखा है, अतः दोनों का एक में ही समन्वय हो सकता है।

हिम्मतबहादुर-विरदावली

छप्पय

आन फिरत चहु चक्क, धाक धक्कनि गढ धुक्काहि ।
लुक्कहिं दुवन दिगंत, जाय जहँ तहँ तन मुक्कहि ।
दुदुभि धुनि सुनि धीर, जलद मन-मद तजि लज्जहिं ।
भज्जहि खल दल विकल, सोक-सागर महँ मज्जहिं ।
धनि राजइन्द्र गिरि नृप सुवन, उथपन-थप्पन जग जयउ ।
बर नृप अनूपगिरि भूप जब, सुभट सेन-सज्जत भयउ ।

हरिगीतिका

नृप धीर बीर बली चढ्यौ, सजि सेन समर सुखेल की ।
सुनि बब बीरान के बढी, हिय हौस बर बगमेल की ।
पृथु-रित्त नित्त सुवित्त दै, जग जित्ति कित्त अनूप की ।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की ।

डिल्ला

समर प्रबल दल दिग्घ उमंडिय,
दुंदुभि धुनि दिगमंडल मंडिय ।
घर्घरात घन ते अति धुक्कनि,
भभंरात अरि भजन सुलुक्कनि ।
उनमद दुरद घटनि छबि छज्जिय,
जौन जलद पटलनि तकि तज्जिय ।
उच्च निसान गगन महं डुल्लहिं,
सुर विमान फफ्फरनि फुल्लहिं ।
फलमलाति फूलनि छबि ठानिय,

बिज्जुल मनहु मेघ लपटानिय।
अड़त फेर ऐंड़ात उमंडत,
झूमत झुकत गजत धुनि मंडत।
उलहत मदनि समुद्-मद गारत,
गिरिवर गरद मरद करि डारत।
सिन्दूरनि सिर सुभग उमंडिय,
उदयाचल-रबि छबि छिनि खंडय।
घनघनात गजघंट उमंगनि,
सनसनात सुर-श्रुति सुभ अंगनि।
घुमड़ि चलत घुम्मत घन घोरत,
. सुंडनि नम्वत कुंड झकझोरत।
चलत मतंगनि तकि लमंकिय,
पखरैत हय हूहक हुमंकिय।
सिर झारत न सहत मृग-सोभनि,
कहुँ कहुँ चलत छुवत छिति छोभनि।
उड़त अमित गति करि करि ताछन,
जीतत जनु कुलटान-कटाछन।
थिरकत थिरकि चलत अग अंगनि,
जीतत झुमकि पौन मग संगनि।
पच्छ-रहित जीतत उड़ि पच्छिय,
अंतरिच्छ गति जिन अवलच्छिय।
दिननि अमोल लोल गति चल्लहि,
विदित अमोल गोल दल मल्लहि।
बाग लेत अति लेत फलंगनि,
जिमि हनुमत किय समुद उलंघनि।
जिन पर चढ़त सिन्धु-ढिग लग्गहिं,
मंडल फिर फिर उठत उमग्गहिं।

पवन प्रचंड चंड अति धावहिं,
तदपि न तिनहिं नैकहूवै पावहिं।
तिन चढ़ि भट छबि छटनि छलकिय,
रन उमंग अग अंग झलकिय।
उमडि अग्रवर पैदर दिन्हउ,
जिन हठि प्रथम युद्ध व्रत लिन्हउ।
बन्दीजन बिरदावलि बुल्लहिं,
सुनत सुभट-दृगकमल प्रफुल्लहिं।
मानव सुरनि अलापत ठड्डिय,
बीर उरनि रस बीर सु बट्ढिय।
सार झलकि झलमल छबि उग्गिय,
मानहुँ अमित भानु भुव उग्गिय।
उमडत दल छिति डग डग डुल्लत,
कल्लोलनि बढ़ि समुद उच्छलत।
गढ़ धुकहिं गढ़पति-उर कंपहिं,
शत्रु सोक-सागर महं झंपहिं।
धूरि-धुंध - मंडित रबि-मंडल,
अकबकात अलकेस अखंडल।
थंभि न सक्कत भूमिधर डिक्करि,
टुट्टत रद्द फटत नभ चिक्करि।

छप्पय

चिक्करि चिक्करि उठहिं, दिक-दिक्करि करनिन-जुत।
खल दल भज्जत लज्जि, तज्जि हय-गय दारा सुत।
संकत लंक अतंक, बंक हंकनि हुङकारत।
डग डग डुल्लत गब्बि, सब्ब पब्बयनि सिधारत।
तहँ 'पद्माकर' कबि बरन इमि, नृप अनूपगिरि जब चढ़यउ।
तब अमित अराबो अंखलदल, इक बार छुट्टत भयउ।

हरिगीतिका

छुट्टत भयउ इक बार जब, सब तोपखानो-तड़कि कै।
टुट्टत भयउ गढ़-वृन्द गढ़पति, भाजि गे सब सड़कि कै।
पृथु रित्ति नित्ति सुबित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूर की।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

भुजंगप्रयात

तुपक्कै तड़क्कै धड़क्कै महा है,
प्रलै चिल्लिका-सी झड़क्कैं जहाँ हैं।
खड़क्कैं खरी बैरि छाती भड़क्कैं,
सड़क्कै गये सिन्धु मज्जै गड़क्कै।
चलै गोल-गोली अतोली सनंकै,
मनो भौर भीरै उड़ाती भनंक्कै।
चढ़ी आसमानैं छई बेप्रमानैं,
मनो मेघमाला गिलैं भासमानै।
गिरैं ते मही में जहीं भर्भराकैं,
मनो स्याम ओरे परै झर्भराकै।
चलैं रामचंगी धरा में धमंकै,
सुने तैं अवाजैं बली बैरि संकैं।
तमंचे तहाँ बीर-संचै छुड़ावैं,
कसे बंक बानै निसानै उड़ावैं।
छुटी एक कालैं बिसालै जँजालै,
जगी जामगी त्यों चलैं ऊँटनालैं।
गजैं गाज-सी छूटती त्यों गनालैं,
सुनैं लज्जितीं गज्जती मेघमालैं।
चलीं मूँगरी ऊच्च है आसमानैं,
मनो फेरि स्वर्गैं चढ़े दिग्घ-दानै।

परी एक बारे धमाधम धरा है,
मनो ये गिरी इन्द्र हू की गदा है।
किधौं ये खिमानल की चक्र• झुंडै,
परी टूटि है कै विराजै भसुंडै।
छुटी है अचाका महाबानवाली,
उड़ी है मनो कोपि कै पच्चगाली।
खरी कुहकुहाती जुड़ाती नही है,
चली है अनंतैं दिगंतैं दही हैं।
चली चहरै त्यो मचे हैं धड़ाके,
छुदाके फडाके सडाके खड़ाके।
छुटे सेर बच्चे भजे बीर कच्चे,
तजैं बाल-बच्चे फिरैं खात दच्चे।
छुटे सब्ब सिप्पे करैं दिब्ब टिप्पे,
सबै सत्रु छिप्पे कहूं है न दिप्पे।
कराबीन छुट्टैं करैं बीर जुट्टैं,
करी-कन्ध टुट्टैं इतै-उत्त लुट्टैं।
चली तोप धाँ-धाँ-धँधाँ-धाँइँ जग्गी,
धड़ाधड धड़ाधड़ धड़ा होन लग्गी।
झड़ाझड झड़ा बीर बाँके छुड़ावैं,
भड़ाभड़ भड़ाभड़ भड़ा त्यौं मचावैं।
दगो यों अराबो सबै एक बारैं,
किधौ इन्द्र कोप्यौ महाबज्र डारै।
किधौ सिन्धु सातौ सबै भर्भराने,
प्रलैकाल के मेघ कै घर्घराने।
सुनी जो अवाजैं सबै बैरि भाजैं,
न लाजैं गाहै छोड़ि दीन्ही समाजैं।
तजैं-पुत्र दारैं सम्हारे न देहैं,

गिरैं दौरि उट्ठै भजैं फेरि जैहैं।
उलत्थें पलत्थें कलत्थें कराहैं,
न पावैं कहूँ सोक सिन्धून थाहैं।
तजैं सुन्दरी त्यों दरी में धसे हैं,
तहाँ सिंह बग्घान हू ने ग्रसे हैं।

छप्पय

छिति अति छज्जिय अत्र, छत्र-छाहन छबि छक्किय।
चहुँव चक्क धकपक्क, अरिन अकबक्क धरक्किय।
इक्क दुवन तजि धरनि, सरनि हुव चरण सु तक्किय।
हय गय पयदलं छोड़ि छोड़ि, सुख सागर नक्किय।
जगमग प्रताप जग्यव उमगि, उथल-पथल जल-थल गयउ।
नृप-मनि अनूपगिरि भूप जब, निज दल-बल हंकत भयउ।

हरिगीतिका

हंकत भयउ निज दल सकल, ह्वै करि भटन की पिट्ठि पै।
हर हरषि भापत तहाँ रापत, डिट्ठि आरि की डिट्ठि पै।
पृथु रित्ति नित्त सुबित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
बर बरनिये बिरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

त्रिभंगी

तहँ दुहु दल उमड़े, घन सम घुमड़े, झुकि-झुकि झुमड़े, जोर-भरे।
तकि तबल तमके, हिम्मत हंके, बीर बमंके, रन उभरे।
बोलत रन करखा, बाढ़त हरषा, बाननि बरषा, होन लगी।
उल्लारत सेलैं, अरिगन ठेलैं, सीननि पेलैं, रारि जगी।
बन्दीजन बुल्ले, रोसन खुल्ले, डग-डग डुल्ले, कादर हैं।
धौंसा-धुनि गज्जे, दुहुँ दिसि बज्जे, सुनि धुनि लज्जे, बादर हैं।
नीसान सु फहरैं, हलहल छहरैं, पावक लहरै-सी लगतीं।

छुवती नकि नाका, मनहु सलाका, धुजा पताका, नभ जगती ।
कढि कोटनबारे, बीर हँकारे, न्यारे-न्यारे, अभिरि परे ।
किरवाननि झारैं, सुभट बिदारैं, नेकु न हारैं, रोप भरे ।
कानन लौं तानैं, गहि कम्मानैं, अरिन निमानैं, सिर घालैं ।
सूधे अति पैठै, सुच्छनि एँठे, भुजनि उमैठैं, गहि डालैं ।
अन्नन की मूकैं, घालि न चूकैं, दै दै कूकैं, कूद परैं ।
गहि गरदन पटकैं, नेकु न भटकैं, झुकि झुकि झटकैं, उमंग भरे ।
रन करत अड़ंगे, सुभट उमंगे, बैरिन बंगे, करि झपटैं ।
सीसन की टक्कर, लेत उटक्कर, घालत छक्कर, लरि लपटैं ।
तहँ हत्थाहत्थी, मत्थामत्थी, लत्थापत्थी, माचि रही ।
काटैं कर कट-कट, बिकट सुभट-भट, कासों खटपट, जात कही ।
गहि कठिन कटारी, पेलत न्यारी, रुधिर पनारी, बमकि बहैं ।
खंजर खिन खनकैं, ठेलत ठनकैं, तन सनिसनि कै, हिलगिर हैं ।
गहि गहि पिसकब्जैं, मरमनि गब्जैं, तकि तकि नब्जे, काटत हैं ।
कम्मर ते छूरे, काटत पूरे, रिपुतन रूरे, काटत हैं ।
करि धक्काधक्की, हक्काहक्की, ढक्काढक्की, मुदित मची ।
घनघोर घुमंडी, रारि उमंडी, किलकत चंडी, निरखि नची ।
एकै गहि भाले, करि मुख लाले, सुभट उताले, घालत हैं ।
तोरत रिपु-ताले, आले-आले, रुधिर- नाले, चालत हैं ।
झारत असि जुरि जे, वीरनि उर जे, पुरजे पुरजे, कोटि करें ।
हथियारनि सूटैं, नेकु न छूटै, खलदल कूटैं, लपटि लरें ।
तहँ ढुक्काढुक्की मुक्कामुक्की डुक्काडुक्की होन लगी ।
रन हुक्काहुक्की झिक्काझिक्की फिक्काफिक्की जोर जगी ।
काटत चिलता हैं, इमि असि बाहैं, तिनहिं सराहैं, बीर बड़े ।
टूटैं कंटि झिलमैं, रिपु रन बिलमैं, सोचत दिल मैं, खड़े खड़े ।
ढालन के ढक्के, लागत पक्के, इतउत थक्के, थरकत हैं ।
इक हुक्कनि टक्के, बँधे झमक्के, तननि तमक्के, तरकत हैं ।

ललकत फिरि लपटे, छुत्तिन छुपटे, करि अरि चपटे, पेरत है।
भट भु ानि उखारत, छिति पर डारत हँसि हुड़कारत हेरत हैं।
ठोंकत भुजदंडनि, उमड़ि उदंडनि, प्रबल प्रचंडनि चाउ-भरे।
करि खलदल खंडन, बैरि बिहंडन नौऊ खंडन, सुजस करे।
दस्ताने करि करि, धीरज धरि धरि, जुद्ध उभरि भरि, हंकत है।
पैठत दुरदन में, रोषित रन में, नेकु न मन में, संकत हैं।
निकसी तह खग्गैं, उमड़ि उमग्गै, जगमग जग्गैं, दुहुं दल में।
भाँतिन भातिन की, बहु जातिन की, अरि पाँतिन की, करि कलमें।
तहँ कढ़ी मगरबी, अरि गन चरबी, चापट करबी-सी काटैं।
जगि जोर जुनब्बै, फहरत फब्बै, सुंडनि गब्बै, फर पाटैं।
बिज्जुन सी चमकैं, धाइन धमकैं, तीखन तमकैं, बन्दर की।
बंदरी सु खग्गैं, जगमग जग्गै, लपकत लग्गैं, नहि बर की।
सोहैं सुभ सुरती, चलत न मुरती, रन में फुरती, बीरन को।
लीलम तरवारैं, झुकि झुकि झारैं, तकि तकि मारैं, धीरन कों।
गजकुम्भ बिदारैं, सु लहरदारैं लहरनि धारैं, बिधि बिधि की।
लखि-लालू वारैं, रिपुगन हारैं, मोल विचारैं, नव निधि की।
तहँ खुरासानी, जग की जानी, चलैं कृपानी, चकचौंधै।
निब्बाज-हु-खानी, दलनिधिखानी, बिज्जु-समानी, रन कौंधैं।
असिवर नादौटैं, चलत न लौटैं, मुँडनि मौटैं, काटि करैं।
बर मानासाहीं, भटनि दुबाही, झिलमनि बाहीं, बहीं झरैं।
सुभ समर सिरोही, जगमग जोही, निकसत सोही, नागिन-सी।
कर करी सुकत्ती, तीखन तत्ती, हनि रिपु-छत्ती, नहि बिनसी।
गज्जत गज दुरदा, सहित बगुरदा, गाजिब गुरदा, देखि परे।
तुरकन के तेगा, तोरन तेगा, सकल सुबेगा, रुधिर भरे।
जग जगी जिहाजी, मंजुल माजी, सूरन साजी, सोभि रहीं।
दिपती दरियाई, दोनौं धाई, भटनि चलाई, अति उमही।
तहं सु अलेमानी, और न सानी, सहित निसानी, चलन लगीं।

सुजुनेद-हु-खानी, पूरित पानी, दिपति दिखानी, जगाजगी ।
दोनो दिसि निसरी, लखत न बिसरी, मंजुल मिसरी, तरवारैं ।
तन तोरन रुपती, गालिय गुपती, झकझक झुपती, झुकिझारैं ।
हेरी जु हलब्बी, सुंडनि गब्बी, सीस हलब्बी-सी चमकैं ।
तहँ करत झपट्टे, बीर सुभट्टे, चहुँ दिसि पट्टे, धमधमकैं ।
घालत अति चौड़े, गहि गहि गाड़े, रिपु-सिर झाड़े, सेज्ञ हरैं ।
करि करि चित चोपैं, रन पग रोपैं, धरि धरि धोपैं, धूम करैं ।
जिन ने अति मारे, बखतर फारे, दलनि दुधारे, बहु निकसे ।
तहँ सु बरदमानी, खडग पिहानी, हर बरदानी, हेरि हँसे ।
चरबी जिन चाबी, दबहिं न दाबी, दिपति दुताबो, देखि परैं ।
मुरि मुरत कहूँना, उत्तम ऊना, सब तें दूना, काट करैं ।
छीलत जे कोंचे, रन मे नाचैं, सुदम तमाचैं, ओप धरै ।
रंजित रनभूमी, सुखडग रूमी, रिपु-सिर तूनी, सों धारें
असिबर अंगरेजैं, वलिवलि तेजैं, अरिगन भेजैं, सुरपुर को ।
लखि फरंकसाहीं, बीरनबाही, खल भजि जाहीं, दुर दुर को ।
रिपु-झलनि झकोरैं, मुख नहिं मोरैं, बखतर तोरै तकब्बरी ।
इक एकनि मारैं, बरि ललकारैं, गहि तरवारैं, अकब्बरी ।
इमि बहु तरवारैं, काढ़ि अपारैं, सुचित विचारैं, नहिं आवैं ।
तिनके बहु खनकैं झिलमनि झनके, ठनकत ठनके, तन तावैं ।
बकचकैं चलावैं, दुहुं दिसि धावैं, हयनि कुदावैं, फूल भरे ।
गजदंत उपाटैं, हौदा काटैं, बाँध सपाटैं, अति उभरै ।
हत्थिन सों हत्थी, मत्था मत्थी, रारि अकत्थो, करन लगे ।
जंजीरनि घालैं, सुंड उछालैं, बाँधत फाँलैं, फर उमगे ।
गहि गहि हय झटकैं, दिसि दिसि फटकैं, भूपर पटकैं, नहिं लटकैं ।
पायनि सों पीसैं, अरिगन मीसैं, जम से दीसैं, नहिं भटकैं ।
प्रति गजनि उठेलैं, दंतनि ठेलैं, ह्वै भट-मेलैं, जोर करैं ।
जुत्थन सों जूटैं, नेकु न छूटैं, फिरि फिरि छूटैं, फेरि लरैं ।

करि करि इमि टक्कर, हटत न थक्कर, तन तकि तक्कर, तोरन हैं।
मारे रन गुंडनि, भाले कुंडनि, तऊ न मुंडनि, मोरन हैं।
इमि कुंजर लपटैं, दुहुँ-दल दपटैं, कुकि कुकि झपटत, झूमत हैं।
अरि पटल पटा से, फारत खासे, सुबन घटा से, घूमत हैं।
तहँ अर्जुन बंका, करि करि हंका, द्विरद निसंका, हूलत हैं।
बैठा जु किलाएँ, सुच्छनि लाएं, रन-छबि छाएँ फूलत हैं।
झारत हथियारन, मारत बारन, तन तरवारन, लगत हँसैं।
पैरत भालन कौं, सर जालन कौं, असि चालन कौं, धमकि धँसैं।
तहं मची हकाहक, भई जकाजक, छिनक थकाथक, होइ रही।
तब नृप अनूपगिरि, सुभट सिन्धु तिरि, अर्जुन सों भिरि, खड्ग गही।
हय दाबि कन्हैया, सुमिरि कन्हैया, सुगज कन्हैया, पर पहुंचौ।
झारत तरवारैं, तकि तकि मारैं प्रबल पमारैं, गहि कहुंचौ।
पटक्यो गज परतें, उमड़ि उमरतें, अरिसिर, धरतें, काटि लियौ।
रिपु-रुंड धरा को, अपत ताकर, हरहि हरा को, मुंड दियौ।
लहि अर्जुन-मत्था, गिरिजा नत्था, अमित अकत्था, नचत भयौ।
डमडमरु बजावै, बिरदनि गावै, भूत नचावै, छबिन छयौ।
किलकिलकत चंडी, लहि निज खण्डी, उमंड़ि उमंडी, हरषनि है।
संग लै बैतालनि, दे दै तालनि, मज्जा-जालनि करषति हैं।
जुगिननि जमाती, हिय हरषाती, खदखद खाती, माँसन कौ।
रुधिरन सों भरिभरि, खप्पर धरिधरि, नचनीं करिकरि, हासन को।
बज्जत जय डंका, गज्जत बंका, भज्जत लङ्का, को अरि गे।
मन मानि अतंका, करि सत संका, सिन्धु सपंका, तरितरि गे।
नृप करि इमि राररनि, लरि तरवारनि, मारि पमारनि, फतै लई।
लूटे बहु हय गय, देत खलनि भय, जग में जय-जय, धुधुनि भई।

छप्पय

जय जय जय धुनि, धन्य-धन्य गज्जिय छिति छज्जिय।
फहरत सुजस-निसान, सान जय-दुंन्दुभि बज्जिय।

सोंभहि सुभट सपूत, खाइ तन, घाइ अतुल्ले।
विमल बसन्तहि पाइ, मनहु, कल किंशुक फुल्ले।
तहँ पद्माकर कवि बरन इमि, रन उमङ्ग, सफजंग किय।
नृप-मनि अनूपगिरि भूप जहँ, सुख-समूह सु फतूह लिय।

हरिगीतिका

सुभ सुख समूह फतूह लिय, हिय मंजु मोदन सों भरै।
काली कपाली निस दिना, नित नृपति की रक्षा करै।
पृथु-रित्ति नित्त सुबित्त दै, जग जित्ति कित्ति, अनूप की।
वर बरनिए विरदावली, हिम्मतबहादुर भूप की।

चन्द्रशेखर

"हमीरहठ" के रचयिता पं॰ चंद्रशेखर जी बाजपेयी पं॰ मनीराम बाजपेयी के पुत्र थे। कहा जाता है कि इनके पिता जी भी अच्छे कवि थे। चंद्रशेखर जी का जन्म मिती पौष शुक्ल १० संवत् १८५५ में फतहपुर ज़िले मे असनी के निकट मोअज्जुमा बाद नामक स्थान में हुआ। भाषा मे इनके काव्यगुरु करनेस महापात्र* थे, जो निकटस्थ असनी ग्राम के निवासी थे। कहा जाता है कि बाजपेयी जी संस्कृत के भी कवि थे किंतु इनके संस्कृत-काव्यगुरु का पता नहीं।

परिचय

दस वर्ष की अवस्था से लेकर २२ वर्ष की अवस्था तक गुरु के चरणों के निकट विद्याध्ययन करने के पश्चात् चंद्रशेखर जी देशाटन के लिए निकले। उससमय कवि के पिता भी जीवित थे।

पर्यटन करते हुए ये, सर्वप्रथम दरभंगा गए, जहाँ इनका बड़ा सम्मान हुआ। वहाँ सात वर्ष विताकर २६ वर्ष की अवस्था मे ये जोधपुर दरबार मे पहुँचे। जोधपुर के तत्कालीन महाराज मानसिंह बड़े गुणग्राही थे और स्वयं भी कविता करते थे। कवि चंद्रशेखर ने उनके दरबार में उपस्थित होकर निम्नलिखित कवित्त पढ़ा—

---

* चन्द्रशेखर जी नरहरि के बंशज थे, जिन्हें अकबर ने "महापात्र" की उपधि दी थी जो फारसी शब्द "आलीजफ" का उलटा है। महापात्र से पिंडदान कराने वाले "महाब्रह्मण" का तात्पर्य न लेना चाहिए।

"द्वादस कलासों मारतण्ड ये उवैंगे चण्ड,
सेस बारि सौंसनि समस्त सत्रु जलि हैं।
छूटि जैहैं अचल अबास अमरेस वारो,
कूट जैहै कहलि कलौ सी भूमि हलि हैं।
शेखर कहत अलका में कलापात ह्वै हैं,
पावक पिनाकी को त्रिसूलसों निकलि हैं।
तून तानि भौंहै मानवंसी भूप मान नावौं,
जानि लैहै प्रलय पयोधिफूटि चलिहैं"।

इसपर महाराज ने प्रसन्न होकर सौ रूपये मासिक-वृत्ति स्वीकृत करदी और कविजी आनंद से उसी दरबार मे रहने लगे। किन्तु छ वर्ष पश्चात् मानसिंह के उत्तराधिकारी तख्त-सिंह ने प्रबंध अपने हाथ मे लिया। उन्होंने कवियों पर किए जाने वाले व्यय को व्यर्थ समझकर सब के वेतन आधे कर दिए। उस समय उनके दरबार मे बावन कवियों का दल रहा करता था। चंद्रशेखर को आधे वेतन पर संतोष न हुआ, अत. वे वहाँ से चलकर भ्रमण करते हुए तत्कालीन पटियाला नरेश कर्मसिंह के दरबार मे पहुँचे। वहाँ इनको पर्याप्त धन प्राप्त हुआ, और इनके रहने का भी बड़ा सुन्दर प्रबंध हो गया। जोधपुर के राजा ने अपने अपराध के लिए क्षमा मांगी और इनको फिर बुला भेजा, किन्तु इन्होंने पटियाला छोड़कर पुनः जोधपुर जाना स्वीकार न किया।

कभी-कभी अवकाश लेकर ये वृंदावन जाया करते थे और उतने कालतक "वृंदावनशतक" की रचना करते जाते थे। उनका यह ग्रंथ वृंदावन में ही अवकाशकाल में तैयार हुआ।

महाराज कर्मसिंह के अदेशानुसार इन्होंने छः हजार श्लोकों का एक नीति-ग्रंथ भी लिखा। कर्मसिंह की मृत्यु के पश्चात्

उनके उत्तराधिकारी नरेंद्रसिंह ने भी इनमे किसीप्रकार का अंतर न आने दिया।

एक बार महाराज "हम्मीरहठ" की चित्रावली देख रहे थे। उसी समय उन्हे काव्यबद्ध हम्मीरहठ सुनने की इच्छा हुई। कवि चंद्रशेखर ने उसी चित्रावली के आधार पर प्रस्तुत "हम्मीरहठ" की रचना करके महाराज की अभिलाषा पूर्ण की। इनका स्वर्गवास सं० १९३२ विक्रमीय मे हुआ। इनके वंशज अब भी पटियाले के दरबार में रहते है।

इनके द्वारा रचे हुए निम्नलिखित ग्रंथ कहे जाते हैं—

(१) हम्मीर-हठ (२) राजनीति (३) नखशिख (४) रसिक-विनोद (५) वृंदावन शतक (६) गुरुपंचाशिका (७) ताजक (ज्योतिषग्रन्थ) (८) माधवी वसंत (वृहत्) (९) हरिभक्ति विलास। इनमे रसिकविनोद नखशिख तथा हमीरहठ बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" द्वारा प्रकाशित किए जा चुके हैं।

हमीर-हठ

प्रारंभ मे मंगलाचरण के अनंतर पटियाला नरेश नरेंद्रसिंह की आज्ञा से चित्रावली के आधार पर 'हमीरहठ' को काव्य-बद्ध करने का उल्लेख है। कथा संक्षेप

सारांश मे इसप्रकार है—

अलाउद्दीन बादशाह, एक बार, बेगमो के साथ शिकार खेलने जाता है। जंगल मे उसकी एक मरहठी बेगम महिमा-शाह मंगोल नामक एक वीर सरदार पर मुग्ध हो जाती है। उनके प्रेम-प्रसंग ही में एक शेर वहाँ आ पहुँचता है। महिमा एक ही बाण में उसका काम तमाम कर देता है।

शिकार से लौटकर अलाउद्दीन अपनी उसी बेगम के साथ प्रेमालाप करता रहता है कि कमरे मे एक चूहा प्रवेश करता है, जिसे देखकर बादशाह भय के मारे इधर-उधर उछलने-कूदने लगता है। इसपर बेगम हँस देती है जिसका वह कारण पूछता है। बहुत हठ करने पर स्त्री सारा कारण बता देती है जिसके फलस्वरूप बादशाह महिमा पर कुपित होकर उसका प्राणांत कर देने के लिए आदेश देता है। महिमा भागकर हम्मीर की शरण मे जाता है। अलाउद्दीन के लाख मॉगने पर भी वीर राजपूत शरणागत की रक्षा मे अंत तक डटा रहता है जिसके कारण उसपर शाही आक्रमण होता है।

अलाउद्दीन पराजित होकर भगने लगता है, उसी समय हम्मीर का भाई रनपाल उससे मिलकर दुर्ग का सारा भेद खोल देता है। तब अलाउद्दीन का द्वितीय आक्रमण होता है। हम्मीर सारे राजपूतों का संग्रह करके खुले हुए मैदान मे अंतिम संग्राम करने के लिए प्रस्ताव रखता है। भयंकर-युद्ध के पश्चात् शाही सेना पराजित होकर भागती है।

विजय की प्रसन्नता मे शाही-निशान आगे किए हुए राजपूतों की सेना दुर्ग की ओर लौटती है। रानियाँ उसको शाही सेना समझ कर जौहर कर लेती हैं। हम्मीर को जब यह समाचार मिलता है तब वह अपने पुत्र को राज्य देकर आत्म हत्या कर लेता है। इसीपर पटियाला नरेश को आशीर्वाद देते हुए ग्रन्थ समाप्त कर दिया जाता है।

ग्रन्थ की समाप्ति सं० १९०२ वि०, फाल्गुन कृष्ण, चतुर्थी, रविवार को हुई, जैसा कि निम्नलिखित दोहे से ज्ञात होता है—

"कर नभ रस अरु आतमा, सवत फागुन मास।
कृष्ण पक्ष तिथि चौथ रवि, जेहि दिन ग्रंथ प्रकास ॥४००॥"
[ह० ह०; पृ० ६१]

ग्रन्थ चार सौ तीन छन्दों तथा इकसठ पृष्ठों मे समाप्त होता है।

हम्मीर को नायक बनाकर लिखे गये ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं से 'हमीर-हठ' मे कई स्थानों मे भिन्नता है। अन्य ग्रंथों में महिमाशाह का प्रतिस्पर्धी गभरूशाह है, किन्तु इसमें उसका नाम उडियान रखा गया है। इसीप्रकार सुरजन के स्थान पर हम्मीर के भाई रणमल की कल्पना की गई है। छांड के राव रणधीर तथा अलाउद्दीन के युद्ध तक का उल्लेख नहीं है। जोधराज के प्रसंग में 'हम्मीर-रासो' की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए जिन घटनाओं की जांच की गई है, उनमें से अधिकांश 'हमीरहठ' मे भी वर्णित हैं; अतः यहाँ उनकी ऐतिहासिकता पर पुनः विचार करना अनावश्यक है।

ऐतिहासिकता

आलोचना

"हमीर-हठ" की रचना बड़ी ही सबल, प्रौढ़ तथा प्रभावोत्पादक-शैली मे हुई है। कवि ने यद्यपि शृंगार तथा नीति संबंधी अन्य ग्रन्थों की भी रचना की है, किन्तु प्रातः स्मरणीय राव हम्मीरदेव को आलंबन बनाने से "हमीर-हठ" में उसकी स्वाभाविक काव्य-प्रतिभा निखर उठी है। कवि की कीर्ति को चिरकाल तक स्थिर रखने के लिए यह एक ही ग्रंथ पर्याप्त है।

आडम्बरहीन-उक्तियों के द्वारा स्वाभाविक-उमंग की व्यंजना प्रस्फुटित करने मे चन्द्रशेखर जितने सफल हुए हैं, वैसी

सफलता इस खेव के थोड़े ही कवियों को सुलभ हो सकी है। इस वर्ग के अधिकांश कवि इसप्रकार की प्रतिभा से वंचित ही रह गए। अलाउद्दीन द्वारा भेजे हुए दूत के सामने हम्मीर की इस उक्ति मे कितनी स्थिर-प्रज्ञता झलकती है—

"चलै सेस डोलै, महीमेरु हल्लै, महारुद्र को तीसरो नैन खोलै।
चहूँ ओर तोपैं, चलैं बान छूटै, झकाझोर समसेर की मारबोलैं।
उठै रुंड भूमैं, परैं मुंड लोटैं, भरे कुंड लोहू बहे बीर डोलैं।
चले प्रान जावैं, कटैं गात सारे, टरै बात ना जौन हम्मीर बोलै॥६८॥"

[ह० ह०; पृ० १६–१७]

सूदन, मान आदि अन्य दरबारी कवियों का यह सामान्य विश्वास हो गया था कि वीर-रस के उद्रेक के लिए निरर्थक शब्द-नाद तथा व्यर्थ शब्द-जाल का प्रयोग अनिवार्य है। यही कारण है कि उनके युद्ध-वर्णनों में 'तड़ातड़ भड़ाभड़' के अतिरिक्त और कुछ नही मिलता; किन्तु चन्द्रशेखर के हमीर-हठ मे ऐसी प्रवृत्ति कही नही दिखाई देती। ऐसे स्थलों पर इस कवि ने बहुत ही सुन्दर साहित्यिक-विवेक का परिचय दिया है। दुर्ग के बाहर निकलकर हम्मीर द्वारा किए हुए भयंकर युद्ध का तो कवि ने मानों चित्र ही खींच दिया है। कहीं भी व्यर्थ का वाग्जाल नहीं और ऐसा एक भी स्थल नहीं, जहाँ पाठक को किसीप्रकार की कुरुचि हो। युद्ध-वर्णन-संबंधी यह कवित्त कितना सुन्दर है—

"गहर गराव नक थहरत भूमि मही,
गगन गरद मैं न भान सरकत हैं।
बरषत गोली बरषा में ज्यों जलद, ज्वान,
मारें बान तानत कमान मरकत है।
केते लोट पोट भए समर सचोट केते,
बाहन पै बिकल बिहाल लरकत हैं।

फाटे परे रैजा लौं करेजा टूक टूक कढ़े,
छाती छेद विसिख विसारे करकत हैं ॥३१५॥"
[ह० ह०; पृ० ४८]

ग्रन्थ का अध्ययन करने से यह भी ज्ञात होता है कि कवि प्रबन्ध-रचना की कला में भी बड़ा दक्ष है। किसी घटना का कितना विस्तार होना चाहिए, तथा किस स्थान पर कैसे छन्द का प्रयोग होना चाहिए, इस संबंध मे कोई भी त्रुटि नहीं दिखाई देती। रही प्रसंग-विधान की बात। इस विषय मे कवि ने महाराज द्वारा प्रस्तुत की हुई चित्रावली का ही अनुसरण किया है—उसके विरुद्ध न जाने के लिए वह बाध्य था। यह बात ग्रन्थ के ही दोहों से पुष्ट हो जाती है, जो इसप्रकार है—

"निकट बोलि दीन्ह्यौ हुकुम, यह हमीर हठ जौन।
छंद बंद करिकै रचौ, कथा सोहावनि तौन ॥४॥
महाराज के हुकुम तें, जेहि विधि चित्र चरित्र।
सो सेपर भाषा करी, दूषन करेहु न मित्र ॥५॥"
[ह० ह० पृ० १]

इस विषय मे उसको दोष देने वालों को कवि ने पहले से ही सचेत कर रखा है। वास्तव में प्राचीन-काल से ही प्रेम-प्रसंग को लेकर बड़े-बड़े युद्धों का वर्णन करना कवियों के लिए एक प्रकार से अनिवार्य हो गया था। इसी परम्परा के कारण 'पृथ्वीराज-रासो' में पृथ्वीराज के कई व्याह कराए गए, तथा संयोगिता-स्वयंबर को महानयुद्ध-काण्ड का कारण बतलाया गया। सारांश यह कि यह परंपरा बड़ी प्राचीन थी और ज्ञात होता है इसी का अनुसरण करते हुए, किसी ने हम्मीर-हठ की कथा में भी कल्पना का मिश्रण करके वह चित्रावली तैयार की थी जिसका पूर्ण अनुसरण कवि ने भी किया। एक रूपवती और निपुण स्त्री के साथ महिमा मंगोल के भागने

तथा हम्मीर की शरण मे जाने तथा उसके फलस्वरूप युद्ध होने की कथा ठीक उसीप्रकार से हम्मीर-संबंधी अन्य ग्रन्थों मे भी आई है। नयनचन्द सूरि द्वारा रचित "हम्मीर-महाकाव्य", जोधराज कवि द्वारा रचित "हम्मीर-रासो" तथा ग्वाल कवि द्वारा रचित "हम्मीर-हठ" में कोई भी ग्रंथ इस घटना से अछूता नहीं; किंतु संस्कृत-काव्य-ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य दोनों हिंदी-काव्यों से चन्द्रशेखर के "हमीर-हठ" में कहीं अधिक साहित्यिकविवेक मिलता है, यह निस्संकोच कहा जा सकता है।

इसी परंपरा का अनुकरण करने से अन्य दो घटनाएं भी उसीप्रकार ले ली गई है। उनमे से एक तो है, वाण द्वारा नर्तकी के वध के संबंध मे और दूसरी है अलाउद्दीन का चूहे को देखकर डरने के संबंध मे। चारो ओर से शत्रु की सेना द्वारा घिरे रहने पर नायक की निश्चिन्तत दिखाने के लिए गढ़ के भीतर नाच कराने का वर्णन भी परंपरागत चला आ रहा है। इसीप्रकार की कथा जायसी के पद्मावत में भी है।

दूसरी घटना के सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल जी ने लिखा है—

"एक त्रुटि हमीर-हठ की अवश्य खटकती है। सब अच्छे कवियों ने प्रतिनायक के प्रताप और पराक्रम की प्रशंसा द्वारा उससे भिड़ने वाले या उससे जीतने वाले नायक के प्रताप और पराक्रम की व्यंजना की है। राम का प्रतिनायक रावण कैसा था? इन्द्र, मरुत्, यम सूर्य आदि सब देवताओं से सेवा लेने वाला; पर हम्मीर-हठ मे अलाउद्दीन एक चुहिया के कोने मे दौड़ने से डर के मारे उछल भागता है और पुकार मचाता है।"*

* रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ४६५।

किन्तु शुक्ल जी ने यदि निम्नलिखित पक्तियों पर ध्यान दिया होता तो कदाचित् चन्द्रशेखर पर इसप्रकार के दोपा-रोपण का अवसर ही न प्राप्त होता। ये पंक्तियाँ ग्रन्थ के आरंभ मे ही इसप्रकार से आती है—

"महराज के हुकुम तें, जिहि बिधि चित्र चरित्र।
सो सेखर भाषा करी, दूषन करेहु न मित्र ॥४॥"

चित्र का अनुसरण करने से ही कवि ने इस घटना का संकेत मात्र कर दिया है, अन्यथा अलाउद्दीन के प्रताप का वर्णन कवि ने किस प्रकार की ओज-पूर्ण शैली मे किया है, यह नीचे के उद्धरणों से ही ज्ञात हो जायगा—

"देस दिलीपति दीनपति, दिल्ली तखत न सीन।
दूजो सूरज सो तपै, साह अलाउद्दीन ॥८॥
थर थर कंपै मेदिनी, रविरथ झंपैधूरि।
साह अलाउद्दीन जब, सहज चलत कछु दूरि ॥६॥
असी लक्ख दलबल सजे, जिहि दिसि देखत बंक।
तिहि दिसि कोप्यो काल जनु, होत राव सब रंक ॥१०॥"
[ह० ह०; पृ० १-२]

कवि की उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा का एक प्रकार से और परिचय मिलता है। वह केवल वीर-रस में ही नहीं, प्रत्युत अन्य रसों की उच्चश्रेणी की कविता करने मे समान रूप से सफल हुआ। "रसिक-विनोद" "नखशिख" आदि को यदि छोड़ भी दिया जाय, फिर भी हमीर-हठ मे ही शृंगार रसात्मक-स्थलों को पढ़कर ऐसा ज्ञात होता है मानो उस रस के किसी सिद्धहस्त कवि की सुन्दरतम रचना पढ़ रहे हैं।

इसीप्रकार युद्ध के अवसर पर रौद्र, भयानक तथा वीभत्स और युद्ध के उपरांत शांतरस के उद्रेक में भी कवि पूर्ण रूप

से सफल हुआ है। इसमें हास्य का अभाव है। केवल एक स्थान पर चूहे से अलाउद्दीन को भयभीत चित्रित करने के ही प्रसंग मे हास्यरस आया है; किन्तु वहाँ पर रसाभास ही मानना पड़ेगा। वीर-रस-प्रधान-काव्य मे हास्य का अभाव खटकता भी नही।

वीर-रसात्मक स्थलों पर तो कवि को आश्चर्यजनक सफलता मिली है। "हमीर-हठ" के सम्पादक काव्य-रसिक "रत्नाकर" जी, इनकी कविता पर मुग्ध होकर लिखते है—

"इस ग्रंथ की कविता बड़ी मनोहर और उमंगवर्द्धिनी है। ओज, माधुर्य और प्रसाद, तीनों गुण अपने-अपने स्थान पर सुशोभित है।" कुछ स्थलो पर तो एक-एक शब्द इतने प्रभावोत्पादक है कि पढ़कर रोमांच हो उठता है। दूत के द्वारा महिमा मंगोल को वापस देने के लिए अलाउद्दीन के संदेश का उत्तर हम्मीर किस प्रकार से देता है—

"धड़ नच्चै लोहू बहै, परि बोलै सिर बोल।
कटि कटि तन रन में परे, तौ नहिं देहुँ मंगोल ॥६५॥
सिंह गमन सुपुरुस बचन, कदलि फलै इकबार।
तिरिया तेल हमीरहठ, चढ़ै न दूजी बार ॥

[ह० ह०; पृ० १२]

रण-प्रयाण के समय अपने पुत्र को हम्मीर की माता किन शब्दों में आशीर्वाद देती है—

"तीरां ऊपर तीर सहि, सेलां ऊपर सेल।
खग्गां ऊपरि खग्ग सहि, इन सन्मुख सुतखेल ॥२७९॥
भुज मुख छाती सामुहैं, घावाँ ऊपर घाव।
पलक न झंपै पूत की, चढ़ै चौगुनौ चाव ॥२८०॥

[ह० ह०; पृ० ४३]

का स्मरण होता है, नाटकीय तथा आवेशपूर्ण कथोपकथन को पढ़कर केशव का स्मरण होता है, सबल तथा ओजपूर्ण उक्तियों के दोहों को पढ़कर "वीर-सतसई" के रचयिता वियोगीहरि का स्मरण होता है, उनकी प्रबंध-रचना की सरलता देखकर लाल का स्मरण होता है तथा उनके छप्पयों को पढ़कर इस छन्द के आदि निर्माता चन्दवरदाई का स्मरण हो उठता है।

भाषा

चन्द्रशेखर की भाषा स्वच्छ और परिष्कृत-ब्रजभाषा है। अधिकांश-स्थलों पर उसकी कोमलता वीररस के सम्यक् परिपाक में बाधक हो गई है, यही कारण है कि युद्ध-वर्णन में इस कवि को उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी वीररस के अन्य-प्रसंगों में। उदाहरण के लिए हम्मीर के प्रति उसकी माता के ये वचन उद्धृत किये जा सकते हैं:—

तीरां ऊपर तीर सहि, सेलां ऊपर सेल।
खग्गां ऊपर खग्ग सहि, रन सन्मुख सुत खेल ॥
भुज मुख छाती सामुहें, घावाँ ऊपर घाव।
पलक न झंपै पूत की, चढै चौगुनौ चाव ॥
[हम्मीर-हठ पृ० ४३]

युद्ध-वर्णन के कुछ कवित्तों में भी भाषा बड़ी भावानुकूल बन गई है —

गहर गराव नक थहरत भूमि मही,
गगन गरद्द मैं न भान सरकत हैं।
बरषत गोली बरषा मैं ज्यों जलद ज्वान,
मारैं बान तानत कमान मरकत हैं।

केते लोट पोट भये समर सचोट केते,
वाहन पै विकल बिहाल लरकत है।
फाटे फरे रेजा लों कलेजा टूक टूक कढ़े,
छाती छेद बिसिषि बिसारे करकत है॥
[हम्मीर-हठ, पृ० ४८]

व्रजभाषा के साहित्यिक रूपों के साथ साथ साधारण बोलचाल के रूप भी इनकी भाषा में स्थल स्थल पर प्रयुक्त है। उदाहरण के लिए एक कवित्त का यह चरण देखा जा सकता है:—

परयौ मीर पांछै धरयौ दंड डोला।
दिये जात नाहीं कही पास तेरे।

इसमें "कही पास तेरे" ग्रमीण प्रयोग है।

समग्ररूप से विचार करने पर यह स्वीकार करना पड़ता है कि कतिपय दोषों के रहते हुए भी 'हम्मीरहठ' एक उच्च कोटि का काव्य-ग्रन्थ है।

हम्मीर हठ

भुजंगप्रयात छंद

दुहुँ ओर सों घोर यों तोप बाजे। प्रलैकाल के से मनो मेघ गाजैं।
हलै मेरु डोलै मही सेस कंपै। उठी धूमधारा जुजै भानु झंपै।
भई बान बंदूक की मार भारी। मनो वारिधारा महा मेघबारी।
उड़े सोर प्याले निराले चमंके। घटाज.ट मैं दामिनी सो दमंके।
लगैं कोट मैं आनि कै जोर गोला। न पाषान टूटे, कहूँ एक तोला।
जहीं साह की फौज मैं आनि लागै। उड़ै केतिको केतिकौ दूर भागै।
लगैं बान गोली गिरे सूर ऐसे। गिरह खात पंछी गिरहबाज जैसे।
परी मार ऐसी दुहू ओर भारी। परे साह की .फौज मैं खग्गधारी।
फटे टोप कुंडो तनं त्रान फूटे। कटे अंगअंग नर प्रान छूटे।
उठावंत एकै करें एक जंगं। लुरे एक लोटै परे अंग भंगं।

दोहा

होत जुद्ध अति क्रुद्ध ह्वै, लरत सुभट रनवीर।
तँह निसंक चहुआनपति, देखत नाच हमीर।
बाजति ताल मृदंग धुनि, नाचति नटी नवीन।
लसत वीर हम्मीर तहँ, राग-रंग- रस लीन।

कबित्त

रुचित रुचिर मनि मन्दिर मैं राच्यों रंग,
नाचति सुगध बार अंगना निहारी है।
मजु मैनकासी मंजुघोपासी सरस भरी,
रंभासी अनूप रूप भूपन सँवारी है।
तालगति तानैं लेति सात सुर तीन ग्राम,
भावभरी करति अलाप सुकुमारी है।

पूरें सम पायल करति झनकारी नाच,
देखत निसंक या हमीर हठधारी है।

सवैया

होति दुहूं दिसि मार भयंकर तोपनि लोप चहैं करि डीनों।
नाचति बारबधू गढ़ पैं दल बीच कुलाहल भूतन कीनो।
ताल मृदंगन की धुनि होति सुनें उतसाह करें मन हीनो।
बीर हमीर हिये हरषै लखि मार भयो सुलतान मलीनो।

छप्पय

तीनि ग्राम सुर सात होत आलाप राग षट।
लाग डाँट सम बिसम तान उनचास कोटि बट।
नचत बार अंगना बजत मिरदंग ताल तहँ।
लख्यो कोट ऊपर निहार चहुआन राज जहँ।

बैठ्यो हमीर रनधीर अति, निडर संक मानै न हिय।
आलाउदीन अन्तक सरिस, पातसाह मन कोप किय।

चढ़ै नैन भृकुटी कराल मुख लाल रंग करि।
दाबि दंत फरकंत अधर .बलवंत क्रोध भरि।
करौं छार छन मैं पहार धरि कोट उलट्टौं।
दुवन देस दलमलौं दलंद देसनि दहपट्टौं।

मारौं हमीर पल मैं पकरि, हक न यह मेरी करै।
आलाउदीन जानै न मोहि, गढ गंवार गाटौ धरै।

दोहा

पातसाह अंत क्रोध करि, दीन्यो हुकुम जरूर।
मुगलबेग उडियान को, हाजिर करौ हुजूर।

हुकुम पाइ उडियान को, हाजिर कियो तुरन्त ।
करि सलाम ठाढो भयो, सूर निकट सावंत ।
साह कह्यो उडियान सों, नाचत नटी निहारि ।
ओट न एकौ देखिये, चोट तीर की मारि ।

छप्पय

करि सलाम उडियान लई कर में कमान गहि ।
प्रथम करी टंकार फेरि गोसा संवारि तहि ।
लियो तीर तूनीर माहि तीछन अति जोई ।
रोदे फोक जमाइ चाप सज्जित करि जोई ।

तान्यो कसीस भरि कान लगि, बान बीच छाती हनो ।
नाचंत नारि भूमै परी, चौकि चमकि चपला मनो ।

कवित्त

गुनिन गहीली गति लेति गरबीली अंग,
अंग दरसावति उलटि पट ओट तें ।
काम अबलासी कला कोटिनि करति,
चंचला सी चित्त चोरति चलति लचि ओटतें ।
लाग्यो बान छाती मैं अचानक विषम दग,
कौधा सो चमकि चक चौधा लग्यो चोट तें ।
हेम की छुरी सी मंजु मोतिन जरी सी,
किन्नरी सी टूटि भूमि मैं परीसी परी कोट तें ।

दोहा

तरफराति तरुनी गिरी, सर मार्‍यौ उडियान ।
हरषि साह साबस कही, चकित भयो चहुँआन ।

चौपाई

हरषे पातसाह मन माही । कियो हमीर सोच लखि ताहीं ।
प्रथम मंत्र मान्यो कछु नाहीं । हठ करि मंड्यो जंग वृथाहीं ।
भयो उदास संक कछु आनी । ऐसी बात मीर जब जानी ।
आयो तहाँ तुरत मंगोल । बोल्यो हाथ जोरि मृदु बोल ।

मीर उवाच

महाराज राजन सिरताज । भये उदास आप केहि काज ।
तुरत लेत बदलो मैं देखौ । मरो अलाउद्दीनहि लेखौ ।
कह्यो मीर को सुनि मनभायो । धीरज बहुरि भूप मन आयो ।
दिवस दूसरे सोई रंग । लाग्यो होन दुहूँ दिसि जंग ।
पुनि हमीर गढ़ ऊपर आयो । सुरपति कैसो साज सजायो ।
अंग अंग प्रति भूषन साजै । निरखत कोटि काम छबि लाजै ।
उड़त चवँर चारौ दिसि ऐसे । सरद घटा रवि ऊपर जैसे ।
भूप भवन बैठ्यो दरबार । दियो नाच को हुकुम उदार ।
बहुरि नटी जब निरतन लागी । देखन लाग्यो भूप अनुरागी ।
देखत साह कोप मन कीन्ह्यो । कोट कटा करिबे मन दीन्ह्यो ।
ताही समय तुरत उठि धायो । लिये कमान तीर चलि आयो ।
हाजिर भयो तहाँ पुनि मीर । कहे बचन मंगोल गंभीर ।

मीर उवाच

कहो आप उडियान संघारौ । जासो जाइ सोच मिटि सारो ।
हुकुम होइ साहैं तकि मारौ । छन में छत्र-भंग करि डारौ ।

हम्मीर उवाच दोहा

साह न मारत काठ को, जो खेलत सतरंज ।
उचित न यह जो डारिये, पातसाह प्रभु-भंज ।

सोरठा

छोड़ि साह के प्रान, मारि और मेरो हुकुम ।
महिमा गही कमान, सुनि आयसु चहुआन की ।

दोहा

हाथ जोरि हम्मीर कँह, महिमा गही कमान ।
अर्धचन्द सर साधि कै, तानी कान प्रमान ।
बज्र सरिस छोरयो विषम, मीर तीर परचंड ।
पातसाह सिरछत्र को, दंड कियो द्वै खंड ।
एक तीर सों काटि कै, छत्र दियो महि डारि ।
तब हमीर हरहुर हँसे, सनमुख मीर निहारि ।

कवित्त

खंड ह्वै टुटूक परयो लूक सो लपकि छत्र,
हूकसी समानी हियें साह सोक सों भरे ।
जोहत जके से चौकि चलत थके से सबै,
सुकुर मनावत अमीर अतिहीं डरे ।
आनि धरयो आगें बान सहित उठाइ हेम,
हीरन रचित गजमुकता लसे जरे ।
मानो आसमान तें नछत्रन समेत परयो,
भूमि मैं कलाधर सपूरन कला धरे ।
छत्र के परत सबही की छबि छीन भई,
दीन भयो बदन अलाउदीन साह को ।
पीर उठी उर मै अचानक अमीरन के,
धीरज धरै को धार धूजत सिपाह को ।
सहमि गये से सबै सोचत ससंक कहै,
खैर करी खालिक खुदाय सदराह को ।

भयो थ्यो दिल्ली को पति देखत पनाह आज,
दाह मिटि गयो थ्यो हमीर नरनाह को।

दोहा

पीर अमीरन के उठी, मीर तज्यो सुलतान।
तुरत मंगायो आप ढिग, छत्र सहित रिपुबान।
सर में बाँच्यो साह तब, गह्यो बली कर अत्र।
तिय बदले तेरो कियो, मीर भंग सिर छत्र।
महिमाँ मीर मंगोल मैं, कर बर गही कमान।
है दुरलभ अब आप को, जियत राखिबो प्रान।

चौपाई

सर में लिख्यो मीर को जौन। बाँच्यो पातसाह तब तौन।
भयो सपेद बदन दृग झंपे। डोलत दंत गात सब कंपे।
करत विचार और सब ठाढे। खर भर परी सोच मन गाढ़े।
पीर मनाइ कहत कर जोरी। बच्यो साह साहब गति तोरी।
साह अलाउद्दीन सुलतान। करत बिचार छोड़ि अभिमान।
जुद्ध होत बीते दिन एते। कटे कटक कहि जात न जेते।
अगनित सूर बीर सावंत। गज तुरंग और सुतुर अनन्त।
पैदल परे भूमि में लोटैं। लगीं बान गोली की चोटैं।
तुपक तीर तोपनि की मार। बरषै मनो मेघ जलधार।
गढ गाढ़ो छूटब कठिनाई। नर पाथर की परी लराई।

दोहा

कोट ओट गढ़पति लरै, अगंन आवत घाव।
दह पट्टन दल दूरि तें, चढ़त चौगुनो चाव।
कटा होत दीसत नहीं, मारे सकत न छूटि।
कोट कटक की मार में, गयो सकल दल खूटि।

सवैया

मौन भये मन ही मन मैं, सुलतान विचारत बात अनेकौ।
जो लरिये मरिये इत तौ, गढ़ को चढ़ि पैयत घात न एकौ।
नाहक जात मरे सिगरे भट, आवत हाथ लखात न एकौ।
लौटि चलो अपने घर कौं, जो भई सो भई कहि जात न एकौ।
दीरघ सोच दिलीपति के दल, छीन भयो बलहीन मलीनो।
मान गई अपमान अंगै निज, प्रान बचे सोइ उद्यम कीनो।
हार लई अपने सिर मानि, निदान यहै करि आयस दीनो।
लै अपनो दल संग सबै उठि, भाजि चल्यो सहसा भयभीनो।

कवित्त

मारे गढ चक्कवै हमीर चहुआन चक्र,
डारे गोल गरद मिलाइ मद मानी के।
लोटैं रेत खेत एकै पोटैं लेत देत एकै,
चोटनि समेत लड़े लाड़िले पठानी के।
हारे डरमारे राह बसन हथ्यार डारे,
बाहन संभारै कौन भरे परेसानी के।
भाजे जात दिल्ली के अलाउदीनवारे दल,
जैसे मीन जाल तें परत दिसि पानी के।
भागे मीरजादे पीरजादे औ अमीरजादे,
भागे खानजादे प्रान मरत बचाइ कै।
भाजि गजबाजी रथ 'पथ न संभारैं पारैं',
गोलन पै गोल सूर सहमि सकाइ कै।
भाग्यो सुलतान जान बचत न आन बेगि,
बलित बितुंड पैं बिराजि बिलखाइ कै।
जैसें लगें जंगल मैं ग्रीषम की आगि चलै,
भागि मृग महिप बराह बिललाइ कै।

भाजे जात रंक से ससंकित अमीर परें,
भीरन पैं भीर धरें धीर न रहैं थिरे।
जंगल की जार मैं पहार मैं पराइ परे,
एकै बारि धार में डछार मारि कै परे।
कंपित करी पैं साह साहब अलाउदीन,
दीन दिल बदन मलीन मन मैं खिरे।
प्रबल प्रचंड पौन पच्छिमी हमीर मारे,
बद्दल समान मुगल-दल उड़े फिरे।

दोहा

भग्यो प्रबल दल संग लै, दिल्ली को सुलतान।
हरण्यो राय हमीर उर, गढ़ पर बजे निसान।
आइ अरज मंत्रिन करी, सुनिए राय हमीर।
हिन्दु धनी हद आपकी, पत राखी रघुबीर।
गयो साह दिसि आपनी, रह्यो हमारो खेत।
ऐसें सुजस सुपंथ मैं, ईश्वर सब को देत।

परिशिष्ट १

टिप्पणियां

'चन्द बरदाई'

'रेवातट समयो' के अन्तर्गत जो संकलन इस पुस्तक में दिया गया है, उसके पूर्व के भी कतिपय पदों को यहाँ दिया जाता है। इससे इस संकलन को भलीभाँति समझने में विशेष सहायता मिलेगी :—

दोहा

देवगिरी जित्ते सुभट, आयौ चावंड राव।
जय जय नृप कीरति सकल, कहि कव्विजन आव॥

शब्दार्थ—जित्ते=विजय प्राप्त की। सकल=संसार में। कव्विजन=कवियों ने।

अर्थ—सामन्त आदि ने देवगिरी पर विजय प्राप्त की, संसार में राजा की कीर्ति फैली और कवियों ने उसकी जय जयकार की। उसके बाद एक दिन चावंडराव राजा के सामने आया।

मिलन राज पृथ्वीराज सौं, कहि राव चाँवंड।
रेवातट जो मन करौ, तो वन अपुव्व गज झुंड॥

शब्दार्थ—जो=जाने का। अपुव्व=अपूर्व।

अर्थ—राजा से मिलकर चावंडराव ने कहा—रेवातट को जाने [चलने] का मन में विचार किया जाय, यहाँ वन में हाथियों का अपूर्व झुंड है।

कवित्त

सुनहु राज पृथिराज विपिन रवनिक वरि जुथ्थ।
रेवातट सुन्दर समूह बीरराज हत चवन रथ॥

आखेटक आचंभ पंथ पावर रुकि खिल्लौ।
सिधवट्ट दिल्लो समूह राज खिल्लत दोइ चल्लौ॥
जल जूह कूह कस्तूर मृग पह पंखि अरु पवत खह।
चंहुवान मान देखे नृपत्ति कोहिन बनत दखिखन रह॥

शब्दार्थ—रवनिक = रमणीय। करि = हाथी। हन्त = मारने की। चवन = चाहने के। पावर = पाँवर। खिल्लौ = आगे बढ़ना। सिधवट्ट = सामुद्रिक देश। खिल्लत = खेलते हुए। जूह कूह = झुंड की चहचहाहट। पह = पास में ही। खह = खूब, बहुत से। दखिखन = दक्ष।

अर्थ—हे राजन! वह बन अति रमणीय है, वहाँ हाथियों का समूह है। उसे मारने की इच्छा से, सुन्दर वीरों के समूह के साथ अनोखे आखेट के लिए, रेवातट के रास्ते पर पाँवर प्राणियों को रोकते हुए, आगे बढ़ना चाहिए। हे दिल्लीश! सामुद्रिक देश के मुहाने (सीमा) तक आप दोनों राजा (पृथ्वीराज और रावल समर विक्रम) शिकार खेलते हुए चलिए। वहाँ पक्षियों के कलरव तथा कस्तूरी मृग के साथ ही कन्दरायें हैं। वहाँ के राजा लोग बड़े दक्ष हैं, बचन द्वारा उनकी प्रशंसा नहीं की जा सकती, वे लोग आपको बड़े मान सहित देखेंगे।

दोहा

एक ताप पहु पंग कौ, अरु रवनीक जुथान।
चांवड राव बचन्न सुनि, चढ़ि चल्यौ चहुवान॥

शब्दार्थ—ताप = डर। पंग कौ = जयचन्द को।

अर्थ—वीरचंद कमध्वज से देवगिरी में विजय करने के कारण जयचन्द से विरोध हुआ, उसका डर और इधर

रमणीय स्थान देखने की इच्छा, ऐसी द्विविधा होते हुए भी पृथ्वीराज, चावंडराव के बचन सुनकर, घोड़े पर चढ़कर चलता बना।

कवित्त

चढ़त राज प्रथिराज, बीर अगिनेव दिसा कसि।
सब्ब भूमि नृप नृपति, चरन चहुआन लगि धसि ॥
मिल्यौ भान बिस्तरी, मिल्यौ खल गढ़ी नृप।
मिल्यौ नंदिपुर राव, मिल्यौ रेवा नरिंद अप ॥
बन जूथ मृग सिंवह अरु गज, नृप आखेटक खिल्लइ।
लाहौर थान सुरतान तप, बर कग्गद लिखि मिल्लइ ॥

शब्दार्थ—अगिनेव = आग्नेय। कसि = कसकर, तैयार होकर। धसि = झुक झुककर। बिस्तरी = राज्य विस्तार करने वाला। तप = डर।

अर्थ—जब पृथ्वीराज ने शिकार के लिए चढ़ाई की तो उसके साथी सामन्तो ने भी तैयार होकर उसी के साथ दिल्ली से आग्नेय दिशा की ओर प्रस्थान किया। उस समय जनता और राजा लोग आ आकर चौहान (पृथ्वीराज) के चरण छूने लगे। राज्य-विस्तार करने वाला भानु नामक राजा, खट्टूल गढ़ी का राजा, नेदीपुर का राव और स्वयं रेवानरेश आकर पृथ्वीराज से मिले। राजा मृग, सिह और हाथियों के समूह का भी शिकार करने लगा। उधर लाहौर स्थान पर गौरीशाह के आंतक [ताप] की सूचना सम्बन्धी [चन्द पुण्डीर द्वारा लिखित] पत्र मिला।

दोहा

खाँ ततार मारुफ खाँ, लिए पान कर साहि।
घर चहुआनी उप्पेरे, बज्जा बजन बाहि ॥

शब्दार्थ—पान = बीड़ा । साहि = ग्रहण किया, पकड़ा ।

अर्थ—उसमें लिखा था कि तत्तार खाँ और मारुफ खाँ ने हाथ में बीड़ा ग्रहण किया है और चौहान की भूमि पर रण-वाद्य बजवाना निश्चय किया है ।

साटक

श्रोतं भूरय गोरियं वर भरं, बजाइ सज्जाइ ने ।
सा सेना चतुरंग बंधि उललं, तत्तार मारुफयं ॥
तुम्फ्मी सार स उपराव सरसी, पल्लानयं खानयं ।
एकं जीव साहाब साहि ननयं, वीरं यं सयं सेनयं ॥

शब्दार्थ—श्रोतं = सुना । भरं = (भट) योद्धा । उललं = अचानक । तुम्फ्मी = तू भी । सार = लोह, तलवार । सरसी = सुन्दर । पल्लानयं = चढ़ाई की है या खदेड़ देने के लिए । यंसयं = अंश से ।

अर्थ—[पत्र में लिखा था] हे राजा ! (पृथ्वीराज) सुनिये, गोरीशाह के श्रेष्ठ-योद्धा बाजे बजवाकर युद्धार्थ सजे हैं, तथा चतुरंगिणी सेना को पंक्ति बद्धकर अचानक तत्तार खाँ और मारुफ खाँ आगे बढ़े हैं । हे राजन् ! (पृथ्वीराज) आप भी सुन्दर लोहे को ऊपर उठाइए, क्योंकि मुसलमानों ने चढ़ाई की है या क्योंकि इन म्लेच्छों का पलायन करना है (या भगाना है) [आगे पत्र में यह भी लिखा था] उन सैनिकों और शाहबुद्दीन में एकता है और उनकी सेना वीरतायुक्त है ।

दोहा

अहि बेली फल हथ्थ ले, तो ऊपर तत्तार ।
मेच्छ ममूरति सत्ति कैं, बंच कुरानी बार ॥

शव्दार्थ—अहिवेली = नाग फणी (एक शस्त्र)। सत्ति कै = सत्य कही। वार = बातें, आयतें।

अर्थ—कुरान की आयतों को मुसलमान मसुरनिखाँ ने पढ़कर सुनाई और सच्चा बतलाई, इसपर तत्तार खाँ ने तुम पर नाग फणी (एक शस्त्र) उठाई है।

खट मुर कोस मुकाम करि, चढ़ि चल्या चौहान।
चंद वीर पुंडीर को, कग्गद करि परिवान॥

शव्दार्थ—खट = छः। मुर = मुड़कर। परिवान = प्रामाणिक

अर्थ—वीर चंद पुंडोर के उस पत्र को प्रामाणिक समझ, जहाँ शिकार खेल रहा था, वहाँ से मुड़कर राजा ने छः कोस पर मुकाम किया और वहाँ से [घोड़े पर] चढ़कर चला।

गोरी बे दल सम्मुहों, गो पंजाब प्रमान।
पुव्व रु पच्छिम दुहँ दिसा, मिलि चुहान सुरतान॥

शव्दार्थ—बें = के। सम्मुहों = सम्मुख, सामने।

अर्थ—पंजाब की ओर गोरीशाह की सेना के सामने वह गया और पूर्व तथा पश्चिम दिशा से चौहान और शाहबुद्दीन का आगे जाकर इस प्रकार सामना हुआ।

यहाँ से पुस्तक में संकलित भाग का अर्थ आरम्भ होता है। अतएव यहाँ पदों को न देकर उनकी संख्या दी जाती है। मूल पदों को संकलन में देखने की आवश्यकता है।

१ रेवातट ······ ·· ·सुरतान।

शव्दार्थ—आवाज = कोलाहल।

अर्थ—[शिकार को जाते समय पीछे की (राजधानी की) रक्षा के लिए चंद पुंडीर नियुक्त किया गया था, उसके पत्र

द्वारा] रेवातट पर ही पृथ्वीराज को ज्ञात हुआ कि श्रेष्ठ गोरी-शाह देश में भयंकर कोलाहल मचाता हुआ, [युद्ध के लिए] सज्जित हो रहा है।

२ दूत ·· ····· ····· ··मिल्लि ।

शब्दार्थ—संभलि=सुनकर । खिल्लि=खेलकर । जूह=समूह । पद्धर=समतल ।

अर्थ—दूतों के बचन सुनकर, श्रेष्ठ आखेट खेलने के पश्चात् रेवाटत की समतल भूमि पर मृग-जाति में श्रेष्ठ सिंह-स्वरूप योद्धा-गण एकत्र हुए ।

३ मिले ·· ·· ·· ··कलह ।

शब्दार्थ—भवन=पुरुषार्थ की । सहै=के स्थान पर । भौरि=आपत्ति । अप्पु मति=अपनी बुद्धि ।

अर्थ—सब सामंत एकत्र हुए तथा उन्होंने राजा से मंत्रणा की । उन्होंने यह भी कहा कि गोरी की चतुरंगिणी सेना दसगुनी है तथा वह सुसज्जित है । [यदि स उप्पर पाठ मान लिया जाय तो इस पंक्ति का अर्थ यह होगा कि शाह की सेना दस गुनी है तथा इसके पश्चात् (इसके ऊपर) चतुरंगिणी ढंग से सजी है ।] अब पुरुषार्थमय मंत्रणा से न चूकना चाहिए और केवल श्रेष्ठ मत पर ही विचार करना चाहिए । [भावार्थ यह है कि इसप्रकार की श्रेष्ठ मंत्रणा करनी चाहिए जिससे विजय ध्रुव हो ।] अपना बल घट गया है अतएव पिछली भूलों पर विचार करना चाहिए । शरीर के बदले मोक्ष और युक्ति के द्वारा ही गोरी को बाँधने का उपक्रम करना चाहिए । [भावार्थ यह है कि वीरतापूर्वक प्राण देकर तथा युक्ति-पूर्वक नीति से कामलेकर गोरी को परास्त करना

चाहिए।] हे पृथ्वीराज! युद्ध में अपने ऊपर आपत्ति आई है अतएव स्वय अपनी बुद्धि से सोचकर शत्रुता करना आवश्यक है।

४ सुनिय·····जानिबौ।

शब्दार्थ—मुसक्यौ=मुस्कराया। कसक्यो=कसा। भारत्थी =भारतीय सस्कृति का। अंच=चिनगारी। उड्डत=झाड़ते समय। मुक्खाँ लग्यौ=सामना किया। वानिबौ=टेक रखना, पट्टन्तर=परीक्षा-काल।

अर्थ—पृथ्वीराज की यह बात सुनकर पज्जूनराय और प्रसंगराय मुस्कराये, देवराव बागरी ने भी संकेत करके पॉव को कुछ खींचा और बोला—भारतीय-संस्कृति का यह आदर्श-वाक्य है कि शरीर के बदले में मुक्ति अच्छी है। हमारे लोहे द्वारा लोहे की चिनगारी भड़कते समय शत्रु को वृक्ष के पत्तों के समान डोलने लग जाना चाहिए। सुलतान को दबाते हुए हम लोगो ने सदा सामना किया है इसलिये दिल्लीश्वर की सेना को अपनी टेक रखनी चाहिए। समूह मे भिड़ते हुए धैर्यवान सामन्तों का अब परीक्षा-काल समझना चाहिए।

५ कहे·····तरवर किनौ।

शब्दार्थ—तार=ताड़ना। भीर=आपत्ति। परिहारिय= नष्ट की। विरास=स्थान विशेष। विम्भर=विफरे हुए। कित्ती गनौ=तुच्छ है।

अर्थ—तब पज्जूनराय बोला—मैंने ताड़ना [भय दिखला] करके तत्तारी को निकाला, दक्खिण या दस देश के निवासी यादवों पर आपत्ति ढाई। [अथवा उन पर आई हुई आपत्ति को मिटाया]। मैंने ही चांवडराय सहित युद्ध कर जांगलू के

राजा को बाँधा और ब्रह्म क्षत्रिय [संभव है चालुक्य वंश के लिए कहा हो] बिरास स्थान पर बड़गूजर [एक जाति विशेष] वीरों की भी वही दशा की। क्रोधित, दलनकर्त्ता चौहान के सामन्तों की सेना के सामने गोरीशाह का दल क्या है? भीम के समक्ष कौरव दल वृक्ष की जड़ों के समान तुच्छ है।

६. कहै ····· लोकपति।

शब्दार्थ—राज मत=राज मंत्रणा। गत=घेरा। दिव लोकपति=इन्द्र।

अर्थ—जैत्र प्रमार ने कहा, हे पृथ्वीराज! राजमंत्रणा सुनिये! गोरी शाह युद्ध करना चाहता है, इसलिए लाहौर दुर्ग के घेरे को ग्रहण कर लेना चाहिए। अतः अपनी सब सेना को आप एकत्र कीजिए और इष्ट मित्र तथा सम्बन्धियों को पत्र लिख दीजिए। सामन्त और स्वामी की यही मंत्रणा होनी चाहिए और भी जो मंत्र आपको जंचे उसे कार्यान्वित करें। क्योंकि ऐसी ही मंत्रणा से धन और धर्म दोनों की रक्षा होती है और यश के योग्य कहलाकर ऐसी मंत्रणा पर चलने वाले पुरुषों की ही दीप्ति इन्द्र के समान देदीप्यमान होती है।

७ वह वह····· ···करन कौ।

शब्दार्थ—वह वह कहि=वाह/वाह कर। हुक्कारि=हुँकार कर। सा पुरिष=सत्य पुरुष। झुमझै=लड़ते है। अलमझै=उलझ कर फँस कर।

अर्थ—वाह वाह कहता हुआ रघुवंशी रामराय बड़गुज्जर हुंकार करके बोल उठा। सब सामन्त गण सुनिये, शाह के आने मात्र से ही शक्ति का पलायन हो रहा है [सब का बल

टूट रहा है] यह ठीक नही है। गजराज, सिह और सत्पुरुष या वीर पुरुष जहाँ रुँध जाते है [रोके जाते है] वही पर लड़ पड़ते हैं। वे कठिन समय को नहीं देखते, लज्जा के पंक मे फँसकर वे नहीं हटते। योद्धागण अन्य मंत्रणा जानते ही नहीं, वे तो केवल मरने की ही मंत्रणा ग्रहण करते है। मैने ही सुलतान को पहले सेना सहित बाँध लिया था और यदि पुन. नही बाधूँ तो मै करण का पुत्र नहीं।

८ रे·· · लत्र।

शब्दार्थ—राज लै=राजाओ के लिए। आप=अपने। भग्गै=भाग्यार्थ। धर खिल्लौ=रुंड स्वरूप हो धड़ पर खेलेंगे क्रन=कर्ण।

अर्थ—तब जैत्र प्रमार बोला, हे गँवार गुर्जर, राजाओं के लिए यह मंत्रणा ठीक नहीं होती। व्यर्थ हम लोगो के मर जाने से राजा निर्बल हो जाता है, इससे कौन सा ग्रह-कार्य सिद्ध हो सकता है? ऐसा करने से तो चौहान के हम सब सेवक देश के भाग्यार्थ केवल रुंडरूप होकर खेलेगे [अर्थात् वीर गति को प्राप्त होगे] बाद मे स्वामी के संग्राम मे अकेला रहने पर कौन काम कर पावेंगे? फिर तो राजा के पास शेष पंडित, भट्ट, कवि और गायक, जिनका कि वह ग्राहक है, रह जायेंगे, क्या वे उसकी आड़ हो सकते है? [उसकी रक्षा कर सकते है?] वे तो उसी प्रकार है जैसे हाथी के शिर की शोभा के लिए भँवर जिनको वह अपने कर्णों को शनैः शनैः हिलाकर उड़ाता हुआ शोभा पाता है. अर्थात् भँवर केवल मद सुगंध के हेतु ही हाथी के पास आते हैं वे उसकी विपत्ति मे सहायक नहीं हो सकते।

९ परी······परवान।

शब्दार्थ - परी पोर = भूल हुई। [किन्तु यदि 'परीषो' पाठ है तो उसका अर्थ होगा 'परीक्षा करो'] तन = शरीर। [किंतु यदि 'रतन' पाठ है तो उसका अर्थ होगा 'लीन होना'] जंग = युद्ध। परवान = निश्चय

अर्थ—रामराय बड़गुज्जर बोला पहले के युद्धों में मुझसे भूल हुई है। [पाठांतर के अनुसार अर्थ होगा—सुलतान के साथ आगे युद्ध होने वाला ही है, मेरे युद्ध में रत होने की परीक्षा कर लेना] अब यह मंत्रणा विचार लीजिए कि लड़ना मरना निश्चय है।

१० गजन · · ·सुरतान

शब्दार्थ—परवान = पंख युक्त। पखखर खण्डरें = पाखरों के खण्ड खण्ड।

अर्थ—इस प्रकार पृथ्वीराज के साथियों के गर्जना करते ही सम्राट चौहान के अश्वों के मानो पंख लगे हों, ऐसे दिखलाई पड़े और उनके पाखरों की कड़ियों के खण्ड खण्ड बजने लगे।

११ ग्यारह · · · परवान।

इस दोहे में कंठ शोभा छन्द का लक्षण दिया है। इस छंद में ग्यारह अक्षर होते हैं तथा पाँच, छः पर यति होती है और लघु गुरु समान होते हैं।

१२. फिरे हैं · · · पवन्नमनं।

अर्थ—जीन कसे हुए घोड़े इधर उधर घूम रहे हैं। यह ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो उनमें चिड़ियों के पंख लगा दिये गये हैं। उसकी उपमा का चन्द कवि इस प्रकार वर्णन करता है, मानो पृथ्वी पर सूर्य के सारथी अरुण ने रथ को सजाया

है। उन घोड़ों की छाती सुन्दर और पुष्ट दिखलाई देती थी, और वे जल से पूरित खाइयों को लाँघ जाते थे। वे अकाश में उड़कर चारों पैरों पर खड़े हो जाते थे। उनके खुर की आवाज निरंतर सुन पड़ती थी। उनके आगे सोने की हमेले बँधी हुई थीं। उनके शिर के बाल चामर के समान थे. हवा चलने से उनमें शब्द हो रहा था। इसकी उपमा कवि इस प्रकार देता है कि तारों के बीच ग्रह एकत्र हो गये है या शनिश्चर की गोद में सूर्य उदय हो रहा है। उनके श्वेत वस्त्र पीछे की ओर उड़ते हुए शोभायमान है, मानो जार को देखकर कुलटा स्त्री उसी की ओर बढ़ती जा रही है। घोड़ों के मुख की शोभा घूँघट ढकने सी दिखाई दे रही थी, मानो कोई कुल-बधू घूँघट निकाल कर चल रही है। उनकी अनेक उपमाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता। यदि बाग न हो तो वायु और मन भी उनकी बराबरी [दौड़ने मे] नहीं कर सकते।

१३ नव··· ·· ··बाजिय।

अर्थ—घड़ियाल के नौ बजाते ही पृथ्वीराज उठकर राज महल मे चला गया। अर्ध-रात्रि के व्यतीत होते ही वहाँ पर शीघ्र ही दूत आ पहुँचा। उसने आकर पृथ्वीराज को जगाया। जिस प्रकार सिह अधिकार से बाहर होकर स्वतंत्र हो जाता है उसी प्रकार गोरीशाह के सम्बन्ध में विचार किया। [दूत द्वारा उसे पता चला कि] शाह के आठ हजार हाथी और अट्टारह लाख घुड़सवार चौदह कोस की दूरी पर उपस्थित हैं।

१४ बीच··· ··प्रान।

शब्दार्थ—सहथान=उस स्थान की ओर चन्द= चन्द पुण्डरि

अर्थ—जब से पृथ्वीराज ने चन्द पुण्डीर का पत्र पढ़ा तब से जिस स्थान पर वह था उधर से ही वह मुड़कर शीघ्र चल

पड़ा और उसके वीरों के शरीर और मन मोक्ष भोगी प्राण अंकुरित हो गये।

१५, मची ·· ·····अरिदाह।

शब्दार्थ—कूह=हल्ला, शोर। सनाह कवच निसान= निशा रूपी या नष्ट करने के लिए।

अर्थ—हिन्दू दल मे शोर मच गया और प्रत्येक ने कवच कस लिए। वे दस सहस्त्र योद्धा श्रेष्ठ दीपकों के सदृश्य शत्रु-समूह रूपी घनी रात्रि को नष्ट करने के लिए प्रदीप्त हो उठे—अर्थात् युद्धार्थ कटिबद्ध हो गये।

१६ बावरू ·नद पार।

शब्दार्थ—बावस्=निराश

अर्थ—उधर चन्द पुण्डीर और शाही दल निराश नहीं हो पाये थे [युद्ध कर ही रहे थे] तब तक पृथ्वीराज के दूतों ने आकर खबर दी कि श्रेष्ठ गोरीशाह ने सेना सजाकर नदी को पार किया है।

१७ पंचासज · ·· · दरबार।

शब्दार्थ—पंचासज=पंचनद। बंध=बाँध। थति= समूह। दरबार=दर्रे के मुहाने पर।

अर्थ—पीछे से जब गोरियों के स्वामी ने पंचनद के बाँध को पार किया तो वीर चन्द ने अपने वीर समूह को नदी के दर्रे के बाहर नियुक्त कर दिया।

१८ षाँ ······· सजरति षाँ।

शब्दार्थ—गज तार=हाथियों को सजाया

अर्थ—मारूफ खाँ, तत्तार खाँ तथा श्रेष्ठ खिलजी खाँ दृढ़ता पूर्वक डट गये और छत्र ग्रहण कर मुजीक खाँ ने गोल

की सेना को पंक्ति बद्ध किया। आग्नेय शस्त्रधारी श्रेष्ठ बल-वानों ने हाथियों को सजाया, जिनका भार नूर खाँ, हुज्जाव खाँ और नूर मोहम्मद पर छोंड़ा गया। गोरी के श्रेष्ठ वीर वजीर खाॅं तथा हजरत खाॅं ने हरावल [सेना के अग्रभाग] की रचना की और उसका भार सजरत खाॅं को सौंपा गया।

१६. रचि ....गहर।

शब्दार्थ--टकी=एक विशेष तौल। चौं=चार। तेग-सिह=तलवारों सहित। विहर=चल पड़ते थे। गहर=गहरी।

अर्थ--हरावल को सुलतान ने स्वयं शाहजादे और शाही-वंशजों से सुसज्जित किया, जिनमे महमूद से पैदा हुआ वीर सुविहान [सुमान] हरवल पक्ष में नियुक्त किया गया। बीस टंकी कमान खींचने वाले मंगोल खाॅं और लल्लरी खाॅं एवं चार चार तलवार चलाने वाले अन्य बहुत से वीर रक्खे गये, जिनके सनसनाते हुए बाण शत्रु का प्राण खींच लेते थे। वहीं पर श्रेष्ठ गोर वंश का जहाँगीर खान भी था जिसके वीरों के सामने हिन्दू बार बार विचलित हो जाते थे। इस प्रकार पश्चिम दिशा के खान पट्ठान कठिन हरावल की रचना करके खड़े हुए थे।

२० रचि........ बिना।

शब्दार्थ--गब्ब=गर्व। सरवक=दके हुए, मत्त। पट्टे=पट्टा

अर्थ--पठानों द्वारा रची हुई हरावल में इसमान खाॅं, गक्खर खाँ, केली खाँ कुंजरी खाॅं शाह की अश्वारोही सेना को तैय्यार करने वाले थे और खम्भ रखने वाला [प्रतिष्ठा रखने वाला] महान अंग धारी खुरासानी बब्बर खाँ, हबसी खाँ और हुज्जार खाँ श्रेष्ठ थे। जिसका शाह को या संसार को गर्व था। उनके

आगे मद से मत्त पट्टा चलाने वाले श्रेष्ठ आठ गजराज थे। पंचतत्वों से रहित स्वयं ब्रह्म से शरीर का निर्माण हो जाय किन्तु उसमे लज्जा का संचार न हो [अपने गौरव की चिन्ता न हो] तो वह भी उन हाथियों से युद्ध नहीं कर सकता।

२१ करित · · ··दुरथौ।

शब्दार्थ = निरस्ते = पास थे। लहु = लघु। दुस्तम = दुरुह।

अर्थ—इस प्रकार व्यूह रचना की माया की गई जिसमे चार शाही वंश के और तीस खुदा के फरिस्ते के समान ही अपने फरिस्ते रखे गये थे। उस सेना मे शाह शर्म स्वरूप आलमखॉ और उजबक खॉं नजदीक थे, छोटा मारूफ खॉ, गुमस्त खान, बजरंग वाले और दुरूह थे। इस प्रकारशाह ने व्यूह रचना करके हिन्दू सेना के ऊपर भारी रण वाद्य बजवाये। इस प्रकार शाह विशेष सेना को अलग रास्ते पर लाया और आप शोर करता हुआ चिनाब नदी को पार किया। उस शोर को वीर सामन्तों ने सुना जिससे प्रत्येक वीर के शरीर का रोष झलक उठा।

२२ तमसि·· ·· साज।

शब्दार्थ—तमसि तमसि = तमोगुण से पूरित।

अर्थ—सब सामन्तों में तमोगुण ने स्थान पाया, पृथ्वीराज क्रोधित हो उठा। वीर चंद पुण्डीर ने सजकर दृढ़ पॉव से और बढ़ते हुए गोरी को रोका।

२३ उतरि······सो करी।

शब्दार्थ—सुपथ्थ धर = श्रेष्ठ पथ (स्वर्ग) को ग्रहण किया। दुरि = गिरे, घायल हुए।

अर्थ—तब शाह ने चिनाव नदी को पार किया। उस समय चंद पुण्डीर बाण-प्रहार से घायल होकर धराशायी हो

गया था। वह उठाया गया, उसके पाँचों भाइयों ने तब तक श्रेष्ठ पथ को [स्वर्ग को] ग्रहण कर लिया था। यह चरित्र देखकर श्रेष्ठ दूत चौहान [पृथ्वीराज] के पास पहुँचा और कहा कि गोर का स्वामी गोरीशाह आपकी ओर बड़े वेग से बढ रहा है। अपने पक्ष का श्रेष्ठ धैर्यवान योद्धा [चंद पुण्डीर] और मारूफ घायल होकर गिर पड़े हैं और शाही सेना एकत्र हो गई है। इस प्रकार लाहौर से पाँच ही कोस के मोड़ पर शाह ने पड़ाव डाला है।

२४ बीर · · ·सुरतान।

शब्दार्थ—रोस = क्रोध।

अर्थ—यह सुनकर शत्रुता के कारण टेढ़ा होता हुआ श्रेष्ठ बीर [पृथ्वीराज] व्योम से जा लगा अर्थात् अत्यधिक क्रोधित हो आया, और बोला—मैं तभी सोमेश्वर का नन्द कहा जा सकता हूँ जब कि सुलतान को फिर से बंधन में लूं।

२५ चन्द्रव्यूह · · ·कंद।

शब्दार्थ—मंगल = लाभार्थ।

अर्थ—धन्य है राजा पृथ्वीराज को जिसने अपनी सेना का चन्द्रव्यूह बाँधा और उसने सुलतान पर आक्रमण करने का इष्ट देव की बन्दना करके सेना को बढ़ाया।

२६ बर · · ·बलिय।

शब्दार्थ—राह = राहु। टारे = नाशक। रारी = तलवार।

अर्थ—श्रेष्ठ पंचमी मंगलवार को पृथ्वीराज ने युद्धारंभ के लिए निश्चित किया। राहु और केतु उस दिन पृथ्वीराज के लिए अनुकूल हुए। क्योंकि दुष्ट ग्रह के हटने पर शुभ कार्य की संभावना होती है। अष्ट चक्र पर योगिनी स्थिर रहने से तलवार के लिए भोगभक्ता के रूप मे थी। गुरु [बृहस्पति] और

रवि पाँचवे स्थान पर थे, इस प्रकार बड़े भारी अष्ट मंगल ग्रह राजा को थे। केन्द्रीय स्थान पर बुद्ध था और त्रिशूल व चक्र रखने वाले (शिव-विष्णु) बलवान राजा के रक्षक थे। ऐसी शुभ घड़ी को श्रेष्ठ ढंग से ग्रहण करके वह श्रेष्ठ बलवान राजा क्रूर रूप मे सूर्योदय होने पर चढ़ा।

२७ सोरचि ·····चन्द।

शब्दार्थ—उद्ध=उर्ध्व। अवद्ध=मध्य।

कद=किरणो। महब=महोवें=[वर्षागम के पूर्व बादल मे रेखाये निकलकर सारे बादल को अरुण वर्ण कर देती है, उन रेखाओं को महोबे कहते है।

अर्थ—वह क्रूर सूर्य्य उर्ध्व, मध्य एवं अधोभाग में महोबे के रूप मे किरणे फैलाता हुआ भयानक अरुण रूप धारण करके उदित हुआ। जिसको उसने खेद प्रगट करते हुए बंदना की। कविचंद कहता है कि इसका क्या भाव है? अर्थात् युद्ध के आरम्भ से अन्त तक भयानक रूप रहेगा। इसलिए राजा ने खेद प्रगट किया।

२८ प्रातः·········बंछैति उर।

शब्दार्थ—बंछई=इच्छा की। बर=प्रियतम।

अर्थ—वीर पृथ्वीराज उस प्रात. काल के होने की कामना सारी रात्रि इस तरह करता रहा जैसे दम्पति चक्रवाक बुद्धि-बल से देवताओ के सापेक्ष्य सूर्य की इच्छा करते हो। इसी प्रकार प्रतिदिन वियोगिनी अपने पति की, रोगी स्वस्थ होने की, दीन-कर्ण के समान दानी की तथा सती अपने सतीत्व की हृदय में अपेक्षा करती रहती है।

२९ क्रम··· पाषान।

शब्दार्थ—क्रमगाह=कर्मगाथा। वाषान=व्याख्यान, प्रशंसा।

अर्थ—वीरों की कर्मगाथा मोक्ष गाथा है उसकी क्या प्रशंसा करे। मन मे अनखने वाले वे सामन्त कच, करौती और पाषाण तुल्य थे।

३० बाई… …आन।

शब्दार्थ—बाय = वायु। धुंधरी = धुंधला पड़ जाना।

अर्थ—विषम वायु के कारण चारो ओर धुंधलापन छा गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो सूर्य पर बादल छा गये हो। देखे किसके घर मे मंगल सूचक वाद्य बजते हैं और किसके शिर पर मंगल ग्रह [क्रूर ग्रह] आकर उतरता है।

३१ दिष्ट……जान।

शब्दार्थ—दिबट = दृष्टिगोचर। चक्कत = चक्राकृति। खहकि = आकाश मार्ग पर।

अर्थ—शाह की सेना दृष्टिगोचर होते ही लौह धारियों के बाण चक्राकृति हो इस प्रकार चल पड़े, मानो पुनः रात्रि का आगमन लक्षित कर आकाश मार्ग पर नक्षत्र चल पड़े हो।

३२ धजा……पाइ।

शब्दाथ – बिय = दोनो। मांन = मानो।

अर्थ—वायु के कारण ध्वजाये टेढ़ी होकर उड़ने लगीं, मानो तारागण सहित चन्द्रमा दोनो राजाओं के पांवो पड़ता हो अर्थात् दोनो ओर की तारा-यक्त जरीदार ध्वजाये वायु के कारण टेढ़ी हो होकर, एक दूसरी सेना के सामने कुछ झुक झुक कर पुनः उठती है। कवि ऐसी स्थिति पर उत्पेक्षा करता है।

३३ से…… अंग।

शब्दार्थ—सनि = शृंगो। संकहि = शंख की। सद्ध = शब्द

अर्थ—शृंगी और शंख की ध्वनि के साथ ही साथ सुरंगी

कुहुक की ध्वनि भी हुई, जिसके सामने नक्कारों की ध्वनि कानों को सुनाई नहीं देती थी, मानों वह लुप्त सी हो गई है।

३४ अंनि ''···दहवाट।

शब्दार्थ—अंनि = सेनायें। घाट = आघात। चित्रंगी रावर = चित्तौड़ पति रावल। दहवाट = तितर बितर।

अर्थ—दोनों सेनायें आघात करती हुई भयानक बादलों के रूप में जब मिल सी गईं तो ऐसे समय में विपत्तीय बादल सम दल को चित्तौड़ पति रावल के बिना कौन तितर बितर कर सकता है? अर्थात् सेनाओं के मिलते ही रावल समर-विक्रम के घोड़े की रास उठी।

३५ पवन सबल।

शब्दार्थ—घालि = नाश करना। फहकि = फू फू कर। = शब्द। भसुंड = भुशुंड।

अर्थ—मेवाड़ पति समर ने सामर्थ्यवान, बलवान्, विषम-स्वरूप, प्रचण्ड पवन के समान चलकर सेना से भिडंत की। प्रारम्भ में ही युद्धान्तर मिलता हुआ दिखलाई पड़ा। वह श्रेष्ठ तलवार निकालकर शत्रु सैनिकों का नाश करने लगा और मार मार शब्द उच्चारण करता हुआ वृक्ष रूपी बैरियों के पत्ते रूपी शिरों का नाश करने लगा। इसने फेफड़ों से फू फू शब्द कर हड्डी और कंकाल उखाड़ दिए। हाथियों के सुंड काटता हुआ बीहड़ बन रूपी शाही दल के क्रूर कंटकों को उखाड़ कर, शाही दल की रजोगुण रूपी रज [सेना] का नाश कर दिया।

३६ रावर......कर।

शब्दार्थ—उप्पर = सहायता पर। खिजि = क्रोध करता हुआ। दहड़ = दस

अर्थ—रावल समर विक्रम की सहायता पर क्रोध करता हुआ जैत्र प्रमार और उसकी सहायता पर चावंडराय ओर हुस्सैन खाँ सजधज कर बढ़े। उन दोनों ने बढ़कर हरावल के मध्यभाग को पीछे ढकेल दिया, और उसके पक्ष मे आहडो की [मेवाती] सेना पंक्ति बद्ध होकर उलझ पड़ी। किंतु धार राज-वंशीय जैत्र प्रमार को धन्य है, जिसने तलवार को धारण कर हाथ उठाकर उसको अच्छी प्रकार से चलाया, जिसके द्वारा शाही दल के दो हाथी और दस श्रेष्ठ योद्धा मारे गये।

३७ छत्र······रूष।

शब्दार्थ—राज दुअ=पृथ्वीराज और समरसिंह। हथ-नारि गोर जंवूर=अग्नेयास्त्र विशेष। उम्भति=खड़ी हुई। रुख= तरफ, ओर

अर्थ—घेरे की सेना के प्रमुख, शाही छत्र को हाथ मे रखने वाले मुजीकखान ने घबड़ाकर शाही छत्र जैत्र प्रमार को अर्पित कर दिया। उस छत्र को जैत्र ने अपने शिर पर धारण किया। इतने में पृथ्वीराज और रावल समर विक्रम दोनो नरेश एक-त्रित हो, अपनी अपनी सेनाओ का चक्राकृति व्यूह रचकर उस स्थान पर आ पहुँचे। एक अग्रपंक्ति में मीर हुस्सेन का पुत्र था और दूसरी अग्रपंक्ति मे वीर चन्द पुण्डोर था। प्रथम हमले मे चन्द पुण्डोर केवल घायल हुआ। इस चन्द्र व्यूह की रचना मे चन्द्रमा की दोनों अनियों के स्थान पर दोनो नरेश थे। चन्द्रव्यूह के मध्यभाग पर श्रेष्ठ वीर रघुवंशी रामराय बड़गुज्जर खड़ा हो गया और गोरीशाह के सामने वीर सारंग देव साँखले ने एकदम हमला कर दिया। जिससे अग्नेयास्त्र धारी शाही सेना दोनों पार्श्वों पर खड़ी हो देखती ही रह गई।

३८ छुटि······भग्गयौ।

शब्दार्थ—घटिय = कम हो गया। मन = चित्त। खरक्कै = खटकने लगा।

अर्थ—मध्याह्न का सूर्य शिर पर चढ़ आया। शाही दल की अर्ध शक्ति घटकर छूट गई। वीरों के कन्धों का टेढ़ापन निकल गया और वे श्रेष्ठ कुरंगो रूपी कायरों मे जा सम्मिलित हुए। शाह का अर्ध बल शेष रहा अर्थात् शाही दल के आधे योद्धा खड़े रहे। उन्होंने अर्ध घड़ी तक लोहे का उत्तर लोहे से दिया। किन्तु सिंह को मन से सामना करना था अतएव सबल शत्रुओं की विशाल काया उनके चित्त में खटकने लगी। उस समय आपत्ति का नाश करने वाला पुण्डरि लड़ने को तिरछा होकर जा पहुँचा। जिससे शाह की शेष सेना भी इस प्रकार भागने लगी, जैसे नव वधू के हृदय से सूर्योदय होने पर पति की शंका भाग जाती है।

३६ तेज ... वार।

शब्दार्थ—तेज = कन्ति। उम्भै = रहते हुए। भीर = आपत्ति।

अर्थ—यह देखकर श्रेष्ठ गोरी के मुख की कान्ति विलीन हो गई, इस पर धीरज दिलाता हुआ तत्तार खाँ बोला—मेरे उपस्थित होते हुए भी इस समय आप पर [सुलतान पर] आपत्ति आई।

४० सोलंकी····· ··मरन।

शब्दार्थ—मुप लग्गा = मुँह लगा हुआ। बंध = भाइ।

अर्थ—इतने मे चालुक्य नरेश माधव और खिलजी खान मे युद्ध होने लगा। दोनो योद्धा बलवान, वीररस स्वरूप, वीर रस से सने हुए, तलवार चलाने और युद्ध करने में प्रबुद्ध थे। दोनों ने हाथ उठाये और चालुक्य का आघात हुआ जिससे उसकी तलवार टूट गई। तब उसने कटारी निकाल ली। परस्पर एक दूसरे को दूर ही रोक लेने

का प्रयत्न जब नहीं चल सका, तब अधम युद्ध [छल-युद्ध] होने लगा। जिसमें चालुक्य वीर सारंग देव का भाई [माधव] विशेष घाव लगने से धराशायी हो गोरी-शाह के योद्धा के द्वारा मृत हुआ।

४१ पग्ग · · · गयो।

शब्दार्थ हहकि=हट करके। जमन=यवन। गंजि=गर्जना करने लगी। समाहिय=पकड़ी। रज=कलंक। उच्छंगन=बाहुपाश में।

अर्थ—हट करके तलवार द्वारा भिड़ती हुई यवन सेना समुद्र सी गर्जना करने लगी और उस सेना के श्रेष्ठ हाथी, घोड़ों ने तरंगों का रूप धारण कर लिया। यह देखकर के भारी क्रोध करके गोईन्दराव तैय्यार होकर बढ़ा। उधर अनम्य—किसी से विनष्ट नहीं किया जाने वाला जो मीर [खिलजी खाँ] था, उसने पानीदार तलवार ग्रहण की और वह लज्जा रूपी पूर्वी हवा के सहारे आगे बढ़ता हुआ अति दल बल सहित भिड़ पड़ा। उसने राज्य लक्ष्मी को छोड़ दिया, किंतु रजोगुण को नहीं छोड़ा रज (कलंक) नहीं लगने दिया, किंतु वह रज रज (कट कट कर रज कणों के तुल्य) हो गया। उसे अप्सरा बाहुपाश में न ले सकी और न वह देव विभाग में ही स्थान पा सका अर्थात् सीधा दोज़ख को चला गया।

४२ पीर······कवन।

शब्दार्थ—दम्झै=जलादिया। नवपतंग=तरुण सूर्य्य। विरुझाइय=धारण किया। आरत्रि=अग्नि।

अर्थ—तब पतंग के समान झपट कर जयसिंह वीर ने अपने शरीर को जला दिया, किन्तु उसके तरुण सूर्य के सदृश्य गति को प्राप्तकर एक बार शत्रुओं की धज्जी धज्जी उड़ गई उधर

से। विपक्षी मुसलिम योद्धा ने तेल, पात्र, बत्ती और अग्नि का स्वरूप धारण किया, इधर जयसिंह पंच तत्वों को अर्पित करते हुए भी, पाँचों से भिड़कर उन पाँचों शत्रुओं को मृत्यु की राह लगा दिया। उसने स्वयं अग्निरूपी दुलहन की श्रेष्ठता से संयोग कर लिया किन्तु शत्रुओं को भी जला-भुना कर नष्ट कर दिया। उसने मृत्यु पाते हुए भी दैत्य स्वरूपी मुसलमानों से विजय प्राप्त कर ली। इस पृथ्वी-मंडल में उसकी अन्य कौन समानता करने वाला है ?

४३ रूपौ·· ··धुआ।

शब्दार्थ—पारस = चारों ओर। आसुहि = बढ़कर। सिर-बनी = सिर पर आघात किया। कप्यौ = कम्पित हुआ।

अर्थ—इसके पश्चात् पुण्डीर नामक वीर अथवा पुण्डरि का कोई भाई डट गया। उसे चारों ओर से शाही सेना ने घेर लिया। वीरों ने चम चमाते हुए तीक्ष्ण शस्त्रों को चला कर उसके सिर पर आघात किया। भारी लोहे पर लोहा के लगने से सिरस्त्राण टूटकर खण्ड खण्ड हो गया। उसकी उपमा कवि इस प्रकार करता है मानो रोहिनी नक्षत्र ने मिल-कर उस वीर के शिर पर चन्द्रमा और नक्षत्र चला दिया हो। वह वीर उठकर भिड़ता हुआ शत्रुओं को नष्ट करने लगा, यह देखकर स्वर्ग लोक में जय जयकार होने लगी। अंत में भी उसका कमन्ध चार पाँच पल के लिए खड़ा हो गया। कवि कहता है उसे खड़ा हुआ देखकर क्या कारण है कि ध्रुव कम्पित हुआ। अर्थात् ध्रुव को अपने से बढ़कर इस बार अटल ध्रुव को देखकर शंका हो गई, जिससे वह कम्पित हो उठा।

४४ दुज्जन·· ···नयौ।

शब्दार्थ—दुज्जन सल = दुर्जन सल्य नाम विशेष। हक्कारिय = ललकारा। हय हय हय = मार मार मार।

अर्थ—कुरंभ पल्हन का भाई दुर्जन सल्य नामक वीर हुंकार करता हुआ उठा. यह देखकर खुरासान खाँ, अपनी लम्बी तलवार को उठाता हुआ, उसके सामने आया। आघात से शिरस्त्राण टूटकर फट गया और वह सिरपर पड़ती हुई कवंध तक पहुँची। ऐसी ताड़ना होते हुए कबंध मार मार उच्चारण करते हुए नृत्य करने लगा। उस नये रुद्र को देखकर रुद्र भी प्रसन्न हुए और डरकर नन्दीगण 'मारे गये', 'मारे गये' कहने लगे। कवि चंद कहता है कि महाभारत के सदृश्य उस वीर का युद्ध देखकर भगवती शैलपुत्री भी चकित हो गईं।

४५ सालंकी ······ घुनह।

शब्दार्थ—भृत्त = सेवक [सारंग देव]। है = हय, घोड़ा। बंधे धुनह = घायल होकर झूमने लगा।

अर्थ—सारंगदेव सोलंकी और खिलजी खाँ ने आकर उसका सामना किया [सारंगदेव कमधजी सेना का वीर था, संभव है कमधजी सेना भी शाही सेना की सहायता करने पहुँची हो, पृथ्वीराज की सेना सारंगदेव सोलंकी से भिन्न होनी चाहिए] इधर से कन्ह चौहान बढ़ा, वह पंगुराज के सेवक [सारंगदेव] को विचलित करके खिलजी खाँ से जा भिड़ा। विपक्षी खिलजी खाँ उछलकर कन्ह के घोड़े के कन्धे पर आ चढ़ा, तब कन्ह ने दूसरे अश्व को ग्रहण किया और हाथी के समान गर्जना की, जिससे पृथ्वी, पहाड़ और कंदराएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। युद्ध में पुष्पांजलि अर्पित करते हुए देवताओं ने जयजयकार किया। कन्ह के वार से सब साधनों की साधना करता हुआ भी एक रणक्षेत्र में धराशायी हुआ और दूसरा घायल होकर झूमने लगा।

प्रथम और द्वितीय पंक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है :—उधर सोलंकी सारंगदेव और खिलजी खाँ भिड़ पड़े, इधर शाही मदद पर आए हुए कन्नौजी सैनिक को विचलित करके चौहान कन्ह उलझ पड़ा, विपक्षी वार के अश्व के कंधे पर चढ़कर दूसरे विपक्षी के कंधे पर जा चढ़ा।

४६—करी······डुल्यौ।

शब्दार्थ—आहुट्ठ वीर=अक्षय वीर। अरक्कै=अड़कर। कविल पील=कुवलिया पीड़। रक्कै=पछाड़ता हो। आँखिन=अक्षिणी ने। सहयौ=साथ किया। हक्कि=गर्जना से।

अर्थ—इधर अक्षय वीर गोइंदराय अड़कर हाथियों से सामना करते हुए गरजने लगा, मानो कुवलिया पीड़ हाथी के दारुण दाँतों को कृष्ण पकड़कर उसे पछाड़ते हों। उसके आघात से हाथी का सूंड खण्ड खण्ड हो गया और महावत ने हाथी को छोड़ दिया, सिद्धों ने साधन सिद्ध किया तथा वैताल और अक्षिणी में मांस को अधिकार मे करलिया। इसप्रकार वह श्रेष्ठ वीर इस युद्ध मे भिड़ पड़ा और लोहे के आघातों से झूमने लगा। यह कार्य उसने तत्तार खाँन के साथ किया और इस शेर की गर्जना से आकाश हिलने लगा।

४७—षोलि... ...लहर।

शब्दार्थ—धर=धड़। संभरि=संभलकर। कट्टारिय=कटारी। अंत=आंतों के।

अर्थ—तलवार निकालकर वीर रत्नसिंह ने क्रोध में आकर शत्रु के सिर पर मारा, जिससे विपक्षी का धड़ कटकर धराशायी तो हो गया, किन्तु उसने फिर भी सम्हालकर कटारी निकाल ली। बीर रत्नसिह ने, विपक्षी के साथ उलझ जाने पर भी तलवार का उसने पुनः वार किया, किन्तु वह चूक

गया, इसलिए घायल शत्रु को लोहे की झाड़ी को झेलकर संभलना पड़ा। वह भी शत्रु के साथ ही स्वर्ग को चला, लेकिन उसके चलने का कोई क्रम न रहा। वार के समय उसका हाथ हिल गया, किन्तु वह श्रेष्ठ वीर नहीं हिला। उस श्रेष्ठ वीर के गिर पड़ने पर दाहिर के पुत्र चामंडराय को तीक्ष्ण तलवार का तरंग बढ़ चली।

४८—जैत... ...बियौ।

शब्दार्थ—झग्गरी = लड़ाई महमाय = योगिनियों के बीच। भान-थान = सूर्यमण्डल।

अर्थ—उधर युद्ध करता हुआ जैत्र के भाई लक्ष्मण का पुत्र लाखा धराशायी हुआ। वहाँ योगिनियों में उसके खून के लिए झगड़ा मच गया और देवी ने हुँकार किया। उस हुँकार के साथ ही गिद्धिनी उसे उड़ाने लगी। गिद्धिनियों से अप्सरायें उसे लेना चाहती थीं, किन्तु न पा सकीं। जहाँ से वह पैदा हुआ था, वहीं पर पहुँचा, इससे देवलोक को भ्रम हो गया। वह न तो यमलोक, शिवलोक और न ब्रह्मलोक को गया, वह तो सूर्य-अंशज योद्धा था, इसलिए सूर्य-मण्डल में जा मिला।

४९—तन .....बधुअ।

शब्दार्थ—झंझरि = जर्जरित होकर। मुच्छि = मुर्छित अवस्था में। अपर = अप्सरायें। सतकाल = सती स्त्री। सुक्की बधुअ = स्वकीया बधू।

अर्थ—तन से जर्जरित होकर वह प्रमार वीर धराशायी होकर दो घड़ी तक, मुर्छित अवस्था में पड़ा रहा। उसे देख कर स्वर्ग को तज अप्सराओं ने हृदय से आकर उसे लगा लिया। इतने में सतीवाल उसे सलखाने के बाँधव के पास

पहुँची, तब उस मुर्छित वीर केशव के दोनों हाथों ने यह लिखकर बताया, उस श्रेष्ठ लेख को उसने पढ़ा। मुर्छित शव ने लिखा था—जन्म-मृत्यु, सुख-दुख और श्रेष्ठ गति, ये अमिट है और शरीर के साथ सदा है। अस्तु, अब मुझे नहीं छूना और न इस समय मुझे अपने हिस्से मे समझना। हे बधू! केवल दूर ही से बन्दना कर लेना, अब मै सत्यपुर मे तुमसे मिलने का नहीं। अब मेरी आत्मा परमब्रह्म मे मिलने वाली है।

५०—राम ... ललचाइ।

शब्दार्थ—अथिर = अस्थिर

अर्थ—उस राय प्रमार के भाई का श्रेष्ठ शिर ईश ने इच्छा करके ग्रहण किया और उसे देख देखकर इसप्रकार लालायित होने लगा, मानो कोई चंचल मनवाला दरिद्रो हस्तगत धन को बार बार देखता है। [प्रमार शाखा मे सलखानी वंश का जैत्रप्रमार और रायप्रमार होने से उक्त मृत-वीर को एक जगह जैत्र का भाई और एक जगह रायप्रमार का भाई लिखा है।]

५१—जाम.. ..मीर

शब्दार्थ—जाम = पहर

अर्थ—एक पहर दिन चढ़ते ही जंघारो जोगी-वीर युद्ध-भूमि मे झुक पड़ा। वह तीर के समान तेज होकर टूट पड़ा और उसने मीर को मैदान मे पकड़ लिया।

५२—जंघारों . ...समर।

शब्दार्थ—जटत = जटा। हरसारौ = शोभित। झारौ = जला दिया। इत्तौ = ऐसा।

अर्थ—लंगरीराय ने शस्त्र उठाकर सेना के गहरे चक्र मे प्रवेश किया। उसकी तलवार तलवार से जुटती हुई ऐसी मालूम होने लगी मानो बादल मे बिजली की कुछ शलाका दिखाई पड़ती हो। वह सुलतान को इस प्रकार लगी जैसे जंगल मे दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी हो अथवा अग्नि लगाकर हनुमान लंका से अलग हो गये हों। उस अक्खड़ मल्ल ने एक को मारकर फाड़ दिया और एक को चीड़ फाड़कर फेंक दिया। दृढ़ चरण को रोपकर अचानक ही उस समुद्र को तैर गया। फिर भी उस वीर ने द्वितीय बार तलवार को उठाया।

५५—लौहानौ .....परि।

शब्दार्थ—ठट्टर = ठठरी। उरद्ध = उल्टा, पीछे। बहारी = बाँटने वाली, कटारी। अवसान = होश।

अर्थ—इधर से लौहाने ने और उधर से महमूद ने एक दूसरे पर भारी बाण वर्षा की। वे बाण वीरों के पींजरों को बेध कर पीठ पर ऊपर की ओर निकल गये, मानो खिड़की के किवाड़ खुल गये हों। तब वीर लौहाने ने तलवार निकाल सावधानी से संभलकर एक ही वार मे उस मीर को चीरते हुए मृत शत्रुओं के शवों का सुमेरु का सा ढेर लगा दिया। इस प्रकार गोरीशाह के ६४ खॉन उस युद्ध मे खेत रहे और चौहानी योद्धाओं मे तीन राव और एक राजा रणस्थल मे धराशायी हुए।

५६—मानि... मति।

शब्दार्थ—रोस = क्रोध। गाहक्के = गर्जना करने लगा। बाहि = करता हुआ। हहक्के = आक्रमण करता हो।

अर्थ—लौहाने के लोहे को मारुफ खॉ भी मानता हुआ क्रोध करके कुछ विडुरता (क्रोध से कटकटाता) हुआ गर्जने लगा। मानो आवाज पर आवाज करता हुआ गर्जना करते हुए

पंचानन आक्रमण करते हों। वे दोनों वीर महमूद और मारुफ तेजधारी थे। उनके सिर पर सिंह प्रमार ने केवल एक ही बार किया, जिससे शिरस्त्राण टूट गया। चन्द कवि उसकी उपमा करता है, मानों दो शृंगरूपी सिरों को तोड़ने के लिए बिजली स्थिर प्रवाहयुक्त आ ठहरी हो। परन्तु उनके सिरों पर पड़कर उस तलवार के ही दो दो टुकड़े हो गये, वे ऐसे दिखाई पड़े, मानों यमराज द्वारा प्रेरित काल रात्रि के नक्षत्र विपक्षियों के सिर पर मंडराते हों।

५७—दस ·· ··हमसि के।

शब्दार्थ—मुख, किन्नौ=मुख की ओर भेजा। अकाश बादी=आकाशवाणी। सोमाह=सोमेश्वर के पुत्र ने। हमीस=उत्तेजित होकर।

अर्थ—शाहबुद्दीन गोरी ने अपने अग्रभाग के मुख पर दस हाथियों सहित सुबिहान (सुभान) को भेजा और तत्तार खाँ ने आकाशवाणी के समान शोर किया। वह चारों ओर फैल गया। आग्नेयास्त्र और बाणादि के शोर से दसों दिशाएं व्याप्त हो गईं, इस शोर से पृथ्वीराज का हाथी भाग पड़ा, जिससे पृथ्वीराज के चित्त मे व्याकुलता उत्पन्न हो गई। तब बज्रवत् सोमेश्वर के श्रेष्ठ पुत्र ने ब्रज को डुबाने वाली वारि-धारा के समान शस्त्र-वर्षा की और उसके श्रेष्ठ वीर सामंत उत्तेजित होकर खड़े हो गए।

५८—अद्ध··· ··कोट हुआ।

शब्दार्थ--सेपन=शेख जाति के मुसलमान। जोर=जुड़ कर। सार=लोहा। पद्दर=दृढ़।

अर्थ—आधे आधे योजन पर उड़कर मीरों ने सॉंग फेरना आरम्भ कर दिया। तब क्रोधित होकर पृथ्वीराज के सामंतों

ने गोरीशाह को घेरा, किंतु शाह के चारों ओर चक्र चलाने वाले पचासों शेख थे। फिर भी पृथ्वीराज के योद्धा सम्मिलित हो दृढ़ दीवाल स्वरूप हो गये तथा लोहे से मृत्यु प्राप्त करने का उत्साह उनके हृदय मे बढ़ गया। शाही दल के अग्रभाग के योद्धाओं ने श्रेष्ट तलवार बजाई, किन्तु सामंतों की वह दृढ़ दीवाल टूटने के स्थान पर और भी दृढ़ होती गई। उन श्रेष्ठ बीरों ने उस युद्ध रूपी रास मण्डल में धराशायी होते हुए भी शस्त्रधारा का श्रेष्ठ-कोट [दुर्ग] बना दिया।

५६—शब्दार्थ—भष्षै = भक्षण करने लगा। तसबी = माला नंषै = फेंक दी। विथुरि = उन्मत्त होकर। धामंत = बढ़ते हुए।

अर्थ—तब खुरासान खाँ और तत्तार खाँ क्रोधित हो शत्रुओं के दल को विनष्ट करने लगे, तथा उन बीरों के हृदय में स्वामी के समक्ष दिये हुये वचन खटकने लगे, उन्होंने हट करके माला को डाल दिया। चौहानी सेना के मध्यभाग के कज्जल गिरि के समान हाथी उनके आघातों द्वारा यत्र-तत्र विचलित हो गये। वे विपक्षियों से बोले—जो आप विजयी हैं तो हमसे युद्ध करिये, यह कहते हुए उन्होंने तेरह सामन्तों को दबा दिया। वे फरिस्ते के रूप में तलवार निकालते हुए बढ़े, जिससे चौहान के योद्धा तेरह डग पीछे हट गये। किन्तु श्रेष्ठ वीर समूह अपने वाहनों सहित चतुरांगिणी सजाकर उस आपत्ति का सामाना करने लगे।

६०—पच्छै······तथ।

शब्दार्थ—अपछर = अप्सरा। सोझतह = वहाँ ढूँढ़ा। जीत सथ = विजय श्री सहित। तथ = वहाँ।

अर्थ—इधर संग्राम से पूर्व ही अप्सराएँ विचरने लगी तथा मेनका रंभा से पूँछने लगी कि आज तुम्हारा चित्त भारी

क्यों है, तब रंभा ने उत्तर दिया आज कोई प्यारा पाहुना हाथ नहीं आया, मैने रथ मे बैठकर इस स्थान पर बहुत खोज किया किन्तु प्रीतम को न देख सको। यद्यपि योद्धागण युद्ध मे भिड़कर विजय श्री के साथ कई स्थालो पर मृत्यु को प्राप्त कर चुप ही पड़े है, किन्तु वे उधर [स्वर्ग या ब्राह्मलोक] किस रास्ते स होकर चले गए, कोई भी नही जान सका। केवल उनको स्थिर रूप से खड़े खड़े शंभू ही देख पाये।

६१—षॉ .. पुक्करी।

शब्दार्थ—सार बहि=लोहा बजाकर। घट=घायल हो कर। अदिहार दोहं=नही दृष्टिगत होने वाला [ईश्वर]। पुक्करि=पुकारा।

अर्थ—गाजी हुस्सेन इस युद्ध मे धराशायी हुआ लेकिन उसका शरीर तलवार बजाकर हो धराशायी हुआ। विपक्षीय दल के हुज्जाव खॉ, शेर खॉ, मारुफ खॉ, और खान खाना घायल होकर झूमने लगे। यह देख गोरी शाह, तथा सुविहान ने विपत्तियो का सामना किया, लेकिन शाह तलवार लेकर सुलतान पना नही निभा सका। नहीं दृष्टिगत होने वाला [ईश्वर] जब उस दिन उससे पलट चुका, तब उसने उसको [ईश्वर] को पुकारा।

६२—तब ··ताहिय।

शब्दार्थ—साहिब=शाहबुद्दीन। गुराईय=गोविन्द राय को। तकंत=ताककर। गहिय=पकड़ लिया।

अर्थ—तब गोरियों के स्वामी शाहबुदीन ने हाथ मे सात बाण लिये। पहिला बाण उसने श्रेष्ठ बीर रघुवंशी गोविन्दराय को मारा और दूसरे बाण से ताककर भीमभट्टी के बल को

तोड़ा। तीसरा बाण उसने चौहान पर ताना, किन्तु वह आधा ही तन पाया था कि चौहान ने कमान साधकर शाह के तीसरे बान के हाथ का हाथ मे ही रख दिया और पृथ्वीराज ने उसको काट दिया। इतने मे रामराय बड़गुज्जर ने गोरी को पकड़ लिया।

६३—गहि···लोकपति।

शब्दार्थ—झोरिकरि=झोलियों मे। गजबंध=हाथी की सॉकल से। दिपति=दीप्ति।

अर्थ गोरी को पकड़ने के बाद गाजी हुस्सैन खॉ को ऊपर उठाया तथा तत्तार खॉ, निसुरत्ति खाँ आदि को पकड़कर झोलियों मे डाल दिया। फिर शाह के राज्य चिह्न चमर, छत्र आदि लूटे गये। तब रण क्षेत्र में श्रेष्ठ विजय-सूचक वाद्यों के साथ चौहान का जय जयकार सुनाई पड़ने लगा। इसके पश्चात् शाह को हाथी की सॉकल से बॉधकर हाथी के ऊपर रखकर दिल्लीपति दिल्ली को गया। यह देखकर नागदेव आदि स्तुति-करने लगे और इस विजय से पृथ्वीराज की दीप्ति इन्द्र के समान देदीप्यमान हो गई।

६४—समै·· मध्यान।

शब्दार्थ—बत्ती=बीतने पर। तपै=तपने लगा।

अर्थ—कुछ समय बीतने पर पृथ्वीराज ने श्रेष्ठ सुलतान को छोड़ दिया और पृथ्वीराज अपने सिहासन पर इस प्रकार तपने लगा, जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्न मे सूर्य तपता हो।

६५—मास ··सुवरि।

शब्दार्थ रुद्धौ=रुंधा रहने पर। सुद्धौ=सीधा। मुर=लचकदार। सुज्जकी=सुन्दर। संमेल करि=सम्मेलनकर।

अर्थ—इस प्रकार एक माह और तीन दिन शाह के संकट मे ग्रसित रहने पर शाही उमरावो ने पृथ्वीराज से प्रार्थना की। तब पृथ्वीराज ने अरबी घोड़े दण्ड स्वरूप माँगा। उस समय नौ हज़ार सात सै अरबी घोड़े और अट्ठाईस सफेद हाथी, जो कभी युद्ध से मुड़ना जानते ही न थे, दिये। और उत्तम नये रत्न, मोती, माणिक देकर मेल और संधि कर ली और पृथ्वीराज की बहुत सी खुशामद कर गोरी गजनी चला गया।

नरपति नाल्ह

बीसलदेव रासो

१—गवरी को नंदन = गणेश. आव्यो छइ = आया। भाव ध्यान में; भूलो ··ठाईं = भूले हुए अक्षर को यथा स्थान लाकर मिला देना। एक दन्त = गणेश जी प्रगासुं = प्रकाशित करूँ, गाऊँ।

२—उभोछई = बोला: सामर्‌यो राव = सांभर देश का राजा बीसलदेव मो सरीखा = मेरे समान. ऊर भुवाल = और राजा, म्हां घर ··उगहइ = मेरे घर सांभर [नमक] उगाहा जाता है अर्थात् नमक द्वारा कर प्राप्त होता है; तुरी = घोड़ा; पाषर = जीन; राजिकउ ··अजमेर = राज का स्थान [राजधानी अजमेर है।

ऊपर के दूसरे पद में बीसलदेव ने गर्व के साथ अपनी सम्पत्ति का वर्णन किया है। अब तीसरे पद से उसकी रानी [राजमती] का उत्तर आरम्भ होता है। रानी कहती है :—

३—हे मेरे पति देव! अभिमान से बातें न करो। लंका-पति [रावण] धनी था। उसकी लंका सात समुद्र के बीच में स्थित थी तथा उसके द्वार पर अस्सी हजार बाजे बजते थे। ऐसी लंका को वानरों ने विध्वंस कर डाला। तू [= थें] गढ़ अजमेर की क्या सराहना करता है?

४—सांभर्‌याराव = हे सांभर देश के राजा बीसलदेव! गरभि ··बोलो = गर्व से न बोलो। तो सरीखा···भुवाल = तुम्हारे समान और अनेक राजा हैं। एक उड़ीसा ··धणी = एक तो उड़ीसा का ही धनी राजा है; मान जु मानि = यदि सत्य मानो; ज्युं थारइ··· ··हीरा खान = जैसे तुम्हारे यहाँ

सांभर उगाहा जाता है, उसी प्रकार उसके [उड़ीसा के राजा के] घर हीरा उगाहा जाता है।

५—धणक = स्त्री का; चमकियउ = चकित हो गया; हूँ बीसछो = मै विश्रब्ध था, मै भूला था; वेदिठा = सचेत किया।

अर्थ—स्त्री की बातो ने हृदय पर चोट की। बीसलदेव चकित हो गया। उसने कहा—मै भूला था, तुमने मुझे सचेत किया। मैं तो बारह वर्ष के लिए लम्बी यात्रा करना चाहता हूँ। या तो मैं हीरा उगाह कर लाऊँगा या प्राण त्याग कर दूँगा।

६—बराकी = वाचाल, मोकियउ = छोड़ दो।

अर्थ—रानी ने कहा—मै वाचाल हूँ। कृपया क्रोध करना छोड़ दे। आपने पैर की जूती पर क्रोध किया है [रानी का भाव है कि वह राजा के पैरों की जूती है] मैने हँसी में बाते की थी। आप की ही प्रतिष्ठा से मै जीवित हूँ। यदि आप मुझे छोड़कर चल देगे तो मै कैसे जीवित रह सकूँगी ? क्या जल के बिना हंस जीवित रह सकता है ?

७—परणी आवो ··अजमेर = अजमेर मे तू ब्याह कर आई।

अर्थ—हे स्त्री! [गोरी] तू जैसलमेर मे पैदा हुई और ब्याह करके अजमेर में आई। तेरी अवस्था बारह वर्ष की है। तूने जगन्नाथ का स्मरण क्यों किया ? तुम अपने पूर्व जन्म की बात बतलाओ, नहीं तो मै अपना प्राण त्याग दूँगा।

८ - पूछइहो = पूछते हो। उरहु = उरमें, हृदय में।

अर्थ—राजमती, बीसलदेव के प्रश्न का उत्तर देती है। वह कहती है कि मै पूर्वजन्म मे हरिणी के वेष मे वन में रहती थी, उस समय मैं निर्जला एकादशी का व्रत करती थी, वहाँ एक आखेटिक ने मेरे हृदय मे बाण मारा तब मै जगन्नाथ के द्वार अर्थात् उड़ीसा मे पैदा हुई।

९—धरीय = धारण करने वाले। मांगि है = याचना करना।

अर्थ—हरिणी ने मन मे जगन्नाथ का स्मरण किया। शंख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाले भगवान प्रगट हुए तथा उन्होंने हरिणी से बर मांगने के लिये कहा। इस पर हरिणी ने कहा—हे त्रिभुवन के स्वामी! यदि आप प्रसन्न है, तो मुझे यही बरदान दीजिए कि पूरब देश में मेरा पुनर्जन्म न होवे।

१०—पतिग = पाप।

अर्थ—बीसलदेव कहता है—हे गोरी! तुमने पूरब देश को क्यों भुलवाया। बात यह है कि वहाँ पाप का प्रवेश नहीं है। वहाँ के लोग अत्यन्त चतुर है। वहाँ गंगा और गया तीर्थ हैं और वाराणसी भी वही है, जिसके दर्शन और स्नान से पाप नाश हो जाते है।

११—लोक = लोग। कण संचइ = कंजूस; कुकस = अभक्ष्य।

अर्थ—पूरब देश के रहनेवाले लोग पुरविहा हैं। पान, फूल मात्र ही उनके भोग की सामग्री है। वे लोग अत्यन्त कंजूस होते हैं तथा अभक्ष्य खाते हैं। ग्वालेर का गढ़ अत्यन्त सुन्दर है और मैं जैसलमेर मे प्रत्येक प्रकार के भोगों का उपभोग करती हूँ।

१२—मारू = मारवाड़। नीरोपमी = निरुपम। मेदनी = पृथ्वी। ललयाँगी = सुन्दर अंगवाली। अहिरघ = अहितुल्य।

अर्थ—बीसलदेव कहता है—तुम्हारा जन्म मारवाड़ देश मे हुआ है। हे राजकुमारी! तुम्हारा रूप अत्यन्त सुन्दर है। पृथ्वी मे उसकी उपमा नही है। तुम्हारे कपड़े अच्छे है और तुम पतली कमरवाली हो। तुम सुन्दर अंग वाली कोमलांगी हो। तुम्हारे केश नागिन की भाँति हैं तथा तुम्हारी दंत-पंक्ति श्वेत है अर्थात् सुन्दर है।

१३—उलगई = परदेश ।

अर्थ—राजकुमारी कहती है—हे साँभर देश के राजा ! बीसलदेव सुनो । तुम विदेश क्यों जा रहे हो । यदि तुम मेरी बाते सुनो, तो तुम्हे स्मरण रखना चाहिए कि तुम्हारे अंतःपुर मे तुम्हारी साठ स्त्रियाँ है । रानी हाथ जोड़कर बिनती करते हुए कहती है कि तुम यहीं सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो ।

१४—आंणिसु = लाऊँगा ।

अर्थ—राजा कहता है—हे राजकुमारी ! सुनो । तुम हृदय मे दुखी क्यों हो रही हो ? मै उड़ीसा जाकर जगन्नाथ को प्रणाम करूँगा और तुम्हारे लिए करोड़ रुपये का हार लाऊँगा ।

१५—मइला = मुझको । गमीमा = लाना ।

अर्थ—हे स्त्री । मैं तुम्हारी आशा पूर्ण करूँगा । [इस पर रानी कहती है] हे राजा ! मुझे किसीप्रकार भी तुम्हारा विश्वास नहीं हो रहा है । मुझे तुम अपनी दासी समझो । तुम्हारे वियोग मे मै जीवित ही मृतक हूँ । मै सदैव तुम्हारी बातों की इच्छुक हूँ और तुम्हारे वश मे हूँ ।

१६ - विगोयनो = बात से बात नहीं छिप सकती । मेली = फेकना । पांगूरई = पनपता है ।

अर्थ—हे स्त्री ! तुम कड़वी बाते न करो । तुम अपने हृदय से मुझे भुला दो । अब बाते बनाने से काम न चलेगा । अग्नि का जला वृक्ष—कोपल फेंक सकता है, किंतु बचन से जला मनुष्य पनप नही सकता । नाल्ह कह रहा है कि इस बात को सभी लोग सुन ले ।

१७—गाहजइ = लगा रहता है ।

अर्थ—वहाँ पर पाँच स्त्रियाँ आकर बैठ गईं और कहने लगीं हे मूर्खा ! यदि तुममें गुण हो, तो तुम्हारा प्रियतम

क्यों परदेश जाय ? जिसप्रकार से फूल पगड़ी में लगा रहता है, उसीप्रकार तुम्हारे अंचल में बँधा हुआ, तुम्हारा पति क्यों कहीं जाय ?

१८—दुमनी=दुखित। हीयड़इ=हृदय।

अर्थ—राजा कहता है—हे राजकुमारी ! सुनो। तुम हृदय मे दुखी क्यों हो रही हो ? यदि तुम मेरी बाते सुनो, तो मैं वहाँ [उड़ीसा] जाकर केवल छै महीना रहूँगा। वहाँ जगन्नाथ को प्रणाम करके मै लौट आऊँगा। वे तीनों लोको के लोगों को मुक्ति देने वाले हैं।

१९—हुँकारे=हुँकारना, बुलाना। सचा=सच्चा।

अर्थ—राजकुमारी ने एकाँत में ब्राह्मण को बुलाया। राजा का पुरोहित आ पहुँचा। रानी ने कहा, हे पंडित ! मैं तुम्हारे गुणों की दासी हूँ। आप कार्त्तिक मास का मुहूर्त दे।

२०—परगास=प्रकाश-दिखा। बीलवावज्यो=देर करना। फेरई=फिर भी। सोवत=सोने की।

अर्थ—हे वीर ! मैं तुम्हारे गुणों की दासी हूँ। दस दिन की मुहूर्त बतलाओ। एक महीने और मेरे प्रीतम को रोक दो। एक बार उन्हे और समझाओ। मै तुझे अपने हाथ की अँगूठी तथा सोने की सींग वाली कपिला गाय दूँगी।

२१—पतड़ो=पत्रा। जोईसी=ज्योतिषी। खोड़ीला=दूषित योग। नई=नवमी। जीण=उस दिन। थे=तुम।

अर्थ—हे पंडित ! तुझे राजा बुला रहे हैं, तुम पंचांग लेकर जल्दी आओ। ज्योतिषी पंचांग लेकर पहुँचा। वह अच्छा दिन देखने लगा। उसने पत्रा देखकर बतलाया कि एक महीने तक अच्छा दिन नहीं है। उसने यह भी कहा, कि त्रयोदसी की तिथि सोमवार को है, चन्द्रमा ग्यारहवें है, इसके पश्चात् वाले

दिन मे तीसरे चन्द्रमा तथा दूषित योग है, यद्यपि भद्रा नहीं है, लेकिन कार्तिक महीने मे पुष्य-नक्षत्र नहीं है। जब यह नक्षत्र आवे और उस दिन आप जावे तो निश्चित रूप से आप की आशा पूरी होगी।

२२—परतिष=प्रत्यक्ष। भाड=भण्डन करने वाला। कीसउ =कैसा।

अर्थ—बीसलदेव कहता है—मै तुझे पंडित कहूँ या प्रत्यक्ष भांड कहूँ? तुमने बातें बनाकर के झूठी बातें कही है। राजकुल के लोगो के लिए मुहूर्त्त कैसा? हे ज्योतिषी! यदि तुम मेरी बाते सुनो तो मैं आज ही विदेश चला जाऊँ तथा वहाँ जाकर जगन्नाथ की पूजा करूँ।

२३—अर्थ—हे पंडित! यदि तुम मेरी बात सुनो, तो मै विदेश जाता हूं। मुझे घर की स्त्री ने कुवाच्य कहा है। मुझे अपना घर अच्छा नही लगता। मैं उड़ीसा जाकर अपनी बात रखूंगा।

२४—उफिरई=जल्दी करता है। दमोदर=राजा तथा रानी का परिचित व्यक्ति अथवा दास।

अर्थ—राजमती कहती है—हे दामोदर! तुम यहाँ बैठो। मेरे प्रियतम की बातें कहो। वह बड़ा मूर्ख है तथा जल्दी कर रहा है। इस समय अष्टम सूर्य तथा बारहवें राहु है। गणना करने से ग्रह बहुत बुरे हैं। इसप्रकार से सिर धुनती हुई वह रोने लगती है तथा कहती है।

२५—निरवहु=निर्बाह करूँगी। ठोलसु=झलूंगी। वाई=वायु। पुहर=प्रहर।

अर्थ—मैं दासी होकर के निर्वाह करूँगी तथा साथ चलूँगी। मैं चरण धोऊँगी तथा पंखा झलूंगी। मै प्रति प्रहर जगती रहूँगी तथा अपने प्रियतम की सेवा करूँगी।

२६—गहिली = पागल। कूडइ = कूड़ा।

अर्थ—हे स्त्री! तू पगली है तथा तुझे बात रोग हो गया है। भला कोई स्त्री को लेकर विदेश जाता है? तू पगली, मुग्धा तथा बावली है। भला कहीं चन्द्रमा कूड़े में छिपाया जा सकता है, अथवा रत्न भी कहीं छिप सकता है? बात यह है कि पूरब के राजा हीन होते हैं अर्थात् विश्वास करने योग्य नहीं होते।

२७—चीरी = पत्र। मोकल्यै = भेजा।

अर्थ—विदेश जाने का साज सजाया गया। रानी ने हँसकर राजा से कहा—सात वर्ष पूर्व जब तुम विदेश गये थे, तब तुमने एक पत्र भी नहीं भेजा था। मेरा जन्म इसीप्रकार व्यतीत हुआ है। अब तुम जैसा चाहो, वैसा करो।

२८—बइसा = बैठाई। ऊलेभोउ = उपालंभ दूँ।

अर्थ—रानी ने अपने अंचल पकड़कर उन्हें बैठाया, तब राजा की भावज आई। उसने कहा—हे राजा! मैं तुम्हें आज उपालंभ दूँगी। क्या यह स्त्री तुम्हारे हृदय में नहीं समाती? या यह कटु-भाषिणी है? हे देवर! क्या कारण है कि तुम विदेश जा रहे हो?

२९—रतन = रत्न। नहीच = निश्चय। खाती = मूर्तिकार। को = कोई।

अर्थ—भावज बोली तथा उसने आशीर्वाद दिया। उसने कहा, हे राजा! रत्न के कटोरे की भाँति यह रानी तुम्हें सौंपी गई है। उसे तू अपने पैर से न ठुकरा। राजाओं के महल में ऐसी रानी न होगी। मन्दिरों में ऐसी मूर्ति नहीं है। इसकी आँखें सुन्दर हैं तथा बचन मैत्रीपूर्ण हैं। मूर्तिकार ने ऐसी

मूर्त्ति कभी नहीं बनाई। सूर्य के नीचे अर्थात् समस्त संसार में ऐसी स्त्री नहीं है।

३०—अर्थ—हे भावज ! तू मेरी बातें सुन। राजकुमारी ने मुझे कुवाच्य कहा है। वे बातें मुझे रात-दिन नहीं भूलती। यदि राजकुमारी मेरे साथ आवे तो मैं विष खाकर मर जाऊँ। मैं बारह वर्ष तक जगन्नाथ की पूजा करना चाहता हूँ।

३१—पड़िवा = परीवा। सीय = शीत। मीली = आँख लगना। उछइ = कम पानी मे।

अर्थ—रानी कहती है हे सखी ! अब प्रातः काल हुआ। आज परीवा का दिन है। आज अत्यन्त शीत पड़ा। रात भर मेरी आँख न लगी। मैं उसीप्रकार तड़पती रही जिसप्रकार मछली। मैं बीच बीच में चौंक उठती थी।

३२—बीज = द्वितीया। उपग्रह = उपद्रव। सांसा = संशय।

अर्थ—इसके पश्चात् कृष्ण-पक्ष की द्वितीया आ पहुँची। दिन शुक्रवार था। रानी कहती है कि इस दिन यदि कोई यात्रा करे तो बड़ा उपद्रव हो, यदि कोई पुरुष इस मुहूर्त्त मे विदेश जाय, तो उसके लौटने में भी सन्देह है, उसके हिमालय मे जाकर गल जाने का डर रहता है।

३३—काजली = कजली। मड़इ = खेल रचना।

अर्थ—तृतीया के दिन प्रत्येक घर में मंगलचार होता है। चारों ओर स्त्रियाँ शृंगार करती है। अपनी सहेली के साथ वे कजली का आनन्द लेती हैं। स्त्रियाँ अनेक प्रकार के खेल खेलती हैं। किंतु ऐसे समय भी रानी विलखती फिरती है, क्योंकि राजा विदेश जा रहा है।

३४—अर्थ—चतुर्थी का दिन आ पहुँचा। उस दिन मंगलवार था, तथा उस दिन स्त्रियाँ व्रत कर रही थीं। बीसलदेव

ने चौथ की पूजा की। हे राजा! यदि मेरी बातें मानो तो प्रसन्नता पूर्वक यहीं पूजा करो [बाहर मत जाओ]।

३५—अउत = अनुचित। बइसणइ = बैठकर।

अर्थ— इतने मे पञ्चमी का दिन आ पहुँचा। इस दिन को घर छोड़ना अनुचित है। हे राजा! तुम अपने पुत्र, कलत्र तथा परिवार के साथ अजमेर मे रहो। तुम साँभर का राज्य करो, तथा विदेश जाने के विचार का परित्याग करो।

३६—आवीयो = आने पर।

अर्थ—हे कामिनी! तुम मुझे छोड़ो। मैं विदेश निश्चय पूर्वक जाऊँगा, मैं उड़ीसा के लिए गमन करूँगा। राजा ने यह बातें उस समय कहीं। तब तक षष्ठी तथा सप्तमी का दिन आ पहुँचा। उसने विदेश जाने के लिए निश्चय कर लिया।

३७—तेड़ावो = बुलाई गई। कोक = नाम है।

अर्थ—बीसलदेव पूरी सभा में [उड़ीसा जाने के पूर्व] बैठा। उसने अपने चौरासी सदस्यों को बुलवाया तथा अपनी माता को भी बुलाया। सब ने यह सलाह दी, कि उसके भतीजे कोक को [उसकी अनुपस्थिति मे] राज्य का भार सौंपा जाय।

३८—अर्थ—रानी ने कहा यह अच्छा हुआ कि कोक को राज्य भार सौंपा गया; उसे सोना, घोड़ा, घर, चौर तथा, राज-निवास आदि सौंपे गये। तत्पश्चात् राजा विदेश चला। अंत:पुर की स्त्रियों ने दुख भरी सांसें छोड़ीं।

३९—झूरई = दुखित होना [सूखना]। सहोवर = सहोदर। सोही = सभी। अंकन कुंवरि = नाम है।

अर्थ—रानी का पति (बीसलदेव) विदेश चला गया। अंत:पुर की रानियाँ उसके वियोग मे दुखी हुईं। राजा का

भाई भी दुखी हुआ। धार के लोग भोज के साथ दुखी हुए, क्योंकि साँभर के राजा (बीसलदेव) से वियोग हो गया।

४०—अर्थ—राजा की बहन अंकन कुंवरि भी दुखी हुईं। सब महाजन तथा उनकी माता भी दुखी हुईं। ब्राह्मण, भाट तथा व्यास दुखी हुए। एक ही बात के कारण राजा विदेश चला गया। सब लोगों ने लम्बी साँसे लीं।

४१—अर्थ—राजा [बीसलदेव] उड़ीसा पहुँच गया। उसने वहाँ के राजा देव को प्रणाम किया। आज का दिन धन्य है। राजा देव ने उसे चौगुनी प्रतिष्ठा दी। उड़ीसा के प्रधान ने [राजा देव ने] उसके ऊपर चॅवर डुलाया।

४२—अर्थ—रानी, दूसरे प्रधान तथा अन्य राजाओं ने भी उसका सम्मान किया। राजा देव ने कहा—हे राजा! तुम मेरे भाई हो। उसने अपनी बैठक में उसके ऊपर चॅवर डुलाया तथा इच्छानुकूल भोजन और वस्त्र दिये।

४३—धरे=पावे। बीघन=विघ्न। पणिहु=पुनरपि।

अर्थ—जो लोग बीसलदेव रासो को सुनते हैं उनको बहुत धन तथा राज्य मिलता है। नाल्ह ने इस कथा को कहा। जो रानी से वियोग हो गया था, वह गणेश जी कृपा से फिर संयोग में परिणित हो जाय।

४४—चय्यौ=कहा। बाग-वाणी=सरस्वती। अस्त्री-रसायण=शृंगार रस का काव्य।

अर्थ—मैंने इस दूसरे खण्ड का वर्णन किया। जो इसे सुनता है उसे गंगा-स्नान का फल मिलता है। राजा उड़ीसा में जाकर रहने लगा। सरस्वती ने मुझे वर दिया कि शृंगार-रस के इस काव्य का मैं वर्णन करूँ।

मान

राज्यारोहण के कुछ समय उपरांत राणा राजसिंह ने अपनी दिग्विजय यात्रा की। राजविलास के छठवे विलास मे इस दिग्विजय का विस्तृत-वर्णन है। उसी सर्ग से उद्धृत इस अंश में मालपुरा नामक नगर की लूट का बड़ा ही सजीव चित्रण कवि ने किया है।

दूसरा अंश नवम विलास से लिया गया है। औरंगजेब के बढ़ते हुए अत्याचारों के सामने राजपूताने के प्राय: सभी छोटे बड़े राजाओं ने सर झुका दिया, किन्तु जसवन्तसिंह की बढ़ती हुई शक्ति को वह न रोक सका। ज्यों-ज्यों जसवन्तसिंह की शक्ति बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों औरंगजेब की चिन्ता भी बढ़ती जाती थी। फलत: उसने महाराज के पास एक दूत भेजा कि यदि वे बादशाह की आधीनता स्वीकार कर ले तो उनके कोप और सम्मान मे और भी वृद्धि कर दी जायगी। महाराज ने उत्तर दिया कि राजपूतों की तलवार में ही उनका सारा कोप और सम्मान निवास करता है, औरंगजेब को सावधान हो जाना चाहिए। बादशाह ऐसी बाते सुनकर तिलमिला उठा और उसने बहुत बड़ी सेना जसवन्तसिंह को पराजित करने के लिए भेजी। उद्धृत-अंश मे इसी युद्ध का विस्तृत-वर्णन है। जोधपुर से पांच कोस की दूरी पर शाही-सेना ने डेरा डाला और युद्ध के लिए आमंत्रित किया। वे लोग निश्चित होकर रात्रि मे विश्राम कर रहे थे कि राजपूत लोग अचानक आ धमके। घमासान-युद्ध के पश्चात् शाही सेना तितर-बितर हो गई। सेना नायक ने औरंगजेब से कहा कि राठौरों से झगड़ा

चढ़ाने पर बादशाह को फिर पराजित होना पड़ेगा। फलत औरंगजेब ने फिर संधि का प्रस्ताव किया। जसवन्तसिंह ने इस बार प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और संधि के उपलक्ष में अपने पुत्र को दरबार में भेजा। किन्तु बादशाह को संधि के अनुसार चलते न देखकर राठौर लोग फिर बिगड़ उठे और सेनाओं का संगठन कर दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। तीन पहर तक घमासान-युद्ध के पश्चात् राजपूत विजयी हुए। राजपूतों के रण-प्रयाण तथा उनके आतंक का बड़ा ही सुन्दर चित्रण कवि ने किया है।

भूषण

१—तेरो तेज · · तेरो कर सो।

समत्थ=सामर्थ्यवान्। सोहै=शोभा होती है। निकर=समूह। अकर=खानि। सो है=समान है। सुरतरु=कल्पवृक्ष।

२—सिंह ·· ··सटक्यौ।

सिंह-थरि=सिंह की माँद। जावली=देश, जहाँ अफजल खाँ मारा गया था। एदिल=आदिलशाह (बीजापुर का बादशाह)। भभरि भगा ने=घबड़ा कर भागे। गाजी=धर्मयुद्ध में लड़ने वाला योधा। मदगल=मद बहते हुए। सटक्यौ=चुपके से निकल भागा।

३—कवि · · देव है।

करन जीत=कर्ण को जीतनेवाला (अर्जुन)। कमनैत=धनुर्धर। छेव=छिद्र अथवा घाव। धराधर सेस=पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग। कहरी=आफत ढहानेवाला। मौजलहरी=आनंद की लहर लेने वाला। बहरी=शिकारी चिड़िया।

४—लूट्यौ · ··रिसाल है।

अमाल=शासक। गढ़ोइन=गढ़पति। हेरि-हेरि=ढूँढ़ ढूँढ़ कर। कटक=सेना।

५—अटल·· ·· गढ़ धरि कै।

दिगअंतन के=दिशाओं के अंत के (समस्त संसार के)। रैयति=प्रजा। राना=महाराणा (उदयपुर)। बाना=अंगीकृत। धर्म,=रीति। चमारू=चमर। चमारू धरि डरि कै=डरकर

धमर धारण कर लिया (शिवा जी पर मुर्छल करने लगे) ।
निदरि=निरादर करके ।

६—मदजल······विराजै है ।

मदजल···धरन=मद रूपी जल धारण करने वाला। दलन=नाश करने वाले । थंभन=अवलंब । दिल्ली·· विराजै है=दिल्ली के नाश करने, दक्षिण का अवलंब होने और स्वाभिमान धारण करने के कारण महाराज शिवा जी शोभित होते हैं ।

७—छुट्यौ····एक संग हो ।

आम खास=महल का भीतरी भाग । सुखरुचि=सुख की अभिलाषा । मुखरुचि=मुख की कांति ।

८—उत्तर······मद की ।

विधनोल=बिदनूर । खंडहर=मध्यदेश का एक देश । मारि रद की=मार कर चौपट कर दिया ।

९—बचैगा······सरजा ।

समुहाने=सामने आने पर । अयाने=मूर्ख । चाकर=नौकर ।

१०—श्री ·····नजारे ।

सेत=श्वेत । अरुन्न=अरुण पानिपवारे=पानीदार, कांतिमान् । तिन=। तिनका

११—महाराज ··· झलकी ।

तुरंग=घोड़ा । गनीम=शत्रु । सिगरेई=सम्पूर्ण ।

१२—सहज···· समात है ।

सलीलसील=जलबहते हुए । पब्बय=पर्वत । सहज अकुलात है— बादलों की भाँति काले शरीरवाले एवं पर्वत के समान (भारी) हाथी देने में वह अकुलाता नहीं । देरु=

राशि सुमेरु = सोने का पहाड़। जस टंक = थोड़ा सा यश।

१३—विना......आई है।

गुसलखाने = दरबार के पास का एक कमरा। हथ्याय = हस्तगत करके। हथ्यार = अस्त्र शस्त्र।

१४—साहितनै ... जानियतु है।

बिगिरि कलंक = कालिमाहीन। पंचानन = पाँच मुख वाले [शिव]। बखानियतु = कहा जाता है। सहसकर = सहस्र किरणोंवाला। सहसबाहु = सहस्रबाहु।

१५—इन्द्र ... सिवराज है।

पौन = हवा। रतिनाह = रति के स्वामी अर्थात् कामदेव।

शिवा-बावनी

१६—साजि ·हलत है।

गैवरन = श्रेष्ठ हाथियों। रलत हैं = बहता है। ऐल = सेना। खैलभैल = खलभली। उसलत हैं = स्थान-भ्रष्ट हो जाते है। धूरि-धारा = (उड़ी हुई) धूल का समूह। थारा = थाल। पारावार = समुद्र।

१७—बाने······सेस के।

बाने = एक हथियार। घहराने = आवाज करने लगे। उकसाने = स्थान-भ्रष्ट हो गए। कुम्भ = हाथी का मस्तक।

१८—प्रेतिनी···चढ़ाई है।

जुत्थ = झुण्ड। दिगम्बर = (दिक् = दिशा = अंबर = वस्त्र) दिशा ही हैं अम्बर जिसके, महादेव जी। सिवा = पार्वती जी। भृकुटि चढ़ाना = क्रुद्ध होना।

१९—सबन···· ·पियरे।

२०—जोग = योग्य। सियरे = शीतल मीठे वचन।

केतकी = केवड़े का फूल । राना = राणा (उदयपुर) । मकरन्द = पुष्परस

२१—कूम्म · सिवराज है ।

कूरम = कछवाहे राजपूत (जयपुर)। कमधुज = कबंधज (जोधपुर) । गौर = गौडवंशीय । पोंडर = जाति विशेष । बड़गूजर = राजपूतों का एक कुल ।

२२—छूटत · · कोट मे ।

कमान = तोप । दावा बॉधि = हिम्मत करके । किम्मति = बहादुरी । कोट = समूह । कंगूरन = बुर्ज ।

२३—केतिक · ·राख्यो ।

केतिक = कितने ही । मलिच्छ = म्लेच्छ । मले = नाश किया ।

२४—गरुड़ सिवराज को ।

पुरहूत = इन्द्र । तम = अंधेरा ।

२५—दारिधि · ·सिवराज हो ।

दावानल = दावाग्नि । तिमिर = अंधेरा । सचीपति = इन्द्र । कैटभ = राक्षस का नाम ।

२६—दुग्ग ·· ··दरके ।

दुग्ग = दुर्ग । उग्ग = महादेव । उग्ग = आकाश । उद्भट— प्रचंड ।

२७—मालवा ·····उधरते हैं ।

भेलास = भेलसा (ग्वालियर राज्य मे) । ऐन = (अरबी) ठीक । सिरौज = बुन्देलखंड मे एक स्थान । परावने परत है = = भगदड़ पड़ जाती है ।

२८—मारि करि ·· ··सितारे की ।

खाकसाही = भस्मीभूत । खिसि गई = निकल गई । हिम्मि गई = छूट गई ।

२९—जिन···निगलिगो।

फुतकार=फुफकार। कूरम=कछुआ। झार=भभक। चिकारि=चिग्घाड़कर

३०—बेद ··· घर मै।

परसिद्ध=प्रसिद्ध। भींडि=मर्दन करना। दुहद=सीमा।

३१—राखी···दुनी मै।

हिन्दुवानी=हिन्दुत्व। धरा=पृथ्वी। दुनी-दुनिया।

३२—बदल ·· ··गदाधारी के।

इभ=हाथी। हरमै=[हरम मे रहने वाली] बेगमे। उझकि उठैं=घबड़ा जाती हैं। बयारी—हवा।

३३—सक्र ···देखिए।

सक्र=इन्द्र। अर्क=सूर्य। रैल=समूह। कुभज=अगस्त्य। बिसेखिए—विशेषता रखते हैं।

३४—रैया·· ··धमकै।

रैयाराव=चंपतराव का खिताब। जोम=(अरबी) घमंड। सेलैं=भाल्ले। बैयर=स्त्री।

३५—चाकचक ·· ··महिपाल की।

चाकचक=चारो ओर से सुरक्षित। चमू=सेना। अचाकचक=अरक्षित। जेर कीन्ही=नीचा दिखाया। विरुदैत=यशश्वी। महेवा=इस गॉव मे छत्रसाल रहते थे।

३६—सांगन ..... जाना है।

सॉग=भाला। समद=अमीर अब्दुस्समद। समद=समुद्र। उदेगल=उद्दंड। कत्ता=तलवार। छत्ता=छत्रसाल।

३७—देस··· · रेवा को।

दहपट्टि=चौपट करके। बरगी=बारगीर, वे सिपाही जो सरकारी घोड़े पर राज-कार्य करते थे। देवा=राक्षस।

३८—अत्रगाहि······लप है।

खेत = रण-क्षेत्र। बेतवा = एक नदी। ईस = महादेव। जमाति = मंडली।

३६—भुज ..... खलन के।

बैसगिनी = (बयस्—संगिनी। आयुभर साथ देने वाली। पाखर = लोहे की झूल। परछीने = परकटे। पर = शत्रु। छीने = निर्बल।

४०—राजत ... छत्रसाल को।

छाजत = शोभा पाता है। गाजत = गरजते हैं। गयंद = गजेन्द्र।

गोरेलाल

प्रसंग

अपने पिता की मृत्यु के उपरांत छत्रसाल ने अपने भाई की परामर्श पर साही सेना में औरंगजेब की सेवा स्वीकार कर ली। बादशाह ने उन्हे कई युद्धों मे नवाबों की सहायता के लिए भेजा, और सर्वत्र उन्होंने अपने अतुलनीय-पराक्रम का परिचय दिया। उन्हीं के अदम्य-उत्साह और असाधारण-कौशल से शाही सेना की विजय होती थी, किन्तु पारितोपिक मे मनसब बढ़ते थे नवाबों के, और उनको कोई पूछता भी न था। बादशाह की इस कृतघ्नता से उनके हृदय को बड़ा आघात पहुँचा और साथही बड़ा पश्चाताप भी हुआ। फलस्वरूप शाही सेना से उन्होंने सबंधं विच्छेद कर लिया। अब उनके हृदय मे हिन्दू-राष्ट्र के पुनरुद्धार की भावना वेगवती हुई जिससे प्रेरित होकर उन्होंने इस दिशा के आदर्श-वीर शिवाजी से मिलने का उपक्रम किया। इस पुस्तक मे संकलित अंश के पूर्वभाग मे इन्हीं दोनों स्वतंत्रता के पुजारियों के मिलाप का वर्णन है।

दूसरे अंश में शैदबहादुर से युद्ध का वर्णन है। एक बार शैदबहादुर के दूतों ने उसे छत्रसाल के शिकार खेलने जाने का समाचार दिया। उसने इस अवसर से लाभ उठाने के लिए छत्रसाल पर आक्रमण किया। किन्तु वह पराजित हुआ। उसके ऊपर विजय प्राप्तकर छत्रसाल ने ग्वालियर के शैदम-नौवर को लूटा। इसके अनंतर काजिदा के किलेदार और उसके साथियों को हराया। छत्रसाल के बढ़ते हुए आतंक को देखकर बादशाह ने तीस हजार सैनिकों के साथ इनइलाही सूबेदार को इनका दमन करने के लिए भेजा। किन्तु अंत में उसे पराजित होकर भागना पड़ा।

दूसरी बार औरगंजेब ने रूमी नामक सरदार को भेजा। उससे बासिया में युद्ध हुआ। रूमी के बारूदखाने में अचानक आग लग गई और उसी समय छत्रसाल ने भी उसपर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में रूमी की बड़ी करारी हार हुई।

इसी समय जसवंत सिंह के लड़के सीमाप्रांत से लौटकर दिल्ली आए। बादशाह उन्हें पकड़ना चाहता था, किन्तु दुर्गादास ने उन्हें बचा लिया। बदशाह ने शाहजादा अकबर को जोधपुर पर आक्रमण करने को भेजा किंतु वह स्वयं राजपूतों से मिलकर दिल्ली का सिंहासन लेने का प्रयत्न करने लगा।

छत्रसाल का एक विवाह साबर में हो रहा था, इसी समय तहव्वर खाँ ने इन पर आक्रमण किया। छत्रसाल ने बलदाऊ को भेजकर उसे परास्त किया। इस युद्ध में छत्रसाल की सेना के केवल बारह सैनिक काम आए और मुसलमानों की सेना के तीन सौ सिपाही मरे और दो सौ बीस घायल हुए।

तहव्वरखाँ को पराजित करने के पश्चात् बलदाऊ की सेना ने बलदिवान पर भी हल्ला बोल दिया और उसे हरा दिया।

उद्धृत अंश मे इसी स्थल तक के युद्धों का वर्णन है।

श्रीधर

इस पुस्तक में उद्धृत अंश के पूर्व भाग में फर्रुखसियर तथा जहाँदारशाह की सेनाओं के युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध फतेहपुर जिले के बिदकी नामक स्थान में हुआ। इसमें जहाँदारशाह के सैनिकों की पराजय हुई और उसकी सेना तितर-बितर हो गई। फर्रुखसियर की सेना की लूट और उसके आतंक का बड़ा सुंदर वर्णन है।

उत्तरार्द्ध में फर्रुखसियर के अंतिम-युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में स्वयं ज़हाँदारशाह उपस्थित हुआ। फर्रुखसियर की सहायता में राजा छबीलेराम ने बड़े पराक्रम से युद्ध किया। इस युद्ध में जहाँदारशाह के कई सरदार मारे गए और अंत में फर्रुखसियर विजयी हुआ।

सूदन

प्रस्तुत संग्रह में सुजान-चरित का तृतीय जंग उद्धृत किया गया है। इस जंग में दिल्ली के वजीर बख्शीसलाबतखाँ से भरतपुर नरेश सुजानसिंह के युद्धों का वर्णन है। सलाबतखाँ ने तीस सहस्र सैनिकों तथा कई चुने हुए सरदारों के साथ भरतपुर पर आक्रमण किया। दूत से यह समाचार पाने पर जाटों ने भी सूरजमल (सुजानसिंह) के सेनापतित्व में तुर्कों का सामना करने के लिए बाहर नौगाँव नामक स्थान पर डेरा डाल दिया।

द्वितीय-अंक में सुजानसिंह द्वारा दूत भेजने का वर्णन है। सलाबतखाँ ने उससे यह समाचार भेजा कि दो करोड़ रुपए

देकर जाट लोग दिल्ली की आधीनता स्वीकार कर लें अन्यथा युद्ध अवश्यम्भावी है। सुजानसिह ने छ सहस्त्र चुने हुए सैनिको के साथ आगे बढ़कर दिल्ली की सेना को चारो ओर से घेर लिया।

तीसरे अंक मे बहुत दिनो तक घिरे रहने पर दिल्ली सेना के घोर युद्ध करने तथा शाही सेना के अलाकुलीखॉ फतेहअली और कुबरा खॉ के भागने का वर्णन है।

चौथे अंक में हकीम खॉ तथा रुस्तम खॉ से जाट सरदार गोकुलराम, सूरतिराम, श्यामसिह तथा ब्रजसिह इत्यादि के घोर युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध मे दोनो शाही सरदार मार डाले गए और उनकी सेना मैदान छोड़कर भाग गई।

दोनो पराक्रमी सरदारों की मृत्यु से सलावतखॉ निस्सहाय हो गया, अतः उसने सुजानसिंह से सधि का प्रस्ताव किया। महाराज ने संधि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इसके उपलक्ष्य मे अपने दोनो पुत्रो को नवाब की सेना में उच्च पदाधिकारियों के रूप मे भेज दिया। तदनन्तर सुजानसिह ने मथुरा मे अपना एक विवाह और किया। यही पर तृतीय जंग समाप्त हो जाता है।

जोधराज

महाराज हमीर ने महिमा मंगोल को अपने राज्य में शरण दी थी जिससे अलाउद्दीन बहुत असंतुष्ट था। अनेक

प्रसंग

प्रयत्न करने पर भी जब हम्मीर ने अपने हठ का त्याग न किया तो अलाउद्दीन ने एक विशाल सेना चित्तौर पर विजय करने के लिए भेजी। संपूर्ण सेना ने किले को घेर लिया और महिमा

को वापस माँगा। राजपूतों ने युद्ध करने का दृढ़ निश्चय किया। इस पुस्तक के उद्धृत अंश में इसी युद्ध का वर्णन है।

इस युद्ध में काका रणधीर ने अद्भुत पराक्रम तथा युद्ध-कौशल दिखाया। उन्होंने शत्रु की सेना पर गढ़ से गोले तथा बाणों की वर्षा करवा दी और स्वयं रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। शाही सेनापति मोहम्मद अली ने भी किले पर खूब गोले बरसाए। रणधीर तथा मोहम्मदअली का ज्योंही सामना हुआ त्योंही रणधीर ने अपनी तलवार से उसके दो टुकड़े कर डाले। इसके अनन्तर हम्मीर के दोनों राजकुमारों तथा शाही सेना के युद्ध का वर्णन उद्धृत अंश में है।

पद्माकर

इस संग्रह में हिम्मतबहादुर-विरुदावली के अंतिम अंश से कुछ छंद उद्धृत किए गए हैं। इस अंश में अर्जुनसिंह से हिम्मतबहादुर के युद्ध का विस्तृत-वर्णन है।

प्रसंग इस युद्ध में स्वयं हिम्मतबहादुर के हाथ से अर्जुनसिंह का वध हुआ। यह युद्ध अजयगढ़ और बनगाँव के बीच के मैदान में हुआ था और इसमें अर्जुनसिंह के विरुद्ध राजा चरखारी ने भी हिम्मतबहादुर की सहायता की थी। अंत में हिम्मतबहादुर को आशीर्वाद देते हुए कवि ने विरुदावली समाप्त कर दी है।

चन्द्रशेखर

अलाउद्दीन के राज्य से निर्वासित महिमा मंगोल को हम्मीरदेव के यहाँ शरण मिलने पर बादशाह ने कुपित होकर

प्रसंग

उनके ऊपर चढ़ाई कर दी। हम्मीर के सैनिकों की मार से शाही-सेना के छक्के छूट जाते थे। राजपूत लोग युद्ध के पश्चात् किले में आनंद मनाने के लिए वेश्या का नृत्य करा रहे थे। बादशाह को यह सब असह्य हो उठा अतः उसने उडियान को बुलाकर निशाना मारने का कहा। उड़ियान के निशाने से नाचती हुई वेश्या नीचे गिर पड़ी। हम्मीर को यह सब देखकर बड़ा क्षोभ हुआ। महिमाशाह ने उनको ढाढ़स बँधाते हुए कहा, "यदि आपकी आज्ञा हो तो बादशाह को मार दूँ अथवा इस उड़ियान को ही नष्ट कर दूँ?" हम्मीर की आज्ञा से उसने एक ही तीर से बादशाह का छत्र-भंग कर डाला। इस कृत्य से शाही-सेना इतनी आतंकित हुई कि सभी लोग मैदान से तितर-बितर हो गए। मंत्री ने आकर हम्मीर को इस शुभ समाचार से सूचित किया। इस संग्रह मे इसी स्थल तक का अंश लिया गया है।

महाबतखाँ की भी वही दशा हुई। इन दोनों सरदारों की मृत्यु से सेना मे भगदड़ मचते देखकर अलाउद्दीन ने वाहितखाँ को नया सेनापति बनाया। अत्यंत दृढ़ता-पूर्वक युद्ध करने पर भी अंत में उसकी भी वही दुर्गति हुई।

वाहितखाँ के मरने से अलाउद्दीन भी घबड़ा गया। वजीर मुहम्मदखाँ ने उससे कहा कि राजपूतों से इसप्रकार जीतना असम्भव है। छांडगढ़ पर रणधीर का परिवार रहता है। यदि यहाँ कुछ सेना छोड़कर छांडगढ़ पर आक्रमण किया जाय तो सम्भवतः रणधीर अपने परिवार पर आपत्ति देखकर शरण में आजाय. किंतु ऐसा करने पर भी हाथ कुछ न आया। पाँच वर्ष छांड़ का किला हाथ न आया। शाही-सेना

की इसमें एक नई आपत्ति का सामना करना पड़ा। दिन भर हम्मीर की सेना से युद्ध करने के अनन्तर थकी हुई सेना को रणधीर का आक्रमण व्याकुल कर देता था। अनेक शाही सरदारों का बलिदान हुआ, किंतु हम्मीर की कुछ भी हानि न हुई। अब अलाउद्दीन बहुत घबड़ा गया और हम्मीर को परास्त करने के अन्य उपाय सोचने लगा।

इसी समय रणधीर के कहने से हम्मीर ने अपने दोनों राजकुमारों को युद्ध का समाचार भेजकर चित्तौड़ से बुलाया। दोनों राजकुमार तीस हजार राठौर, आठ हजार चौहान, पाँच हजार प्रमार सेना के साथ रणथम्भौर आए। हम्मीर राजकुमारों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। कुमारों ने रानी अंसुमती के चरण छूकर युद्ध में सम्मिलित होने की आज्ञा मांगी। कुमारों के युद्ध में सम्मिलित होने की सूचना अलाउद्दीन को मिल गई और उसने उनका सामना करने के लिए जमालखाँ को भेजा।

दोनों कुमारों ने अत्यंत वीरता से जमालखाँ को मारा। इसके अनंतर बालनखाँ ने आक्रमण किया। सायंकाल तक युद्ध होता रहा। दोनों कुमार अपनी समस्त सेना के साथ वीरगति को प्राप्त हुए। इस युद्ध में शाही सेना के सत्तर हजार सैनिक तथा अनेक उमराव काम आए। संग्रह में यहाँ तक का अंश लिया गया है।

परिशिष्ट २

ग्रन्थानुक्रमणिका

परिशिष्ट ३

नामानुक्रमणिका